MAPA- 504

भारत में लोक प्रशासन (भाग- 2)

PUBLIC ADMINISTRATION IN INDIA (Part- 2)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

फोन नं0- 05946- 261122, 261123

टॉल फ्री नं0- 18001804025

ई0 मेल- info@uou.ac.in

वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 अशोक कुमार शर्मा, सेवानिवृत्त लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	प्रो0 उमा मेदुरी लोक प्रशासन विभाग, इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त वि0वि0 दिल्ली
प्रो0 बी0 अरूण कुमार लोक प्रशासन विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त वि0वि0 कोटा, राजस्थान	प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
पाठ्यक्रम संयोजन और सम्पादन	
डॉ0 घनश्याम जोशी लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 सूर्यभान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	10
डॉ0 कमल कुमार	1, 2
डॉ0 अमितेन्द्र सिंह, संविदा शिक्षक, अर्थशास्त्र उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	4, 6, 7
डॉ0 घनश्याम जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	8, 9, 11, 12, 13, 14
डॉ0 जाकिर हुसैन, सेवानिवृत प्रोफेसर, बरेली	3, 5

प्रकाशन वर्ष- 2020

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण- 2020

प्रकाशक निदेशालय- अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अनुक्रम

भारत में लोक प्रशासन (भाग- 2)

खण्ड- 1 लोक सेवाएं और अखिल भारतीय सेवाएं- 2	
1. जन शिकायत निवारण, लोकपाल, लोकसेवा में तटस्थता	1 – 17
2. प्रशासन में भ्रष्टाचार	18 – 45
3. राजनीति और प्रशासन का अपराधीकरण	46 – 72
खण्ड- 2 वित्तीय प्रशासन एवं समितियां	
4. भारत में वित्तीय प्रबन्ध व बजट निर्माण प्रक्रिया	73 – 94
5. सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण- विधायी, कार्यकारी, एवं न्यायिक	95 – 121
6. लोक लेखा समिति, अनुमान समिति, लोक उपक्रम समिति, विभागीय समितियां, नियंत्रक महालेखा परीक्षक	122 – 142
7. लेखांकन, लेखा परीक्षण	143 – 163
खण्ड- 3 स्थानीय स्वशासन	
8. पंचायती राज और 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम	164 – 181
9. 74वां संवैधानिक संशोधन और नगरीय स्थानीय सरकार	182 – 198
10. स्वतन्त्रता पश्चात जिला प्रशासन, जिलाधिकारी	199 – 220
खण्ड- 4 संवैधानिक संस्थाऐं	
11. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग	211 – 231
12. राष्ट्रीय महिला आयोग	232 – 241
13. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग	242 – 258
14. पिछड़ा वर्ग आयोग और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग	259 – 268

इकाई- 1 जन शिकायत निवारण, लोकपाल, लोक सेवा में तटस्थता

इकाई की सरंचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 जन शिकायत निवारण- अर्थ एवं महत्व

1.2.1 नागरिक प्रशासन

1.2.2 केन्द्रीय सतर्कता आयोग

1.2.3 केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी0बी0आई0)

1.3 लोकपाल, लोकायुक्त

1.3.1 लोकपाल विधेयक

1.4 जन लोकपाल विधेयक

1.5 लोक सेवा में तटस्थता या निष्पक्षता

1.5.1 तटस्थता के आयात

1.5.2 तटस्थता की वर्तमान में प्रासंगिता

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने अखिल भारतीय सेवाओं के स्वरूप का अध्ययन किया है। साथ ही साथ केन्द्रीय सेवाओं का भी वर्णन किया गया है। भर्ती एवं प्रशिक्षण को भी लिपिबद्ध किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने भारत में प्रचलित अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं के बारे में जानने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके साथ में हमने यह भी देखा है कि भारत में लोक सेवकों की भर्ती के कौन से तरीके अपनाये जाते हैं। इसी क्रम में हमने यह जाना है कि पदोन्नति भी भर्ती का एक तरीका है।

इस इकाई में हम यह अध्ययन करेंगे कि सुशासन के अन्तर्गत प्रशासन का दायित्व जनता के प्रति जवाबदेही का है। लोकतांत्रिक व लोक कल्याणकारी राज्य की प्रमुख विशेषता है कि जनता के कल्याण हेतु उनके कार्यक्रमों को उन तक पहुँचाना है। परन्तु उनको इनका लाभ नहीं मिल रहा है, तो वे शिकायत करने का अधिकार रखते हैं। इस अध्याय में जन शिकायत निवारण के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

भ्रष्टाचार उन्मूलन हेतु शासन को प्रशासन से अवगत कराना है। यह लेखन कार्य करते समय राष्ट्र भी भ्रष्टाचार के बारे में चर्चा कर रहा है और लोकपाल एवं जन लोकपाल बिल को लेकर राष्ट्र में बहस छिड़ी हुई है कि किनको-किनको लोकपाल बिल के अन्तर्गत रखा जाय?

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1. जन शिकायत निवारण के अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे।
2. केन्द्रीय सतर्कता आयोग और उसके कार्यों के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
3. लोकपाल और जन लोकपाल विधेयक के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
4. लोक सेवा में तटस्थता के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

1.2 जन शिकायत निवारण अर्थ एवं महत्व

सरकार जन शिकायत निवारण में संलग्न एवं सक्रिय है, परन्तु जनता की प्रशासन के प्रति शिकायतें बढ़ती जा रही हैं। शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किये गये उस दावे से है, जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ता है।

जनता की सेवा करना ही लोक प्रशासन का लोकतांत्रिक प्रणाली में महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय उद्देश्य है। लोकतांत्रिक व लोक-कल्याणकारी राज्य के, अस्तित्व के कारण सरकार के समक्ष नवीन कार्य एवं जिम्मेदारियॉं जन्म ले चुकी हैं। आज ये नई जिम्मेदारियाँ और कार्य विश्व के लगभग तमाम देशों में बढ़ते जा रहे हैं। आज लोक प्रशासन के सामने दो बातें महत्वपूर्ण हैं-

प्रथम, सरकारी प्रशासन का दायरा व्यापक हो गया है। द्वितीय, शिक्षा, सामाजिक और राजनीतिक चेतना बढ़ने से जनता की अपेक्षाएँ लोक प्रशासन के प्रति कुछ ज्यादा ही बढ़ गयी हैं। आज बहुत से विद्वानों के द्वारा नागरिकों और प्रशासन के परस्पर सम्पर्क और सम्बन्धों को बहुत महत्व दिया जा रहा है। जहाँ तक आदर्श स्थिति का प्रश्न है, तो इसे आपसी संबंधों के आधार पर और सक्रिय होना चाहिए, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर इस विषय को लेकर बहुत ही विवाद और तनाव देखने को मिलता है। आज तो सरकार जन शिकायत निवारण में संलग्न एवं सक्रिय है, परन्तु जनता की प्रशासन के प्रति शिकायतें बढ़ती ही जा रही हैं; शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किये गये उस दावे से है, जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ा है।

आधुनिक समय में इंटरनेट के विस्तार के कारण जनता अपनी शिकायत 'जन शिकायत निवारण तंत्र' तक बहुत ही सरलतम तरीके से; हिन्दी अथवा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में सम्बन्धित अधिकारी तक पहुँचा सकती है। इसके लिए टाइप करना होता है- इसके बाद हमें जन शिकायत निवारण अधिकारियों की सूची प्राप्त होती है। तत्पश्चात एक कार्य का प्रारूप प्रदर्शित होता है, जिसके अन्तर्गत जानकारियों का विवरण देना होता है। नाम, माता/पिता का नाम, पता, ई-मेल और शिकायत का विवरण।

जनता अपनी की गयी शिकारत पर हुई कार्यवाही का विवरण भी जान सकती है, जिसके लिए उसे अपना पी0जी0 कोड भरना होता है और ओ0के0 बटन को 'क्लिक' करके जमा करना होता है। यह पी0जी0 कोड नाम भरने के साथ प्राप्त हो जाता है।

1.2.1 नागरिक प्रशासन

आज राज्य की अवधारणा विकास मूलक और कल्याणकारी हो गयी है और इस विकास मूलक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नागरिक और प्रशासन के बीच सम्पर्क का होना मात्र आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है। प्रशासन लोगों की समस्याओं के निदान से सम्बन्धित हैं। प्रशासन को लोगों के लिए आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराना अनिवार्य है। प्रशासन का मुख्य उद्देश्य अब नागरिकों की संतुष्टि को पूरा करना होता है, पर व्यावहारिक स्थिति कुछ अलग ही है। आज भी प्रशासनिक कार्यों में निरंकुशता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है तथा जन भावनाओं को प्रशासन द्वारा नजरअंदाज किया जाता है। वास्तविकता तो यह है कि प्रशासन और नागरिकों के बीच परिवर्तन केवल बाहर से आया हुआ मालूम पड़ता है अर्थात् पुरानी प्रवृत्ति बदली नहीं है। आज भी नागरिक प्रशासन से अपना कार्य करवाते वक्त अप्रासंगित दिखता है।

जैसा कि यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वर्तमान समय में जनता और प्रशासन के बीच निरन्तर सम्पर्क रहता है। प्रशासन से नागरिकों के सम्पर्क के कई उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे- पानी, बिजली, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधा पाना, साथ ही साथ अन्य व्यक्तिगत मामलों में प्रशासन से सहयोग चाहना। इन आवश्यकताओं को लेकर जनता की प्रशासन से सम्पर्क में जितनी वृद्धि होती है, सरकारी नियंत्रण और नियम कानून उतने ही बढ़ते चले जाते हैं और इस दौरान ही प्रशासन की छवि बनती या बिगड़ती है।

अगर प्रशासनिक सफलता के लिए नागरिक और प्रशासन के बीच सम्बन्ध की अनिवार्यता है, तो दूसरी ओर प्रशासनिक असफलता का कारण नागरिक और प्रशासन के बीच अलगाव का होना है। चूंकि नागरिक अपने कार्यों का सम्पादन प्रशासन से तुरन्त चाहता है, जिसे प्रशासन के द्वारा तुरन्त पूरा करना सम्भव नहीं होता है। इसका कारण है कि प्रशासन को विभिन्न प्रकार के नियमों एवं कानूनों का अवलोकन करना पड़ता है, जिसके बाद ही नागरिकों की इच्छाओं की पूर्ति सम्भव होती है।

जन-शिकायतों का प्रशासन द्वारा त्वरित निष्पादन का न होना भी जनता में प्रशासन के प्रति अलगाव उत्पन्न करता है। जनता यह चाहती है कि उसके द्वारा जो प्रशासन के समक्ष शिकायत की जाती है, उस पर प्रशासन निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण ढंग से कार्य करें। प्रशासन से न्याय के मार्ग में निष्पक्षता हेतु जातिवाद, साम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, लालफीताशाही, भाई-भतीजावाद से अलग रहने की आशा की जाती है। भारत में नागरिक

और प्रशासन के बीच बेहतर सम्पर्क स्थापित करने तथा भ्रष्टाचार में लिप्त पाये जाने वाले कार्मिकों को दण्डित कर, जन शिकायतों का निवारण करने हेतु विभागीय नियन्त्रण की व्यवस्था है, जिसमें अधिकांश सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार तथा जन शिकायत निवारण हेतु पृथक से एक अधिकारी नियुक्त किया जाता है जो प्राप्त परिवेदना की जाँच कर आवश्यक कार्यवाही करता है।

1.2.2 केन्द्रीय सतर्कता आयोग

केन्द्र सरकार के विभागों में प्रशासनिक भ्रष्टाचार की जाँच करने हेतु केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना 'संथानम् समिति' की अनुशंसा पर सन् 1964 में की गयी थी। सितम्बर 2003 में संसद ने एक कानून बनाकर इसे वैधानिकता प्रदान कर दी।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग में एक आयुक्त तथा दो अधीनस्थ आयुक्त होते हैं। इनकी नियुक्ति प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली समिति की संस्तुति पर राष्ट्रपति करता है। इनका कार्यकाल 04 वर्ष या 65 वर्ष की आयु पूरी होने तक, जो भी पहले हो होता है। राष्ट्रपति इससे पूर्व भी भ्रष्टाचार, अपराध आदि मामलों में सम्बद्ध हो जाने पर इन्हें पद मुक्त कर सकता है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

1. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1988 के तहत केन्द्रीय सरकार के लोक सेवकों द्वारा किये गये अपराधों की जाँच करना।
2. अखिल भारतीय सेवाओं के संघ सरकार के अधिकारी और केन्द्रीय सरकार के समूह 'ए' के अधिकारियों द्वारा किए गये अपराधों की जाँच करना।
3. 'दिल्ली स्पेशल पुलिस एस्टाब्लिशमेंट' के कार्य की समीक्षा एवं निरीक्षण करना और इसे निर्देशित करना।
4. केन्द्र सरकार के मंत्रालयों में सतर्कता प्रशासन का निरीक्षण करना।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग किसी भी शिकायत को जो उसे व्यक्तिगत, डाक, समाचार-पत्रों, संसद सदस्यों के भाषणों या अंकेक्षण; लेखा-परीक्षण रिपोर्ट इत्यादि स्रोतों से प्राप्त होती है, को सम्बन्धित विभाग या मंत्रालय अथवा

केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को जाँच हेतु भेज सकता है। मंत्रालय में मुख्य सतर्कता अधिकारी सम्बन्धित भ्रष्टाचार के मामले की जाँच करके अपनी रिपोर्ट आयोग को भेजते हैं। जाँच पूरी होने पर दोषी कार्मिक को दण्डित करने, विभागीय कार्यवाही करने या मामला बन्द करने के सम्बन्ध में आयोग से परामर्श किया जाता है। यदि मामला गंभीर प्रकृति का हो तथा विभागीय कार्यवाही के पश्चात कार्मिक को बड़ा दण्ड देना आवश्यक हो तो पुनः आयोग से परामर्श लिया जाता है। केन्द्र सरकार के सभी विभाग प्रति तिमाही एक रिपोर्ट आयोग को भेजते हैं, जिसमें प्राप्त शिकायतों, उनकी जाँच प्रगति तथा लम्बित प्रकरणों का विवरण होता है। इस प्रकार एक परामर्शदाता निकाय के रूप में केन्द्रीय सतर्कता आयोग नियंत्रणकर्ता का कार्य भी करता है।

1.2.4 केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो(सी0बी0आई0)

यह भारत सरकार की प्रमुख जाँच एजेन्सी है। इसका कार्यक्षेत्र, केन्द्र एवं राज्य सरकारों सहित समस्त भारत है। इसकी भ्रष्टाचार रोकने में अहम् भूमिका है। सी0बी0आई0 का गठन सन् 1963 में गृह मंत्रालय की एक अधिसूचना द्वारा किया गया था। इस समय यह कार्मिक मंत्रालय के साथ सम्बद्ध है। सन् 1941 में गठित 'स्पेशल पुलिस एस्टाबिलिशमेन्ट' को भी इसके साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। सी0बी0आई0 के गठन की संस्तुति संथानम् कमेटी ने की थी।

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी0बी0आई0) के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

1. केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, रिश्वत और दुर्व्यवहार से सम्बन्धित मामलों की विवेचना करना।
2. राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क वाले संगठित समूहों द्वारा किए गये गम्भीर अपराधों की जाँच करना।
3. आर्थिक अपराधों, जैसे- ब्रक्री कर, आय कर, उत्पाद शुल्क आदि से सम्बन्धित अपराधों, आयात-निर्यात नियमों का उल्लंघन आदि से सम्बन्धित मामलों की जाँच करना।
4. अनेक भ्रष्टाचार निरोधक एजेन्सीज एवं राज्यों की पुलिस में बीच सामंजस्य बनाए रखना।
5. राज्य सरकारों के निवेदन पर लोक महत्व के किसी भी मामले की जाँच करना।

सामान्यतः सी0बी0आई0 को विशेष पुलिस संगठन कानून के अन्तर्गत अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हैं तथा इसकी जाँच प्रणाली बहुत गम्भीर, व्यापक, गहन तथा विश्वसनीय मानी जाती है।

1.3 लोकपाल और लोकायुक्त

भारतीय लोकपाल की अवधारणा स्वीडन के 'ओम्बुड्समैन' पर आधारित है। जहाँ यह व्यवस्था 1809 से प्रभावी है और जिसके कारण वहाँ के प्रशासन को बहुत साफ-सुथरा माना जाता है। ओम्बुड्समैन नामक यही संस्था भारत में लोकपाल/लोकायुक्त कहलाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'लोक' अर्थात 'जनता या लोग' एवं 'पाल' अर्थात 'संरक्षक या रक्षा करने वाला' है। लोकपाल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लोक सेवकों तथा जन-प्रतिनिधियों के कुप्रशासन तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध जनता की शिकायत सुनने तथा उस पर जाँच कर अपनी संस्तुति प्रस्तुत करना है।

सन् 1966 में मोरारजी देसाई की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'प्रोब्लम्स ऑफ रिडेसल ऑफ सिटिजन ग्रीवेंसज' पर रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए 'लोकायुक्त' तथा 'लोकपाल' की नियुक्ति की संस्तुति की थी। इसका मुख्य उद्देश्य लोक सेवकों तथा जन-प्रतिनिधियों के कुप्रशासन तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध जनता की शिकायत सुनने तथा उस पर जाँच कर अपनी संस्तुति प्रस्तुत करना है।

भारत सरकार ने प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया तथा केन्द्र में लोकपाल और राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना का निर्णय लिया। इसके बाद केन्द्र सरकार ने अब तक दस बार 'लोकपाल' की स्थापना लिए विधेयक संसद में प्रस्तुत किए, लेकिन लोक सभा के बार-बार विघटित हो जाने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से यह अभी तक पारित न हो सका। संसद में लोकपाल विधेयक सर्वप्रथम मई 1968 में तथा आठवीं बार अगस्त 2001 में प्रस्तुत किया गया था। इनके अतिरिक्त अप्रैल 1971, जुलाई 1971, जून 1977, अगस्त 1985, दिसम्बर 1989, सितम्बर 1996, अगस्त 1998 तथा अगस्त 2001, में 2005 एवं 2008, में विधेयक प्रस्तुत किया गया।

सर्वप्रथम लोकायुक्त अधिनियम 1970 में उड़ीसा सरकार ने बनाया था, लेकिन वहाँ लोकायुक्त की नियुक्ति सन् 1983 में हो सकी। महाराष्ट्र में लोकायुक्त अधिनियम सन् 1971 में बना तथा वहाँ उसी वर्ष इसकी नियुक्ति भी हो

गयी, अतः महाराष्ट्र पहला राज्य है। अन्य राज्यों में लोकायुक्त अधिनियम निर्माण एवं नियुक्ति का वर्ष निम्नलिखित तालिका में दिया गया है-

क्रम संख्या	राज्य	वर्ष
1	उड़ीसा	1970
2	महाराष्ट्र	1971
3	बिहार	1973
4	राजस्थान	1973
5	तमिलनाडु	1974
6	जम्मू काश्मीर	1975
7	मध्य प्रदेश	1981
8	आन्ध्र प्रदेश	1983
9	केरल	1983
10	हिमाचल प्रदेश	1983
11	कर्नाटक	1984
12	असम	1985
13	गुजरात	1986
14	पंजाब	1995

प्रत्येक राज्य के लोकायुक्त की संरचना, कार्यप्रणाली तथा अधिकार-क्षेत्र पृथक रखा गया। लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार, कार्यकाल तथा नियुक्ति प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न अपनायी जाती है। लोकायुक्त को लोक सेवकों के विरूद्ध निम्नलिखित मामलों में आरोप एवं शिकायत प्राप्त कर जाँच कराने का अधिकार है-

1. स्वयं या अन्य व्यक्तियों के लाभ या पक्षपात के लिए अपने पद का दुरूपयोग किया हो या दूसरे व्यक्ति की क्षति या अभाव का कारण बना हो।

2. सरकारी कर्मचारी के रूप में व्यक्तिगत स्वार्थ या अनुचित या भ्रष्ट विचार से प्रेरित होकर काम किया हो।
3. भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी हो या सरकारी पद पर ईमानदार न रहा हो।
4. ज्ञात आय से असंगत सम्पति हो या परिवार का कोई अन्य सदस्य उसकी तरफ से असंगत सम्पति रखता हो।
5. जिस पद पर वह है, उस पद पर लोक सेवक द्वारा ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा आचरण के मापदण्ड के अनुसार कार्य करने में असफल रहा हो।

इसी प्रकार शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किए गये उस दावे से है, जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ा है।

कुप्रशासन का अर्थ निम्नलिखित कार्यवाहियों से है-

1. जहाँ इस प्रकार का कार्य या प्रशासनिक प्रक्रिया व्यवहार जो असंगत, अनुचित, दमनात्मक या पक्षपातपूर्ण हो, या
2. जहाँ इस प्रकार की कार्यवाहियों में लापरवाही या अनावश्यक विलम्ब हुआ हो या इस प्रकार की प्रशासकीय प्रक्रिया या व्यवहारों में अनावश्यक देरी हुई हो।

लोकायुक्त संस्था सैद्वान्तिक दृष्टि से सुदृढ़ दिखाई देती है, किन्तु व्यावहारिक रूप से किसी भी राज्य में लोकायुक्त संस्था प्रभावी सिद्ध नहीं हो पायी है। लोकायुक्त की भूमिका सरकार को परामर्श देने की है। कई बार लोक-सेवकों का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी लोकायुक्त की सिफारिश पर राज्य सरकार समुचित कार्यवाही नहीं करती है। इस प्रकार प्रशासन में अनैतिकता तथा अकार्यकुशलता पर अंकुश नहीं लग पाता है। भ्रष्टाचार निवारण में निस्संदेह लोकायुक्त सशक्त भूमिका निर्वाहित कर सकता है, किन्तु पहले लोकायुक्त को प्रभावी बनाना आवश्यक है।

1.3.1 लोकपाल विधेयक

भारत में सर्वप्रथम इसकी स्थापना की माँग डॉ0 लक्ष्मीमल सिंघवी द्वारा सन् 1956 में की गयी थी। सन् 1966 में मोरारजी देसाई की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'प्रोब्लम्स ऑफ रिडेसल ऑफ सिटिजन्स ग्रीवेंसज' पर रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए लोकायुक्त तथा लोकपाल की नियुक्ति की संस्तुति की।

पहली बार 09 मई 1968 को लोकपाल विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया जो कि लोक सभा में पारित हो चुका था, लेकिन लोक सभा के भंग हो जाने के कारण राज्य सभा में पारित न हो पाया।

पिछले 42 वर्षों से लोकपाल विधेयक लोक सभा के बार-बार विघटित हो जाने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से अभी तक पारित न हो सका है। इस दौरान छोटी-बड़ी कुल चौदह कोशिशें की गयी। आठ बार सरकारी विधेयक के रूप में और छह बार गैर-सरकारी विधेयक के रूप में इसे स्थापित करने की कोशिश की गयी है, लेकिन किसी न किसी बहाने उसमें रोड़ा अटकाया जाता रहा है अतः अब तक यह मृग-मरीचिका ही साबित हुआ है।

शुरूआत में प्रधानमन्त्री को इस दायरे में रखे जाने को लेकर मतभेद थे, किन्तु ऊँचे पदों पर आसीन लोगों से जुड़े भ्रष्टाचार के प्रकरण इस प्रकार उजागर हो चुके हैं और उनका आभामंडल इतना क्षीण हो चुका है कि सार्वजनिक जीवन का कोई भी पदधारक अब अपने को जाँच के दायरे से अलग रखने की सिफारिश करने का साहस नहीं कर सकता।

संसद में सर्वप्रथम लोकपाल विधेयक मई 1968 में तथा अन्तिम बार 2008 में प्रस्तुत किया गया था। इनके अतिरिक्त अप्रैल 1971, जुलाई 1971, जून 1977, अगस्त 1985, दिसम्बर 1989, सितम्बर 1996, अगस्त 1998, अगस्त 2001, 2005 तथा 2008 में विधेयक प्रस्तुत किया गया। परन्तु प्रत्येक बार, समिति के ऊपर नई समितियों के गठन का अनवरत सिलसिला चलता रहा। इस विधेयक में निम्नलिखित प्रावधान थे-

- लोकपाल के रूप में एक उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश एवं दो अन्य सदस्य उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों में से नियुक्त करने का प्रावधान था।
- लोकपाल के अधीन मंत्रियों, अधिकारियों एवं प्रधानमन्त्री को भी रखा गया।
- लोकपाल तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा करने का प्रावधान था।

लोकपाल विधेयक में न तो भ्रष्टाचार से कमाये गये धन को वापस लाने(वसूली) का प्रावधान है और न ही न्यायपालिका को इसके दायरे में रखा गया है। इस विधेयक के अन्तर्गत लोक सभा के स्पीकर अथवा राज्य सभा के चेयनमैन की अनुमति के बिना किसी की शिकायत की जाँच ही नहीं की जा सकती है और न ही भ्रष्टाचार के

विरूद्ध आंतरिक रूप से आवाज उठाने वाले लोगों को सुरक्षा देने का कोई प्रावधान है। अतः भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के लिए खासतौर पर बनाया गया लोकपाल विधेयक; सरकारी लोकपाल विधेयक को प्रभाव विहीन बताया जा सकता है। इसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जिससे भ्रष्टाचार के दानव का खात्मा अंत: किया जा सके। इस विधेयक की तमाम खामियों को दूर करने के लिए जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे; किशन बाबूराव हजारे; असली नाम, की अगुवाई में 'इंडिया अंगेस्ट करप्शन' आंदोलन के तहत 'जन लोकपाल विधेयक' को कानून बनाए जाने की माँग की है।

'ओम्बुडसमैन' की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1809 में स्वीडन में उसके बाद 1919 में फिनलैण्ड में, 1955 में डेनमार्क में तथा 1962 में नार्वे में हुई। इन स्कैन्डिनेवियन देशों के अतिरिक्त यह संस्था न्यूजीलैण्ड, ब्रिटेन, कनाडा तथा अमेरिका में भी कार्यरत है। 'ओम्बुड्समैन' नामक यही संस्था भारत में 'लोकपाल/लोकायुक्त' कहलाती है। 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने जहाँ केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल की सिफारिश की थी, वहीं उन्हीं कार्यों के लिए राज्य स्तर पर लोकायुक्त की सिफारिश की थी। उड़ीसा लोकायुक्त अधिनियम 1970 बनाने वाला पहला राज्य बना, जबकि महाराष्ट्र में सबसे पहले 1971 में लोकायुक्त की नियुक्ति की गयी। राजस्थान में 1973 में, बिहार में 1973 में, उत्तर प्रदेश में 1975 में, मध्य प्रदेश में लोकायुक्त एवं उपलोकायुक्त अधिनियम अक्टूबर 1981 से प्रभावी है। अब तक कुल 17 राज्यों में यह संस्था कार्य कर रही है। पंजाब में लोकायुक्त की जगह लोकपाल की नियुक्ति की जाती है। अलग-अलग राज्यों में संस्था की प्रभाविकता अलग-अलग है तथा इनके शिकायत तथा अभिकथन सम्बन्धी अधिकार भी अलग-अलग हैं। शिकायत का तात्पर्य कुप्रशासन से है, जिसकी सूचना लोकायुक्त को उस रूप में घटना के एक वर्ष के भीतर दी जानी चाहिए।

अभिकथन का तात्पर्य किसी लोकसेवक के भ्रष्टाचार, सत्यनिष्ठा में कमी अथवा पद के दुरूपयोग से है, जिसकी सूचना घटना के पॉच वर्ष के भीतर लोकायुक्त को दी जा सकती है।

1.4 जन लोकपाल विधेयक

देश के प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा तैयार 'जन लोकपाल विधेयक' एक ऐसा विधेयक है, जिसे कानून बनाकर भ्रष्टाचार को पूर्णत: खत्म किया जा सकता है। इस विधेयक में बगैर किसी की अनुमति लिए लोकपाल द्वारा किसी भी जाँच को शुरू करने का, भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने वाले की सुरक्षा का भी प्रावधान है। प्रधानमन्त्री से लेकर

मंत्री और संतरी तक सभी को इसकी जाँच के दायरे में रखा गया है। देश में पहली बार एक विधेयक का प्रस्ताव देश के 'नागरिक समाज' की ओर से संसद में विचार करने के लिए दिया गया है। जैसा कि पूर्व मे बताया जा चुका है कि इस विधेयक में सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों, चाहे वह प्रधानमन्त्री, सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश या फिर अफसरशाही हो, के खिलाफ लगे भ्रष्टाचार के आरापों की न केवल निष्पक्ष जाँच करने की ताकत है, बल्कि उन्हें दण्डित भी करने की क्षमता है। इसमें लूटखसोट, भ्रष्टाचार द्वारा अर्जित धन भी जनता को वापस दिलाने का प्रावधान किया गया है।

हांगकांग में 1974 में जन लोकपाल जैसा कानून; 'इंडिपेडेंट कमीशन अगेंस्ट करप्शन एक्ट' के आधार पर आई0सी0ए0सी0 (ICAC) बनाया गया था, जिससे वहाँ से भ्रष्टाचार समाप्त करने में कामयाबी मिली। भारत में भी अगर यह कानून बना दिया गया तो यहाँ पर भी भ्रष्टाचार को नष्ट किया जा सकता है।

भारत में जन लोकपाल विधेयक की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं-

1. अध्यक्ष समेत दस सदस्यों वाली एक लोकपाल संस्था होनी चाहिए।
2. भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करने वाली सी0बी0आई0 के हिस्से को इस लोकपाल में शामिल कर दिया जाना चाहिए।
3. सी0वी0सी0 और विभिन्न विभागों में कार्यरत 'विजिलेंस विंग्स' का लोकपाल में विलय कर दिया जाना चाहिए।
4. लोकपाल का सरकार से एकदम स्वतंत्र होना।
5. नौकरशाह, राजनेता और जजों; न्यायाधीशों पर इनका अधिकार-क्षेत्र होगा।
6. बगैर किसी एजेंसी की अनुमति के ही कोई जाँच शुरू करने का इसे अधिकार होगा।
7. जनता को प्रमुख रूप से सरकारी कार्यालयों में रिश्वत माँगने की समस्या से गुजरना पड़ता है। लोकपाल एक अपीलीय प्राधिकरण और निरीक्षण निकाय के तौर पर केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयों में कार्यवाही कर सकेगा।
8. शिकायत कर्ता को संरक्षण प्रदान करेगा।
9. लोकपाल के सदस्यों और अध्यक्ष का चुनाव पारदर्शी तरीके से किया जाना चाहिए।

10. लोकपाल के किसी अधिकारी के खिलाफ यदि कोई शिकायत होती है तो उसकी जाँच पारदर्शी तरीके से एक महीने के भीतर होनी चाहिए।

जन लोकपाल विधेयक के मूल स्वरूप के सूत्रधार (अरविन्द केजरीवाल, प्रशांत भूषण और संतोष हेगड़े) के द्वारा जन लोकपाल विधेयक का मूल आधार तैयार किया गया है। बाद में इस विधेयक पर अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों और गणमान्य लोगों की राय को भी इसमें शामिल किया गया है। इसके अलावा यह विधेयक लोगों द्वारा बेबसाइट; इंटरनेट पर दी गयी प्रतिक्रिया और जनता के साथ विचार-विमर्श के बाद तैयार किया गया है। इस विधेयक को शांति भूषण, जे0एम0 लिंग्दोह, किरन बेदी, अन्ना हजारे, स्वामी अग्निवेश आदि का समर्थन प्राप्त है। इस विधेयक की प्रासंगिकता, सरकारी लोकपाल विधेयक का अधिकार-क्षेत्र केवल राजनेताओं तक सीमित है। सरकारी अधिकारियों के लिए 'सतर्कता आयुक्त' जैसी संस्थाऐं हैं, जो अब तक निष्प्रभावी साबित हुई हैं। न्यायपालिका के भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए कोई संस्था नहीं है। जनता के लिए राजनेता के भ्रष्टाचार, सरकारी कार्मिकों की रिश्वत खोरी और न्यायाधीशों की बेईमानी में कोई अंतर नहीं है। इस पृष्ठभूमि में जन लोकपाल विधेयक के उपबंध सरकारी विधेयक की तुलना में ज्यादा प्रभावी और प्रासंगिक हैं।

इस विधेयक की आवश्यकता इसलिए है कि, भ्रष्टाचार निरोधक कानून-1988 में भ्रष्ट अफसरों के खिलाफ सजा का प्रावधान महज पांच वर्ष है, जबकि दोषी साबित किये जाने पर उनकी संपत्ति को हड़पने का कोई प्रावधान नहीं है। 'ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशन' की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में सरकारी महकमों में काम कराने के लिए कम से कम 50 फीसदी लोगों को अपना वाजिब काम निकालने के लिए अधिकारियों को घूस देनी पड़ती है। उन्हें इस काम के लिए भी घूस देनी पड़ती है, जिसे पाने के वे हकदार हैं। लगभग तीन-चौथाई लोगों को किसी न किसी काम के लिए रिश्वत देनी पड़ी है। इस स्थिति के चलते ही भ्रष्टाचार की सूची में भारत 87 वें स्थान पर है।

1.5 लोक सेवा में तटस्थता

लोकसेवा में 'तटस्थता' सिविल सेवा का एक आवश्यक अंग है। इसका एक अर्थ सेवक की निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र और स्पष्ट सेवा से होता है। अर्थात यदि सिविल सेवक स्वयं को राजनीतिक कार्यों एवं गतिविधियों से दूर रख कर अपना कार्य पूर्णरूपेण दक्षता एवं ईमानदारी के साथ करता है, तो वह गुण 'तटस्थता' को व्यक्त करता है। यह

कहना सर्वथा उचित होगा कि निष्पक्षता ही तटस्थता को जन्म देती है। तटस्थता के अन्तर्गत अनुशासन, निष्ठा, ईमानदारी, निष्पक्षता एवं स्वतंत्र व स्पष्ट विचार प्रमुख गुण होते हैं। अजोय बागची के शब्दों में, निष्पक्षता की अवधारणा इस बात की ओर है कि राजनीतिक दलों के साथ सम्पूर्ण तटस्थता के साथ-साथ सरकार के कार्यक्रमों के राजनीतिक पक्षों के साथ संतुलित सम्मान और विवेकपूर्ण सहानभूति का भी मिश्रण होना चाहिए। साथ ही साथ सरकार के कार्यक्रमों और निर्णयों की पृष्ठभूमि में मूल दार्शनिक तथा सामाजिक-आर्थिक वाद-विवाद के प्रति जागरूकता और लोकतांत्रिक धारणाओं के प्रति भक्ति भी होनी चाहिए। जोसेफ पालोम्बरा के मतानुसार, एक प्रशासनक को राजनीतिक दलों के बीच प्रभुत्व को लेकर हो रहे दल झगड़े में उलझना नहीं चाहिए। इसका अर्थ यह है कि प्रशासन को जागरूक होकर निरंतर यत्न करना चाहिए कि वह राजनीति कैसी भी हो उससे अपने आप को अलग रखे। मोर्सटीन मार्क्स निष्पक्षता को दो दृष्टिकोण से देखते हैं- सकारात्मक एवं नकरारात्मक। सकारात्मक निष्पक्षता का अर्थ है कि बिना किसी शर्त के काम करने के अनुशासन को स्वीकार करें। अर्थात वे किसी भी विधिवत सत्तारूढ़ सरकार की सफलता के लिए भक्ति से काम करें। नकारात्मक विचारधारा के अन्तर्गत लोक सेवक नीति, कार्यक्रम तथा प्रबन्ध जैसे मुद्दों पर अपना सर्वोत्तम निर्णय पेश करें। इनसे अपनों को अलग न रखें और अपनी विशेष योग्यता के अनुरूप इनको अपना भरपूर योगदान प्रदत्त करें। उपरोक्त कथन के अनुसार जिसमें निष्पक्षता की धारणा की व्याख्या की गयी है, कुछ तथ्य निकल कर आते हैं। जैसे- जनता को लोक सेवा के अराजनीतिक चरित्र में विश्वास हो। मंत्रियों को चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल के हों, अपने स्थायी अधीनस्थ अधिकारियों की वफादारी में विश्वास होना चाहिए तथा लोक सेवकों का उच्च मनोबल जो इस विश्वास पर आधारित होता है कि पदोन्नतियां राजनीतिक विचारों के आधार पर नहीं, अपितु गुण के आधार पर की जायेंगी।

सर्वप्रथम मैक्स वैबर ने नौकरशाही की निष्पक्षता की धारणा पेश की थी। तब से लेकर अनेक विद्वानों ने निष्पक्षता की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। मास्टर मैन के शब्दों में, निष्पक्षता ब्रिटिश प्रशासक का गुण रहा है, जिसमें लोक सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक धारणाओं से पूर्ण मुक्त रहता है।

हूबर का कथन है कि लोक सेवकों को केवल औपचारिक वक्तव्य ही प्रेस को देने चाहिए, सार्वजनिक या निजी वक्तव्य नहीं देने चाहिए। उन्हें राजनीतिक या विवादास्पद ढंग से सार्वजनिक भाषण नहीं देने चाहिए। विभिन्न राष्ट्रों में तटस्थता के अलग-अलग रूप मिलते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में लोक सेवकों के राजनीतिक कार्यों पर कम बन्धन है।

राजनीतिक कार्यों में भाग लेने की सबसे अधिक सुविधाऐं ग्रेट ब्रिटेन में ही हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लोक सेवकों के कार्यों पर कठोर प्रतिबन्ध है। लोक सेवकों को राजनीतिक प्रबन्ध या राजनीतिक अभियानों में सक्रिय भाग लेने की सख्त मनाही है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के जस्टिस ब्लैक ने कहा है कि सरकारी कर्मचारियों को प्राप्त राजनीतिक विशेषाधिकार का सारांश है कि वे मौन रूप में मतदान कर सकते हैं तथा सावधानी से एवं शान्तिपूर्वक वे कोई भी राजनीतिक विचार स्वयं को संकट में डालकर ही प्रकट कर सकते हैं और चुनाव अभियान की सभाओं में वे केवल दर्शक मात्र होते हैं। पश्चिमी यूरोप तथा 'स्केण्डिनेवियन देशों' में लोक-सेवक राजनीतिक क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए स्वतंत्र होते हैं। बेल्जियम तथा स्विटजरलैण्ड में लोक-सेवक संसदीय चुनावों में भाग तो लेते हैं, परन्तु चुने जाने पर अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता है। जर्मनी में लोक सेवक को पहले ही अपने पद से त्यागपत्र देकर चुनाव अभियान में भाग लेता है। परन्तु अगर चुनावी प्रत्याशी हार गया है, तो पुनः अपने पद को ग्रहण कर सकता है। चुनाव जीतने पर लोक सेवक पेंशन पर सेवानिवृत्त हो सकता है।

राष्ट्रमण्डलीय देशों में लोक सेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर कड़ा प्रतिबन्ध है। कनाडा में लोक सेवकों को राजनीति में सहभागिता वर्जित है। आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड में लोक सेवक चुनाव तो लड़ सकते हैं, परन्तु राजनैतिक मुद्दों में उनकी निष्पक्षता तथा तटस्थता पर काफी बल दिया जाता है।

भारत में लोक सेवा सम्बन्धी नियमावली के अनुसार सरकारी कर्मचारियों पर राजनीतिक कार्यों में क्रियात्मक रूप से भाग लेने पर पूर्ण प्रतिबन्ध है। केन्द्रीय लोक सेवा नियम 1955 के अनुसार, लोक सेवक को किसी राजनीतिक संगठन के सदस्य, किसी भी राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने अथवा उसके लिए चन्दा देने या किसी प्रकार की सहायता करने पर निषेध है। विधान मण्डल तथा स्थानीय शासन के किसी चुनाव में भाग लेना भी प्रतिबंधित है।

1.5.1 तटस्थता के आयाम

लोक सेवा में निष्पक्षता की मूल शर्त होती है कि लोक सेवकों को प्रशिक्षण एवं परम्परा के द्वारा एक ऐसे राजनीतिक संस्थान का रूप दे दिया जाये कि वह अपने राजनीतिक विचारों के प्रभाव के बिना सार्वजनिक नीतियों को लागू करें। निष्पक्षता को निम्नलिखित पैमानों के आधार उसकी धारणा को गलत या सही ठहरा सकते हैं- निर्णय करने की प्रक्रिया के प्रभाव में मात्रा, किस दर्जे तक राजनीतिक कार्यकारिणी को नौकरशाही से अलग किया

जाये, लोक सेवकों के कार्य में राजनीतिक हस्तक्षेप कहाँ तक होता है, जनता के विश्वास में कितना दम है? इन मापदण्डों के आधार पर लोक सेवकों के पक्ष या निष्पक्ष होने के प्रभाव सामने आ जाते हैं।

1.5.2 तटस्थता की वर्तमान में प्रासंगिता

निष्पेक्षता की अवधारणा देश की विशेष परिस्थितियों के अनुरूप हुआ करती थीं। भारत में एक निष्पक्ष लोक कर्मचारी बनाने के कई उद्देश्य थे। उनमें से एक प्रमुख उद्देश्य था कि उनको देश में चल रही राजनीतिक गतिविधियों से पृथक रखा जाये। कुलदीप माथुर न कहा था कि इस समय उनका राजनीतिकरण केवल ब्रिटिश विरोधी ही हो सकता था। इस निष्पक्षता का अभिप्राय केवल नौकरशाही को कारणत्व का एक मात्र सिद्धान्त बनाना नहीं था, अपितु लोक सेवा को साम्राज्यवादी शक्ति को बनाये रखने के कार्यों के प्रति विश्वास ही न होने से बचाना था। निष्पक्षता की यह धारणा द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त तक ठीक ठाक काम करती रही, उसके उपरान्त इस धारणा को चुनौती दी जाने लगी। यहाँ तक जिस राष्ट्र ब्रिटेन ने सर्वप्रथम निष्पक्षता को सम्बोधित किया एवं कठोर अनुयायी था, उसने भी इसकी निरन्तर प्रमाणिकता पर सन्देह करने लगा। अपने लोक सेवकों को भारी मात्रा में राजनीतिक अधिकार प्रदत्त कर उन्होंने परोक्ष रूप से यह स्वीकार लिया है कि आज के बदलते राजनीतिक परिवेश एवं परिस्थितियों में लोक सेवकों को पूर्णतया राजनीतिक दृष्टि से निष्पक्ष अथवा अलग रखना सम्भव नहीं है। लोक सेवकों को अब मूल्य रहित नहीं समझा जाता है, अपितु ये राजनीतिक शक्ति का उपयोगी तंत्र माना जाता है। फलस्वरूप निष्पक्षता को त्यागने के कई कारण माने जाते हैं। जैसे नीति निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता, राजनीतिक व्यवस्थाओं में लोक सेवा के नेतृत्व की भूमिका, कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु, पालन पोषण के उत्पादन हेतु, विकासशील देशों में राजनीतिक मतभेदों को समाप्त करने इत्यादि हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. सी0बी0आई0 का गठन 1963 में हुआ। सत्य/असत्य
2. संसद में लोकपाल विधेयक सर्वप्रथम मई 1968 में पेश किया गया था। सत्य/असत्य
3. सर्वप्रथम लोकायुक्त अधिनियम 1970 में उड़ीसा सरकार ने बनाया था। सत्य/असत्य
4. राज्यों में लोकायुक्त की नियुक्ति 1971 से प्रारम्भ होगयी है। सत्य/असत्य
5. महाराष्ट्र प्रथम राज्य है, जिसने 1971 में लोकायुक्त की नियुक्ति की। सत्य/असत्य

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जन शिकायत निवारण के बारे में भली-भॉति परिचित हो जायेंगे। इसके अन्तर्गत शिकायत कैसे की जाती है एवं उसके निवारण हेतु किसको आवेदन करना पड़ता है? लोक प्रशासन के दृष्टिकोण से लोकपाल विधेयक अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु पिछले कई वर्षों से अधर में लटका हुआ है। अभी-अभी इसकी चर्चा काफी जोरों पर है, कि इसका स्वरूप क्या होगा? एवं कौन-कौन से शासन के तंत्र इसमें सम्मिलित किये जायें?

1.7 शब्दावली

सी0बी0सी0- केन्द्रीय सर्तकता आयोग, सी0बी0आई0- केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, ए0आर0सी0- प्रशासन सुधार आयोग, ओम्बुडसमैन- संस्था का नाम है, जिसके अन्तर्गत लोकपाल एवं लोकायुक्त आते हैं, स्कैंडिनेवियन देश- फिनलैण्ड, डेनमार्क, स्वीडन और नार्वे।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बसु, रूमकी- लोक प्रशासन।
2. सडाना एवं शर्मा- लोक प्रशासन के सिद्धान्त।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा एवं शर्मा- कार्मिक प्रशासन।
2. कटारिया, सुरेन्द्र- कार्मिक प्रशासन।

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जन शिकायत निवारण से क्या समझते? सर्तकता आयोग के कार्यों को विस्तार से लिखिये।
2. लोकपाल विधेयक क्या है? इसके कार्यों को विवेचना कीजिए।

इकाई- 2 प्रशासन में भ्रष्टाचार

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 भ्रष्टाचार का अर्थ

2.3 भ्रष्टाचार का इतिहास

2.4 भ्रष्टाचार की अवधारणा

2.5 भ्रष्टाचार की गतिविधियाँ

2.5.1 केन्द्रीय सतर्कता आयोग के अनुसार भ्रष्टाचार के रूप

2.5.2 भ्रष्टाचार की सीमाऐं

2.5.3 भ्रष्टाचार की विशेषताऐं

2.6 भ्रष्टाचार के कारण

2.7 भ्रष्टाचार के परिणाम

2.8 प्रशासन में भ्रष्टाचार

2.9 वर्तमान में भ्रष्टाचार के बदलते आयाम

2.10 भ्रष्टाचार उन्मूलन के प्रयास एवं सुझाव

2.11 प्रशासनिक सुधार आयोग की भ्रष्टाचार कम करने के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशें; 2007

2.12 भ्रष्टाचार चक्र

2.13 सारांश

2.14 शब्दावली

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.18 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

भ्रष्टाचार विश्वव्यापी समस्या है। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार काफी व्याप्त है। लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह एक ऐसा रोग है जिससे समस्त समाज को परेशानियां उठानी पड़ रही हैं। भारत देश में यह मुद्दा काफी तूल पकड़े हुए है। वैसे कौटिल्य ने भी अपने समय में चालीस प्रकार के भ्रष्टाचार बताये थे। प्रस्तुत लेख में इसी पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

सुशासन के अर्न्तगत शासन द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों को प्रशासन से जनता तक पहुँचाना ही एक मात्र कार्य है। परन्तु प्रशासन अपने दायित्वों का निर्वहन इमानदारी से नहीं करता। फलस्वरूप समाज में फैली विकृतियां कम होने के बजाय बढ़ती जा रही हैं। उदाहरण के रूप में गरीबी उन्मूलन, अमीर एवं गरीब के बीच काफी अन्तर बढ़ गया है। विकास के हर क्षेत्र में यही समस्या विद्यमान है। इससे निपटने के लिए समय-समय पर बहुत सुझाव भी दिये गये।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भ्रष्टाचार के अर्थ एवं इतिहास के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
- भ्रष्टाचार के कारणों और भ्रष्टाचार के परिणाम को जान सकेंगे।
- भ्रष्टाचार उन्मूलन के विभिन्न पक्षों को जान सकेंगे।
- प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा भ्रष्टाचार कम करने के लिए, सुझाओं का अध्ययन कर सकेंगे।

2.2 भ्रष्टाचार का अर्थ

संकीर्ण दृष्टि में भ्रष्टाचार का अभिप्राय किसी कार्य को करने या न करने के लिए रिश्वत लेना है। व्यापक दृष्टि में भ्रष्टाचार, सार्वजनिक पद या सत्ता का दुरूपयोग करने को कहते हैं।

2.3 भ्रष्टाचार का इतिहास

भ्रष्टाचार का मानव से सम्बन्ध किसी न किसी रूप में हमेशा से अस्तित्व में रहा है। भले ही इसका क्षेत्र सीमित से व्यापक हुआ है। मौर्यकाल के सन्दर्भों में अर्थशास्त्र के रचयिता प्रसिद्ध भारतीय विद्वान कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के 40 प्रकार बताए थे। उनके अनुसार जिस प्रकार जिवा के लिए परखे हुए शहद का स्वाद न लेना असम्भव है, उसी प्रकार किसी शासकीय कर्मचारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण न करना असम्भव है। सल्तनत एवं मुगलकाल में भ्रष्टाचार प्रचलित था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में भ्रष्टाचार भारतवर्ष में सर्वत्र फैल गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों ने समस्त आदर्शों एवं मान्यताओं को जड़ से उखाड़ फेंका, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी पूरी तरह से कमजोर हो गयी और अन्त में कम्पनी को हटना पड़ा। तत्पश्चात ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष का शासन अपने हाथ में ले लिया।

लगभग 150 वर्षों के शासन में अंग्रेजों ने एक श्रेष्ठ प्रशासन तन्त्र की स्थापना की थी। ब्रिटिश भारतीय प्रशासन में राजस्व, पुलिस व आबकारी विभागों को विस्तृत स्वविवेकी की शक्तियाँ प्राप्त थीं। परिणामस्वरूप, उनके भ्रष्ट होने की पर्याप्त गुजाइश थी। न्यायपालिका के छोटे न्यायालयों का भी यही हाल था। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने तक भ्रष्टाचार अधिकांशतः प्रशासन के निम्न स्तर तक ही समिति था। उच्च लोक सेवक पतित नहीं हुए थे। वरिष्ठ अधिकारी अधिकांशतः अंग्रेज थे। वे भारतीय जनमानस से दूर रहते थे तथा सेवा निवृत्ति के बाद वे इग्लैण्ड चले जाते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें अच्छा वेतन मिला था, इसके कारण वे सच्चरित्र बने रहे।

वास्तव में भारतवर्ष को कुशल तथा अपेक्षाकृत ईमानदार लोक सेवा विरासत में प्राप्त हुई। स्वतंत्रता के पश्चात लोगों की सच्चरित्रता में कमी आई है।

मौर्यों के महाअमात्य; प्रधानमन्त्री चाणक्य ने कहा था, 'अगर राज्य को कर्त्तव्य निष्ठा और नियमों के अनुरूप चलाना है तो प्रशासनिक अनुक्रम में सबसे ऊपर बैठे व्यक्ति को पारदर्शिता लानी होगी।'

इसी सन्दर्भ में चाणक्य की एक कहानी मशहूर है। एक बार वे रात्रि में अपनी कुटिया में करणिक; क्लर्क के साथ सरकारी कामकाज निपटा रहे थे। थोड़े समय बाद जब सरकारी काम निपट गया तो उन्होंने दीया बुझा दिया और कलम रख दी। इसके बाद उन्होंने वहीं पड़ा एक दूसरा दीया जलाया और अपने पास से दूसरी कलम और स्याही निकाल कर कुछ लिखने लगे। इस पर उनके क्लर्क ने आश्चर्य से पूछा कि इसका क्या मतलब है? इसके जवाब में उन्होंने कहा कि जब मैं सरकारी काम कर रहा था तो उस समय सरकारी दीपक और सरकारी कलम का उपयोग नीति सम्मत था। अब मैं निजी काम कर रहा हूँ, इसलिए निजी दीये और कलम का उपयोग व्यावहारिक है। इस तरह की पारदर्शिता अगर पदानुक्रम में उच्च स्तर पर बैठे लोग दिखाने लगे तो राज्य का विकास कोई नहीं रोक सकता।

2.4 भ्रष्टाचार की अवधारणा

भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थों में हुआ है। पुलिस एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा रिश्वत लेना, औद्योगिक प्रष्ठिानों की भ्रष्ट व्यवस्था, यौन अनाचार, व्यापारियों द्वारा कम तोलना, मिलावट करना, स्मगलिंग, कालाबाजारी, सेल-टैक्स आदि की चोरी, न्यायाधीशों द्वारा पैसा लेकर अपराधी को मुक्त कर देना, चुनाव जीतने के लिए गडबड़ियां करना, अधिकारियों द्वारा राज्य की भूमि और संपत्ति की चोरी, आदि सभी भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं।

भ्रष्टाचार के अनेक प्रकार होने के कारण इसकी परिभाषा कठिन प्रतीत होती है। भ्रष्टाचार की कुछ परिभाषाऐं इस प्रकार हैं-

भ्रष्टाचार निरोध समिति, 1964 अनुसार, 'शब्द के व्यापक अर्थ में एक सार्वजनिक पद अथवा जनजीवन में उपलब्ध एक विशेष स्थिति के साथ संलग्न शक्ति तथा प्रभाव का अनुचित या स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है।'

राबर्ट सी0 ब्रुक्स के अनुसार, 'कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए जान बूझकर प्रदत्त कर्तव्य का पालन न करना राजनैतिक भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार सदैव कभी किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लाभ के लिए कानून एवं समाज के विरोध मे किया जाना वाला कार्य है।'

इटियट व मैरिन के अनुसार, 'प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्ति हेतु जानबूझकर निश्चित कर्त्तव्य का पालन न करना ही भ्रष्टाचार है।'

भारतीय दण्ड विधान की धारा 161 के अनुसार, कोई भी सार्वजनिक कर्मचारी वैध पारिश्रमिक के अतिरिक्त अपने या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए जब कोई आर्थिक लाभ इसलिए लेता है कि सरकारी निर्णय पक्षपातपूर्ण ढंग से किया जाये, तो यह भ्रष्टाचार है तथा इससे सम्बन्धित व्यक्ति भ्रष्टाचारी है। यह परिभाषा केवल राज्य कर्मचारियों तक ही सीमित है। कानून की दृष्टि में यह परिभाषा भ्रष्टाचार की परख है तथा उपरोक्त प्रकार से वर्णित भ्रष्टाचार केन्द्र या अन्य राज्य सरकार या सांसद या विधान-मण्डल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में किया गया है, तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दण्ड या अर्थ दण्ड या दोनों दिये जायेंगे।

लोक कर्मचारियों के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 ने भ्रष्टाचार के क्षेत्र की निम्नलिखित परिभाषा दी है। एक लोक सेवक अपने कर्त्तव्य के सम्पादन में आपराधिक दुराचरण का दोषी होता है-

1. यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति के लिए ऐसी धनराशि, जो विधिक पारिश्रमिक के अतिरिक्त होती है, किसी उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में, जैसा भारतीय दण्ड विधान की धारा 161 में उल्लिखित है, स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है।
2. यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु बिना कारण या किसी ऐसे कारण के लिए, जो वह जानता है कि अनुचित है, किसी जान-पहचान के व्यक्ति या किसी सम्पादित कार्य या व्यापार से सम्बन्धित या उसके या किसी ऐसे लोक सेवक के जिसका वह अधीनस्थ है, कार्यालय सम्बन्धी कार्यों या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति से जिसे वह जानता है या जिससे सम्बन्धी व्यक्ति का हित है या सम्बन्धित है, ग्रहण करता है, तथा
3. यदि वह बेईमानी या जालसाजी से धन का दुरूपयोग करता है या लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरूपयोग करते हुए अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 के प्रावधानों की पकड़ मजबूत करने के लिए सन् 1988 में संशोधन किया गया। लोक सेवक की परिभाषा भी अब अधिक विस्तृत कर दी गयी है, जो उचित भी है। मन्त्री तथा सांसद भी लोक सेवक हैं।

2.5 भ्रष्टाचार की गतिविधियाँ

भ्रष्टाचार की निम्नलिखित गतिविधियाँ हैं-

1. सरकारी पद या सत्ता का दुरूपयोग।
2. जानबूझ कर कार्य को रोकना।
3. सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुँचाना।
4. स्वार्थवश अनैतिक लाभ प्राप्त करना (मौद्रिक या अमौद्रिक)।
5. निर्धारित नियमों का उल्लंघन करना।
6. ऐसा कृत्य जिससे परिचित को लाभ मिले एवं किसी अन्य का अधिकार, प्राकृतिक न्याय छीना जाता हो।

2.5.1 केन्द्रीय सतर्कता आयोग के अनुसार भ्रष्टाचार रूप

केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा भ्रष्टाचार के 27 रूपों को स्पष्ट किया गया हैं-

1. निम्न स्तरीय वस्तुओं या कार्य को स्वीकार करना।
2. सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरूपयोग करना।
3. जिन वयक्तियों से अधिकारियों के कार्यालय स्तर पर सम्बन्ध हैं, उनके आर्थिक दायित्वों को वहन करना।
4. ठेकेदारों या फर्मों से कर्ज लेना, जिनसे उनके कार्यालय स्तरीय सम्बन्ध होते हैं।
5. ठेकेदारों एवं फर्मों को रियायतें देना।
6. झूठे दौरे, भत्ते एवं गृह-किराया आदि का दावा करना।
7. अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना।
8. बिना पूर्व सूचना या पूर्वानुमति के अचल सम्पत्ति अर्जित करना।
9. प्रभाव या अन्य कारण से शासन को हानि पहुँचाना।
10. शासकीय पद या सत्ता का दुरूपयोग करना।
11. भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में गैर-कानूनी रूप से धन लेना।
12. शासकीय कर्मचारियों का व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग करना।
13. जन्मतिथि एवं समुदाय सम्बन्धी जाली प्रमाण-पत्र तैयार करना।

14. रेल तथा वायुयान में स्थान सुरक्षित करने में अनियमितता।

15. मनीऑर्डर, बीमा एवं मूल्य देय पार्सलों को न देना।

16. नए डाक टिकटों को हटाकर पुराने टिकट लगाना।

17. आयात-निर्यात लाइसेंस देने में असहयोग एवं अनियमितता।

18. लोक सेवकों की जानकारी एवं सहयोग से विभिन्न फर्मों द्वारा आयातित एक निर्धारित कोटे का दुरूपयोग।

19. टेलीफोन कनेक्शन देने में अनियमितता।

20. अनैतिक आचारण।

21. उपहार ग्रहण करना।

22. आर्थिक लाभ के लिए आयकर तथा सम्पति कर आदि का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना।

23. स्कूटर एवं कार खरीदने के लिए स्वीकृत अग्रिम धनराशियों का दुरूपयोग करना।

24. विस्थापितों के दावों के निपटारे में अनुचित विलम्ब।

25. विस्थापितों के दावों का गलत मूल्यांकन।

26. आवासीय भूमि के हिस्सों के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना।

27. सरकारी आवासों पर अनाधिकृत कब्जा और उन्हें अनाधिकृत रूप से किराए पर उठाना।

2.5.2 भ्रष्टाचार की सीमाऐं

भ्रष्टाचार की सीमाऐं अनन्त हैं। भारतीय लोक प्रशासनिक व्यवस्था में व्यापक स्तर पर द्रष्टव्य(देखे जाने वाले) भ्रष्ट आचरण के कुछ उदाहरण-

1. सरकारी भवन, वाहनों तथा टेलीफोन को निजी प्रयोग में लाना।
2. झूठे चिकित्सा पुनसंरण बिल तथा बीमा राशि का भुगतान प्राप्त करना।
3. सरकारी चिकित्सक द्वारा चिकित्सालय समय में घर पर फीस लेकर रोगी को देखना।
4. शिक्षकों द्वारा ट्यूशन कराना, प्रश्न-पत्र बताना व अंक बढ़ाना।
5. किराया लेकन ट्रेन या बस का टिकट न देना या कम राशि की टिकट देना।

6. सरकारी स्टेशनरी, दवा, उपकरण, फर्नीचर इत्यादि को बेचना या अपने घर पर ले आना अथवा निजी इस्तेमान में लाना।
7. कम कीमत अदा करके अधिक की रसीद प्राप्त करना।
8. यात्रा बिल में वास्तविक श्रेणी के बजाए उच्च श्रेणी की राशि उठाना।
9. व्यक्तिगत कार्यों की क्रियान्विति हेतु सरकारी टूर बनाना।
10. सरकारी कार्य में घटिया स्तर की सामग्री प्रयुक्त करना।
11. राशन सामग्री गायब करना।
12. उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर करके अनुचित रूप से सीट से गायब रहना।
13. लाइसेंस, परमिट, अनुमति तथा अनापत्ति प्रमाण-पत्र इत्यादि में अनियमितता बरतना।
14. निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्द्धा में अनैतिक कृत्य करके सरकार को हानि पहुँचाना।
15. झूठे प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना या उनकी स्वीकृति देना।
16. सरकारी कर्मचारी द्वारा अपनी पत्नी या सम्बन्धी के नाम से कोई एजेंसी लेना या स्वयं उसके कार्य से संलग्न रहना।
17. वरीयता या प्राथमिकता क्रम को भंग करना।
18. सरकारी कानूनों व नियमों की कमियां दूसरों को बताकर प्रशासन को हानि पहुँचाना तथा
19. नि:शुल्क पास सुविधा का दुरूपयोग करना।

2.5.3 भ्रष्टाचार की विशेषताएँ

भ्रष्टाचार की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. भ्रष्टाचार में स्वार्थपूर्ति के लिए लघुमार्ग अपनाया जाता है।
2. इसमें नगद या वस्तु के रूप में घूंस दी जाती है।
3. इसमें अयोग्य के प्रति पक्षताप व योग्य के प्रति अन्याय होता है। इससे अन्ततः समाज को हानि होती है।
4. यह लेन-देन के सिद्धान्त पर आधारित है।

5. भ्रष्टाचार में पैसा उद्देश्य भी है और साधन भी है।
6. भ्रष्टाचार में कानून या नियमों की अवहेलना की जाती है। कभी-कभी कानून के विपरीत न होने पर भी न्याय एवं नैतिकता के विरूद्ध आचरण भ्रष्टाचार कहलाता है।
7. भ्रष्टाचार में व्यक्ति अपने निश्चित कर्त्तव्य का उल्लंघन करता है।
8. भ्रष्टाचार में कर्तव्यों का उल्लंघन जान-बूझकर किया जाता है।
9. भ्रष्टाचार में कर्तव्यों का उल्लंघन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कोई अनुचित लाभ उठाने के लिए किया जाता है।

2.6 भ्रष्टाचार के कारण

जैसा कि हम जानते हैं भ्रष्टाचार का मूल कारण मानव नीयत में विद्यमान है। यद्यपि भ्रष्टाचार के मूल में अनेक राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक कारक निहित हैं। आज हम समाज के किसी एक क्षेत्र विशेष को ही भ्रष्टाचार का दोषी नहीं ठहरा सकते। समाज के सभी क्षेत्र और वर्ग इस भ्रष्टता में बुरी तरह डूबे हुए हैं। समस्त देश की व्यवस्था सड़-गल गयी है, जिसमें आमूल-चूल परिवर्तन की तीव्र आवश्यकता है। तथाकथित सम्भ्रान्त लोगों ने भ्रष्टाचार का निर्वाह बड़ी शालीनता से किया है। इनका पहला कार्य शिक्षण को जीवन से अलग करना है। जनसाधारण से कहा जाता है कि शिक्षण के बिना राष्ट्र का कल्याण होने वाला नहीं है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा को इस ढ़ाँचे में ढाला जाता है कि पढ़कर नवयुवक अपने स्वावलम्बी जीवन में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। वह सिर्फ सरकार के अर्थ-तन्त्र में एक अफसर, क्लर्क या कारीगर बनकर रह जाता है। शिक्षा के माध्यम से एक ऐसी फौज खड़ी हो जाती है, जिसका इस युग में मुख्य काम पैसा कमाना हो जाता है। परिणामस्वरूप सीमित साधनों में भौतिक ऐश्वर्य जुटाने के लिए अनैतिक राह भ्रष्टाचार को जन्म देने का कारण बनती है। भ्रष्टाचार के कतिपय विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार से हैं-

1. **राजनैतिक इकाइयाँ-** राजनीति में भ्रष्टता का सबसे बड़ा कारण चुनाव, वोट और कुर्सी के लिए किये गये दांव-पेंच हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व स्वाधीनता संग्राम के समय में राजनीति एक 'मिशन' के रूप में थी, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात इसनें 'कमीशन' का रूप ले किया है। वर्तमान समय में राजनेता के जीवन विकास की प्रक्रिया में एक क्रम है, पहले प्रभावी या सरकार जिसकी है, उस पार्टी का टिकट प्राप्त करने

की दौड़, जाति, पैसे आदि के आधार पर यदि टिकट मिल जाये तो फिर चुनाव की जोड़-तोड़ और विभिन्न प्रकार की सांठ-गांठ, चुनाव जीत गये तो फिर मंत्री पद प्राप्त करने और उसे बरकरार रखने तक यही राजनेता का जीवन-चक्र है। इस सब में जन-सेवा तो सबसे गौण बात है। सामाजिक परिवर्तन, नियन्त्रण तथा नैतिक विकास में राजनेताओं की आदर्श छवि किसी भी देश के लिए गर्व की बात होती है, लेकिन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का पतन तथा इसके कर्णधारों की धूमिल होती छवि एक गंभीर चिंता का विषय बन चुकी है। ये लोग प्रजा को मताधिकार तो देते हैं फिर उसका उपभोग स्वार्थी तत्वों द्वारा भी करते हैं। कहीं प्रलोभन, कहीं रूपया, कहीं धोखा और कहीं जूता, कहीं रिश्ता तो कहीं बिरादरी ये सारे हथकण्डे भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने के लिए अपनाते हैं। स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार का जन्म सत्ता के उच्च शिखरों में होता है, जो शनैः-शनैः सम्पूर्ण तन्त्र में रिस जाता है। राजनीति से ही प्रभावित यह भ्रष्टता प्रशासन-तंत्र में घुस बैठती है। वस्तुतः प्रशासन मंत्रियों की अधीनस्थ सेवा है, यदि मंत्रियों में भ्रष्टाचार फैला हुआ है, तो प्रशासन में उससे बेहतर व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारे देश में रिश्वत के बिना फाइल क्या कोई कागज जरा भी आगे खिसकने से इनकार करता है। प्रान्तीय सेवाओं में हर पद का ऐसा ऊँचा रेट हो गया है कि उसे दे पाना हर एक के बूते की बात नहीं। जो इस ऊँचे रेट को देकर पद प्राप्त करते हैं, वे जल्दी ही इस रूपये को वसूलने के चक्कर में पड़ जाते हैं। इस प्रकार पूरा प्रशासन-तंत्र और नौकरशाही भ्रष्टाता में डूबी हुई है।

2. **व्यापार एवं राजनीति में निकट सम्बन्ध-** बड़े-बड़े व्यापरियों और राजनीतिज्ञों के बीच गठबन्धन के कारण कई उद्योगपति चुनाव के समय राजनीतिज्ञों तथा विशेषतः सत्तारूढ़ दल को भारी रकम, आर्थिक सहायता के रूप में देते हैं तथा उनके सत्ता में आने पर उनसे कई लाभ उठाते हैं। ऐसे लोग चाहते हैं कि वे कम टैक्स चुका कर टैक्स की चोरी करें, वस्तुओं में मिलावट करें और वस्तुओं को संग्रह करें। 'सत्यम घोटाला' अधिक मुनाफा कमाए और इन सारे कार्यों के लिए कई राजनेता उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं।
3. **प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था के दोष-** प्रजातन्त्र में दलीय प्रणाली महत्वपूर्ण है। दल को समर्थन देने वाले व्यक्ति अपने हितों के अनुरूप शासक दल से कार्य करवाते हैं। दलगत राजनीति भी भ्रष्टाचार के लिये उत्तर दायी है। अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए सत्तारूढ़ दल सभी प्रकार के उचित व अनुचित

कदम उठाता है। भारत में 'आया राम-गया राम' वाली दल-बदल की राजनीति ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है।

4. **कार्मिक नीतियाँ-** कुछ वर्षों में कुछ ऐसे उद्देश्यों से गलत कार्मिक नीतियाँ अपनायी गयी, जिससे अफसरशाही कमजोर हो गयी हो, उसका मनोबल टूट सा गया है। आज उच्च सरकारी वर्ग में पदोन्नति कार्य कुशलता से जुड़ी नहीं है। अवसरवादी व्यक्ति जो अधिकतर योग्यता व ईमानदारी में शून्य होते हैं, परन्तु लचीली अन्तरात्मा व मुखौटे लिये घूमते हैं, महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हो जाते हैं। कई बार वरिष्ठ, योग्य, ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों को जानबूझकर ऐसे पदों से दूर रखा जाता है। कभी-कभार ऐसे योग्य व्यक्तियों को बार-बार स्थानान्तरित कर अन्य ऐसी युक्तियों के द्वारा परेशान किया जाता है। इन परिस्थितियों के कारण अधिकारी वर्ग का मनोबल इतना कमजोर हो गया है कि यह वर्ग अब सरकारी नीतियों को लागू करने में अपने को अक्षम पा रहा है। वह इतना हतोत्साहित है कि वह रोजमर्रा का सामान्य प्रशासन चलाने में भी कठिनाई अनुभव करता है। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय राजनीतिज्ञ भी इस दशा के लिए जिम्मेदार हैं। सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा नौकरशाही की कार्यशौली में कोटा, परमिट तथा लाइसेंस प्रणालियों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। जिन व्यक्तियों के पास साधन थे, वे अपने व्यापार या उद्योग का विस्तार करते गये और इस प्रक्रिया में बॉधा अनुभव करने पर सम्बन्धित कार्मिक अथवा प्रशासन को खरीद कर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं।

5. **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन-** वर्तमान समय में सामाजिक मूल्य बदलते जा रहे हैं। अब व्यक्तिवाद और भौतिक लाभ को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर होने लगा है। अतः व्यक्ति सभी प्रकार के अनुचित साधनों का प्रयोग कर सम्पत्तिशाली बनना चाहता है, जिसके लिये वह भ्रष्ट साधनों का उपयोग करने से भी नहीं हिचकिचाता। मानव का भौतिकवादी होना समस्या का सबसे गंभीर पक्ष है। इसमें व्यक्ति के पास एकत्रित भौतिक वस्तुऐं उसकी जीवन-शैली को और सुविधाजनक तो बनाती हैं, जिसको वह अपना प्रतिष्ठा का परिचायक समझता है। समाज में व्यक्ति के पास उपलब्ध सम्पत्ति का आकलन तो किया जाता है, किन्तु इस विषय पर विचार नहीं होता कि

एकत्रित सम्पत्ति का स्रोत क्या है। अतः यह कहा जा सकता है कि इसके द्वारा भ्रष्टाचार को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है।

6. **मुद्रा अर्थ-व्यवस्था-** मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रचलन के कारण धन संग्रह करना और उसे छिपाकर रखना सरल हो गया है। काका हाथरसी की कविता- धन्य तू रिश्वत रानी, अनगिनत तेरे नाम
हक, पानी, बक्शीस, भेंट, रिश्वत , घूस,
इनाम नजर, नजराना, पगड़ी, तेरे
कारन खॉऊ माल की इन्कम तगड़ी।
7. **विकास के असमान अवसर-** सभी लोगों को विकास के समान अवसर प्राप्त न होने के कारण भी कई लोग अपना विकास करने एवं साधन जुटाने के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं। पूरी व्यवस्था पर भ्रष्ट अफसरशाह और नेता काबिज हो गये हैं और कमाई वाले पदों पर बने हुये हैं। इन लोगों ने घूसखोरी और सरकारी योजनाओं के धन को हेराफेरी का एक फलता-फूलता व्यवसाय बना दिया है। इनके भ्रष्टाचार के लिए किसी सबूत की जरूरत नहीं है। देश के बड़े-बड़े महानगरों में इनकी आलीशान कोठियां, फार्म हाऊस, मंहगी गाड़ियॉ और तमाम नामी-बेनामी सम्पत्तियॉ हैं। आज भारतीय अफसरशाही को अधिकतर लोग दब्बू, अयोग्य व भ्रष्ट व्यक्तियों का समूह समझते हैं। यह छवि किसी भी मानक के अनुसार गलत या अतिश्योक्ति नहीं है।
8. **प्रशासकीय कठिनाइयाँ-** राजनीतिक संस्थाओं का विशाल क्षेत्र होने के कारण सभी व्यक्ति इन संस्थाओं के कार्यों का लाभ नहीं उठा पाते। वे इन प्रशासकीय कठिनाइयों और बारीकियों से पूर्णतः परिचित नहीं हो पाते। अतः झंझटों से मुक्ति पाने के लिए वे रिश्वत के रूप में रूपया देकर अपना काम निकलवा लेते हैं।
9. **अशिक्षा-** भारत में अधिकाश जनसंख्या अशिक्षित है। अशिक्षितों की अनभिज्ञता का लाभ उठाने के लिए कर्मचारी एवं अधिकारी-गण उनसे किसी न किसी प्रकार से रिश्वत के रूप में रूपया ऐंठ लेते हैं।
10. **कानून की अनभिज्ञता-** विभिन्न क्षेत्रों में कानून की अधिकता एवं कानून की बारीकियों से सभी लोग परिचित नहीं हैं। अतः जो लोग कानून के रक्षक माने जाते हैं, वे लोगों की कानून के प्रति अनभिज्ञता का लाभ उठाकर रिश्वत लेते है।

11. **नियन्त्रण प्रणाली-** प्रशासनिक कार्यों में नैतिकता समाहित करने तथा जवाबदेयता सुनिश्चित करने के लिये अनेक कानून तथा प्रशासनिक संरचनाऐं कार्यरत हैं, किन्तु नियंत्रण का यह तंत्र प्रायः निष्क्रिय और अकार्य कुशल पाया गया है। सतर्कता आयोग, भ्रष्टाचार निरोधक विभाग, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, पुलिस एवं गुप्तचर विभाग। जन-प्रतिनिधि(मंत्री), लेखा परीक्षक तथा लोकायुक्त सहित भ्रष्टाचार नियंत्रण की विभागीय प्रणालियां सम्पूर्ण मारक क्षमता से क्रियाशील नहीं रह पाती हैं।
12. **चारित्रिक एवं नैतिक पतन-** चरित्र एवं नैतिकता में पतन भ्रष्टाचार के लिए काफी कुछ सीमा तक उत्तर दायी है। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर किया जाता है, चाहे वह अनैतिक तरीके से ही एकत्रित किया गया हो। प्राचीन काल में समाज की संरचना सरल थी, जीवन की इच्छाऐं कम थीं तथा ग्रामीण परिवेश में नैतिकता का एक विशिष्ट महत्व था। वर्तमान भारत में सच्चरित्रता या ईमानदारी की बातें करने वाला 'उपहास' का पात्र बन जाता है, क्योंकि मानसून में तैरते मैढकों के झुण्ड में कोयल की कौन सुनें? भारत में भ्रष्टाचार स्थिति को स्पष्ट करते हुए नीरद सी0 चौधरी ने लिखा है, 'छोटे से क्लर्क से लेकर मंत्री तक शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे किसी न किसी मात्रा में धन द्वारा नियंत्रित न किया जा सके।' भ्रष्टाचार के इस तंत्र को उजागर करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने कहा था कि 'विकास कार्यों के लिए मैं केन्द्र से एक रूपया भेजता हूँ, लेकिन जरूरतमंद तक 15 पैसे ही पहुँच पाते हैं।' वर्तमान समय में तो यह स्थिति सुधरने की बजाय और बिगड़ गयी है।
13. **भ्रष्टाचार पनपाने में उच्चाधिकारियों का सहयोग-** भ्रष्टाचार तभी पनपता है, जब उच्च अधिकारियों का सहयोग हो। जब कलैक्टर, एस0 पी0 और मंत्रीगण ही भ्रष्ट होंगे तो उनके अधीन कर्मचारी भी भ्रष्ट होंगे। जब रक्षक और शासन करने वाले व्यक्ति ही भक्षक और भ्रष्ट हों तो सामान्य लोगों से क्या अपेक्षा की जा सकती है।
14. **देश भक्ति में ह्रास-** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में भ्रष्टाचार बढ़ा है। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात यहाँ के अधिकांश नागरिक स्वयं को स्तवंत्र नहीं अपितु स्वछन्द समझने लगे हैं। यहाँ की जनता, सरकार को स्वयं से सर्वथा पृथक समझती है। देश के सरकारी कार्मिक से लेकर आम आदमी तक हर कोई सरकार को परायेपन की नजर से देखता है।

सरकारी संस्था को लूटने या हानि पहुँचाने को सामान्यतः अपराध नहीं माना जा रहा है। यहाँ लोकतंत्र नहीं लूटतंत्र राज करता है। बहुत से नागरिक तो देश की सीमाओं पर युद्ध करने को ही देशभक्ति का परिचायक मानते हैं। रिश्वत देना और लेना दोनों ही भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं। कई बार ऐसा भी होता है, जब व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु सरकारी कार्मिक को प्रस्ताव करके रिश्वत देता है। ऐसी स्थिति में भ्रष्टाचार का फैलाव सरलता से होता है। जिसके कारण देश को इतनी बड़ी हानि पहुँचती है, जिनके परिणाम दूरगामी होते हैं। जैसे- शासन की जगह शोषण, न्यायपालिका की जगह भ्रष्ट पालिका, लोकतंत्र की जगह लूट-तन्त्र। इस प्रकार सम्पूर्ण दम घोंटू भ्रष्टतंत्र के निर्माण में लग जाता है।

15. **वेतनमानों में विसंगतियाँ-** विशाल भू-भाग तथा विविध सामाजिक आर्थिक जटिलताओं के कारण भारत के प्रत्येक स्थान पर जीवनयापन एक समान नहीं है। गॉवों में कम आय में भी सम्मानपूर्वक जीवन जिया जा सकता है। वहीं महानगरों में विपुल धनराशि भी अपर्याप्त सिद्ध होती है। जिन कर्मचारियों को वेतन कम मिलता है, वे अपनी आवश्यकताओं एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए भ्रष्ट तरीके से धनोपार्जन करने का मार्ग तलाशते हैं। इसके अलावा प्रतिवर्ष फरवरी तथा मार्च माह में सरकारी अधिकारियों को या तो अधिकांश रूपये बचत योजनाओं में विनियोजित करने पड़ते हैं अथवा आयकर के रूप में सरकार को चुकाने होते हैं। सारांशतः भारत में कार्य, पद, योग्यता, महंगाई तथा परिस्थति के अनुसार वेतन नहीं दिया जाता है। अतः कतिपय कार्मिक मजबूर होकर अवैधानिक तरीकों से आय करना भी शुरू कर देते हैं।

16. **कर्मचारी संघ-** आज सरकारी और गैर-सरकारी सभी विभागों में कर्मचारियों के संघ एवं संगठन बने हुए हैं। जब भी किसी कर्मचारी पर रिश्वत लेने या भ्रष्ट होने का आरोप लगाया जाता है या उसके विरूद्ध कोई कार्यवाही की जाती है या उसका स्थानान्तरण कर दिया जाता है तो ये संगठन ऐसी किसी भी कार्यवाही का समान्यतः विरोध करते हैं। वे कर्मचारी के प्रति अन्याय एंव शोषण का नारा बुलन्द करते हैं तथा हड़ताल करते हैं। ऐसी स्थिति में भ्रष्ट अधिकारियों के विरूद्ध कोइ कदम उठाना बड़ा कठिन होता है। इससे भ्रष्टाचार को प्रश्रय एवं बढ़ावा मिलता है।

2.7 भ्रष्टाचार के परिणाम

भ्रष्टाचार आज रामनाम की लूट बन गया है। इतना ही नहीं, यह बढ़ भी द्रोपदी की चीर की तरह रहा है। इसे जितना रोकने की कोशिश की जा रही है उतना, ही बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टाचार त्याग की तरह ऊपर से शुरू होता है और नीचे की ओर प्रसारित होकर सम्पूर्ण समाज को अपने रंग में रंग लेता है। वास्तव में भ्रष्टाचार ऊँचे आसनों पर अधिक गहरे और भयानक रूप में है। भ्रष्टाचार के निम्नांकित परिणाम होते हैं-

1. वृहत वफादारी के स्थान पर स्थानीय वफादारी बढ़ती है और देश एवं सामुदायिक हितों के स्थान पर व्यक्तिगत व स्थानीय हितों को महत्व दिया जाता है। परिणामस्वरूप राजनीतिक स्थिरता और एकता खतरे में पड़ जाती है।
2. मिर्डल का मत है कि भ्रष्टाचार के कारण लालफीताशाही व उत्तर दायित्व से भागने की प्रवृत्ति बढ़ती है और लोग अक्षम हो जाते हैं। तथा विकास कार्य रूक जाता है।
3. नियमहीनता और कानून की अवहेलना में वृद्धि होती है।
4. महँगाई बढ़ती है।
5. जन मानस में आक्रोश, तनाव, निराशा एवं संघर्ष पैदा होता है। जन मानस में भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति उमड़ते इस आक्रोश की अभिव्यक्ति आये दिन निकलने वाले जुलूस, हड़ताल, बंद, तोड़-फोड़ की अन्य कार्यवाही हिंसा आदि के द्वारा भी होती हैं। अब तो विभिन्न वर्गों की रैलियॉं आम हो गयी हैं, किसान, अध्यापक, मिल मजदूर, सरकारी कर्मचारी आदि सभी रैलियॉं कर रहे हैं। सरकार के लिए भी यह प्रदर्शन अब आम हो गये हैं, इसलिए उनका विशेष असर नहीं रह गया है। गाँधी जी का यह अस्त्र नाकाम सा नजर आता है और इसका प्रयोग गलत रूप में तो हो ही रहा है, किन्तु प्रदर्शन रैलियॉं भी आज एक आवश्यकता बने नज़र आते हैं। इनके बिना सरकार के कानों पर जूं ही नहीं रेंगती है।
6. राष्ट्रीय चरित्र एवं नैतिकता का पतन होता है।

2.8 प्रशासन में भ्रष्टाचार

'सर्वश्रेष्ठ' के भ्रष्ट होने के समान कोई बुराई नहीं हैं। यूं तो आज समाज में चारों ओर भ्रष्टता का प्रदूषित वातावरण परिव्याप्त है, किन्तु राजनीति और प्रशासन में भ्रष्टता का कोई भी कोना हाथ ही नहीं आ रहा है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार की समस्या सभी देशों में पायी जा रही है और इसका कोई रूप सर्वत्र देखने को मिलता है। भ्रष्टाचार में व्यक्ति सामाजिक नियमों का सोच-समझकर उल्लंघन करता है तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों की अवहेलना करता है। साथ ही वह व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकारों का दुरूपयोग करता है, मिलावट करता है, रिश्वत लेता है और पक्षपात का सहारा लेता है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में भ्रष्टाचार की मात्रा बढ़ी है और इंजीनियर, डाक्टर, मंत्री, विधायक, उद्योगपति, व्यापारी, प्रशासक व राजनीतिज्ञों द्वारा भ्रष्टाचार किये जाने के अनेक मामले सामने आये हैं। इसके निवारण के लिए समय-समय पर कई विभागों और समितियों की स्थापना की जाती रही है, किन्तु भ्रष्टाचार उन्मूलन के स्थान पर इसमें बढ़ोत्तरी ही हुई है।

यह बात सभी जानते हैं कि भारत धर्म प्रधान देश रहा है। भारत में धर्म, देशवासियों के आचरण में स्थान पाकर मूर्तरूप प्राप्त करता है। जब धार्मिक आचारण न्यायसंगत और नैतिक आचरण के विपरीत होता है, उसे प्रायः भ्रष्ट आचरण का नाम प्रदान करते हैं। धार्मिक एवं नैतिक आचरण पर्वत के समान आचरणशील व्यक्ति को ऊपर उठाते हैं। इसके विपरीत भ्रष्ट आचरण मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से पतन की ओर, अवनति की ओर ले जाते हैं। भ्रष्ट शब्द 'गिरने का अर्थ देने वाली' धातु से बना है। भ्रष्ट आचरण अथवा भ्रष्टाचार पहले व्यक्ति को और बाद में देश को पतित करता है।

विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्रीय व्यवस्था वाले देश भारत वर्ष में पिछले 64 वर्षों में भ्रष्टाचार गंभीर रूप से अपनी जड़ों को जमा चुका है। हमारे देश का नारा 'सत्यमेव जयते' है, परन्तु इतना होने पर भी मानो स्वाधीन भारत में सर्वत्र भ्रष्टाचार का ही राज है। न केवल भारत बल्कि पूरा विश्व जिस प्रकार मूल्य निरपेक्ष दृष्टि से आगे बढ़ रहा है वहाँ भौतिक उपलब्धि ही सब कुछ है तथा साधन की पवित्रता अप्रसांगिक हो गयी है। 'सदाचार' तो आज मूर्खता, फूहड़पन, दकियानूसी आदि का पर्याय माना जाने लगा है। येन केन प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करना ही परम पुरूषार्थ माना जा रहा है।

भ्रष्टाचार ने आज हमारे जीवन में सभी क्षेत्रों पर गहरा अधिकार कर लिया है, जिसके कारण हमारे पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में भ्रष्टाचार का महातांडव नृत्य हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्टाचार से भयभीत होकर भी उसमें अग्रसर हो रहा है, इसलिए व्याप्त भ्रष्टाचार आज के भारतीय जीवन की सर्व प्रधान समस्या बन गया है। लोक सभा हो या राज्य सभा किसी प्रदेश की विधान सभा हो या विधान परिषद, नगर निगम हो या नगरपालिका किसी भी कार्यवाही को उठाकर देखिए, भ्रष्टाचार का उल्लेख अवश्य मिलेगा। यही नहीं समाचार-पत्रों, सभा-समितियों में भी भ्रष्टाचार का मूल, मानव नीयत में विद्यमान है। नीयत का निर्देशन कर रही है, आज की भौतिक प्रगति। सीमित साधनों में भौतिक ऐश्वर्य को प्राप्त न कर सकने पर मानव का स्वतः ही किसी भी प्रकार उन साधनों को जुटाने के लिऐ अनैतिक राहों पर चलना ही एकमात्र उपाय रह जाता है। यह भ्रष्टाचार, रिश्वत व कमीशन के रूप में सरकारी, गैर-सरकारी क्षेत्रों में विद्यमान है। यह रिश्वत खोरी ही है, जो भ्रष्टाचार को जन्म देती है।

भारतीय परम्परा में व्यक्ति को भ्रष्ट मार्ग पर चलने से रोकने का कार्य शासन करता का है। शासन का केवल एक ही कार्य है, वाह्य शत्रुओं से देश की रक्षा और देश के अन्दर शान्ति की स्थापना। देश की आन्तरिक शान्ति को भ्रष्टाचारी ही भंग करते हैं, अन्यथा आचारण शान्ति प्रिय जनता को अशान्त बनाता है, सताता है और कष्ट देता है तथा शासन इसे रोकता है। शासन का कर्तव्य स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'निहन्ति दण्डेन सः धर्म विप्लवम्'। अर्थात् धर्म में विक्षोभ उत्पन्न करने वाले व्यक्ति को शासन दण्ड देकर धर्म विक्षोभ से रोकता है। यही कारण है कि शासक-राजा का निर्माण गर्भाधान से ही प्रारम्भ हो जाता था। कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंश' में महाराज रघु के गर्भाधान से लेकर राज्य ग्रहण करने तक का इसका संकेत दिया है। इसीलिए भारतवर्ष की मनीषा राजा को काल का कारण मानती है। 'राजा कालस्य कारणम्'। यथा राजा तथा प्रजा'। जिस भारत देश ने समस्त विश्व को अपने-अपने चरित्र की शिक्षा दी थी, वह अद्योगति को प्राप्त हो गया है। आज न्यायालयों में न्याय बिक रहा है, शिक्षा और ज्ञान भी वैसे से प्राप्त होते माने जा रहे हैं, मिलावट का दौर है, औषधियां भी मिलावट के घेरे में आ गयी हैं, व्यापार तो इतना भ्रष्ट हुआ है कि कहना संभव नहीं। व्यापारी अधिक से अधिक दाम लेकर निर्धारित सामग्री प्रदान नहीं करना चाहता। यदि एक शब्द में कहें तो देश भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूब गया है। पीड़ा तो सबसे बड़ी यह है कि इस भ्रष्टाचर को रोकने का प्रयत्न शासन नहीं करता।

आज भ्रष्टाचार एक विश्व व्यापी तथा परम्परागत समस्या बनता जा रहा है। भ्रष्टाचार का विलोम 'सच्चरित्रता', नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता, निर्दोष चरित्र, स्पष्टता, ईमानदारी एवं निष्कपटता के रूप में परिभाषित किये गये हैं। सच्चरित्रता राज्य का परमावश्यक धर्म होता है, जोकि एक दुर्लभ प्रवृत्ति का रूप लेती जा रही है। सार्वजनिक प्रशासन में सच्चरिता के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया था- 'सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन में सच्चरित्रता होना आवश्यक है, अतः प्रत्येक सार्वजनिक कार्य सम्बन्धी शाखा में इस पर बल दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव बहुत व्यापक होता है। इसके फलस्वरूप न केवल ऐसी गलतियॉं होती हैं, जिनको सुधारना कठिन हो जाता है, बल्कि यह प्रशासनिक ढ़ाचे की जड़ों एवं प्रशासन में जनता के विश्वास को ही हिला देता है। अतः प्रशासन में भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक निरन्तर चलने वाला युद्ध छेड़ देना चाहिए।' प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में प्रशासन में सच्चरित्रता को सर्वोच्च प्राथमिकता देने पर बल दिया गया है। योजना के मुख्य प्रशासकीय कार्यों की सूची में इसे जो स्थान दिया गया है एवं सार्वजनिक अधिकारियों से इस ओर विशेष ध्यान देने का जो आग्रह किया गया है, उससे भी उपरोक्त मत की पुष्टि होती है।

2.9 वर्तमान में भ्रष्टाचार के बदलते आयाम

लम्बे संघर्ष और बलिदान के बाद जब यह देश आजाद हुआ था तो आम आदमी में भी खुशहाली के साथ अमन-चैन की अरमान भरी संभावनाएं पैदा हुई थी। उसने सोचा था कि अब वह आजाद देश का नागरिक है और सिर ऊँचा करके चलने का अधिकारी है। देश के रक्तरंचित बंटवारे के बावजूद लोगों को बहुत आशाएं थीं। नये शासकों के सामने भी समस्याएं कम नहीं थीं, लेकिन वे आतंकित नहीं थे। उनके पास आजाद भारत के मार्ग-दर्शन के लिए कुछ योजनाएं थी और उनकी निगरानी में सफर की शुरूआत हुई। विषम परिस्थितियों और कठिन चुनौतियों के बावजूद ऊँचे लक्ष्य रखे गये, ताकि वे लोगों का जीवन स्तर सुधार सकें और राष्ट्र को आत्मनिर्भर बना सकें। उनके प्रयास व्यर्थ नहीं गये और देश ने एक मजबूत आधार व्यवस्था का ढ़ाँचा निर्मित किया। आज देश की एक तिहाई आबादी निपट दरिद्रता में गुजर-बसर करती है, लेकिन भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत भी हुई है। आजादी का सुखभोग करते-करते कई दशक बीत गये। जिन्होंने आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया था, उन्होंने शायद ही इतना सुख भोग किया हो, जितना अब की पीढ़ी के लोग कर रहे हैं। वे तो देश की तरक्की के लिए खून-पसीना बहाते रहे, लेकिन अब तो हालत इतनी बिगड़ गयी है कि लक्ष्य ही कुर्सी हथियाना रह गया। बस कुर्सी बची रहनी चाहिए

चाहे कुछ भी करना पड़े। जन-सेवा के नाम पर परिवार सेवा और सात पीढ़ी की सुरक्षा, सुख-समृद्धि का इन्तजाम ही ध्येय रह गया है। इस जोड़-तोड़ में अगर फस जाते हैं, तो कानून तक बदलने की सोचने लगते हैं। 'ट्रांसपेरेन्सी इण्टरनेशनल' के सर्वे में यह बात उभर कर आयी है कि देश में सबसे ज्यादा भ्रष्ट राजनीतिक दल ही है। तत्पश्चात कानून व्यवस्था संभालने वाली पुलिस, न्यायपालिका तथा भूमि प्रशासन आते हैं।

आज सत्ता की रामनामी ओढ़कर सभी का भ्रष्टाचार की वैतरणी तैरना आम बात हो गयी है। यह आम कहावत हो गयी है कि अगर रिश्वत लेते पकड़े जाओ, तो भ्रष्ट तरीके अपनाकर रिश्वत, देकर ही छूट पाओगे। आज महान वही है जो महान भ्रष्टाचारी है। जिसकी ऊँचे-ऊँचे भ्रष्टाचारी नेता और अफसरों से सांठ-गांठ है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि आज सभी भ्रष्टाचार के आगोश में समा चुके हैं।

सुविधाभोगी होते समाज को भ्रष्टाचार का अजगर निगल रहा है। उदाहरण स्वरूप राष्ट्रमंडल खेल घोटाला, आदर्श सोयायटी घोटाला, टू जी स्पेक्ट्रम घोटाला, हाउसिंग लोन घोटाला। आज स्थिति यह है कि जाँच एजेंसिया जब तक किसी घोटाले की तह तक पहुँचती हैं, दूसरा घोटाला सामाने आ जाता है।

भ्रष्टाचार रूपी असाध्य रोग अब हमारे देश के आर्थिक महाशक्ति बनने में भी बड़ा अवरोध साबित हो रहा है। इससे हर साल अर्थव्यवस्था को करोड़ों रूपये की चपत लगती है। सेना, न्यायपालिका और खुफिया जैसे अपेक्षाकृत साफ-सुथरे और दाग रहित संस्थानों में भी भ्रष्टाचार की नई प्रवृत्ति ने आम आदमी को आवाक् किया है। भारत में भ्रष्टाचार के लिए निम्नलिखित कारण उत्तर दायी हैं-

1. **जड़ों का जमाव-** आजादी के बाद देश में 1950 से 1990 के बीच समाजवाद से प्रेरित नीतियां लागू की गयी , इसके तहत अर्थव्यवस्था को मजबूती से नियंत्रण में रखा गया। संरक्षणवाद और सार्वजनिक इकाईयों को पोषित किया गया। लिहाजा लाइसेंस राज का उदय हुआ। जिससे आर्थिक वृद्धि मंद पड़ी और भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ा।
2. **अफसरशाही-** ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के अनुसार देश के 50 प्रतिशत से अधिक लोगों को सरकारी दफ्तरों में अपना काम कराने के लिए रिश्वत देना या प्रभाव का इस्तेमाल करना पड़ता है।

3. 2009 में किए गये सर्वे के मुताबिक देश में अफसरशाही की कार्य-कुशलता का स्तर एशिया की दिग्गज अर्थ-व्यवस्थाओं वाले देशों मसलन सिंगापुर, दक्षिण कोरिया, जापान, चीन और इंडोनेशिया की तुलना में दोयम दर्जे का है।
4. **भूमि और सम्पत्ति-** अधिकारी राज्य की सम्पत्ति को ही चुरा लेते हैं। बिहार में 80 प्रतिशत से भी ज्यादा रियायती दरों पर गरीबों को दी जाने वाली खाद्य सहायता चुरा ली जाती है।

   पूरे देश में पनप चुका भूमाफिया राजनीतिज्ञों, अफसरों, बिल्डरों, की मदद से अवैध तरीके से भूमि का अधिग्रहण कर उसको गैरकानूनी ढंग से बेच देता है।
5. **टेंडर और कांटैक्ट प्रक्रिया-** नीलामी प्रकिया में पारदर्शिता का घोर अभाव है। सरकारी अधिकारी बोली लगाने में अपने चहेते चुनिंदा लोगों के हक में टेंडर जारी कर देते हैं। सरकार द्वारा सड़क निर्माण कार्य में तो कंस्ट्रक्शन माफिया का बोलबाला है।
6. **स्वास्थ्य-** सरकारी अस्पतालों में भ्रष्टाचार, दवाओं की गैर-मौजूदगी, मरीज को भर्ती करने की जिद्दोजहद, डाक्टरों की अनुपलब्धता से जुड़ा है। हाल ही में राजधानी उत्तर प्रदेश में सी0एम0ओ0 के मर्डर जैसी घटनांए विभागीय भ्रष्टाचार का परिणाम है।
7. **न्यायपालिका-** ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के मुताबिक मुकदमों के निपटारे में होने वाली देरी जटिल न्यायिक प्रक्रिया और जजों की कमी के कारण न्यायिक तंत्र के भ्रष्टाचार पनप रहा है।

   राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार निरोधक कानून तथा आई0पी0सी0 की धाराओं के तहत लगभग 29117 लोगों पर भ्रष्टाचार के मामले चल रहे हैं। जाँच एजेंसियों और अदालतों की रफ्तार इतनी सुस्त है कि सालभर में एक हजार भ्रष्ट लोगों को भी सजा नहीं हो पाती। अगर किसी को सजा होती भी है तो अधिकतम सात साल की जबकि उसकी काली कमाई उसके पास ही रहती है।

   राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार भ्रष्टाचार के करीब 17792 मामले विभिन्न अदालतों में घूल फांक रहे हैं। अकेले सी0बी0आई0 के पास 9910 भ्रष्टाचार के मामले लंबित पड़े हैं।
8. **सशस्त्र सेना-** सेना में भी भ्रष्टाचार अचंभित करता है। हाल के वर्षों में सुकना भूमि घोटालें मे तो सेना के चार लेफ्टिनेंट जनरल स्तर के अधिकारियों पर आरोप लगे हैं। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के एक अध्ययन के

मुताबिक सरकार द्वारा जनता को दी जाने वाली 11 बुनियादी सुविधाओं मसलन शिक्षा, स्वास्थ्य, न्यायपालिका और पुलिस वगैरह में भ्रष्टाचार को यदि मौद्रिक मूल्यों में आंका जाए तो यह करीब 21068 करोड़ रूपये का होगा।

9. **स्विस बैंक में जमा देश की धनराशि-** देश के 66 हजार अरब रूपये स्विस बैंक में जमा है। इस जमा काले धन के मामले में दुनिया के सभी देशों में भारत अव्वल है। यह रकम हमारे ऊपर कुल विदेशी कर्ज की 13 गुना है। आजादी के बाद से 2008 तक 9.6 लाख करोड़ रूपये अवैध तरीकों से विदेश भेजी गयी रकम है। ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रिटी के अनुसार आज की तारीख में इस धनराशि की कीमत करीब 21 लाख करोड़ रूपये होगी।

भ्रष्टाचार सूचकांक- ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशलन द्वारा जारी सूचकांक में भारत सर्वाधिक भ्रष्ट देशों मे शुमार है। साल दर साल स्थिति सुधरने की बजाय और बिगड़ रही है।

2.10 भ्रष्टाचार उन्मूलन के प्रयास एवं सुझाव

भ्रष्टाचार उन्मूलन मूलतः एक व्यक्तिगत लड़ाई है। ये स्वयं से लड़ाई और उसके बाद ईमानदार लोगों को संगठित करने और फिर प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का काम है, जिससे देश के कार्यों को कहीं अच्छे ढंग से और कहीं अधिक तेजी से निपटाया जा सके। इस सम्बन्ध में सरकार को भी व्यापक आन्दोलन चलाना चाहिए, जिससे जनता में यह भावना पैदा हो कि वे रिश्वत देना और लेना दोनों ही अनुचित है।

भ्रष्टाचार का जाल सरकारी नीतियों और प्रशासनिक कार्य-प्रणाली के अलावा लोगों की मानसिकता एवं समाज में मौजूद मूल्यों पर आधारित है। जरूरी है कि भ्रष्टाचार के प्रति जन-सामान्य की मानसिकता व सामाजिक सोच और मूल व्यवस्था में बदलाव लाया जाये। भ्रष्टाचार को दूर करने हेतु समय-समय पर कई संकल्प किये गये। अनेक समितियों और आयोगों का गठन किया गया, फिर भी इससे छुटकारा नहीं मिल पाया है। इसलिए इस खतरे का मुकाबला लोकतंत्र के गाँधीवादी तरीके से ही किया जा सकता है। इसके लिए जनता को विभिन्न वर्गों के ऐसे समूह बनाने होंगे जो राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक सुचिता के लिए संघर्ष कर सके, क्योंकि दूध में पानी की तरह घुल चुके भ्रष्टाचार को रोकने के लिए आम नागरिकों की भागीदारी से ही भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाया जा सकता है। अतः भ्रष्टाचार को रोकने की आशा, अब देश के संवेदनशील, संघर्षशील समाजसेवियों से ही की जा

सकती है। ऐसे ही कुछ लोगों ने मिलकर सार्थक लोकपाल बिल का मसौदा तैयार किया। भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के लिए खासतौर पर बनाया गया लोकपाल विधेयक पिछले 42 (1968 से) सालों से पारित ही नहीं हो पा रहा है। यह हाल तब है जब सरकारी लोकपाल विधेयक की नख दंत-विहीन बताया जा रहा है, इसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे भ्रष्टाचार के दानव का खात्मा हो सके। इस विधेयक की तमाम खामियों को दूर करने के लिए जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता और गाँधीवादी अन्ना हजारे और किशन बाबूराव हजारे ने 05 अप्रैल 2011 से दिल्ली के जंतर-मंतर पर अनिश्चित कालीन भूख हड़ताल शुरू की। वे सरकार द्वारा प्रस्तावित लोकपाल विधेयक को नख दंत-विहीन मानते हैं। उनकी माँग यह थी कि इसकी जगह जन-लोकपाल विधेयक कानून बनाया जाए। लगभग चार दिन चला अन्ना हजारे का अनशन रंग लाया। सरकार को लोकपाल विधेयक का मसौदा तैयार करने वाली साझा-समिति को अन्ना की सभी मॉगों को मानना पड़ा और सरकारी आदेश जारी कर इस समिति को औपचारिक रूप देने की घोषणा भी करनी पड़ी।

हांगकांग में 1974 में जन-लोकपाल जैसा कानून बनाया गया था, जिससे वहाँ से भ्रष्टाचार समाप्त करने में कामयाबी मिली। अगर यह कानून बना दिया गया तो भारत में भी भ्रष्टाचार को नष्ट किया जा सकता है।

1. **सूचना का अधिकार-** भ्रष्टाचार पर लगाम कसने व सरकारी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए 12 अक्टूबर, 2005 में सूचना का अधिकार कानून बना।
2. **लोक आयुक्त; ऑम्बड्समैन-** लोक आयुक्त भ्रष्टाचार निरोधक संगठन है। ये संस्था स्कैंडेनेवियन देशों की तर्ज पर बनाई गयी है। देश के सभी राज्यों में एक समान रूप से काम करने के लिए तीन सदस्यीय लोक आयुक्त के गठन का प्रस्ताव संसद में लंबित है।
3. **भ्रष्टाचार को उजागर करने वाले-** चाहे वो मंजूनाथ हों या सत्येन्द्र दुबे, भ्रष्टाचार को उजागर करने में ये 'व्हिसल ब्लोअर्स' (Whistle-blower) अहम् भूमिका निभाते हैं। हालांकि देश में अभी उनकी सुरक्षा के लिए कोई कानून नहीं है।
4. **निजी क्षेत्रों द्वारा किए गये उपाय-** फिफ्थ पिलर डॉट, ओआरजी, टाटा-टी का 'जागो रे' और नो ब्राइब डॉट ओआरजी जैसी निजी क्षेत्र की संस्थाओं ने भी भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी है।

5. **सरकारी प्रयास-** भारत सरकार ने भी भ्रष्टाचार निवारण के लिए समय-समय पर कई प्रयास किये हैं। सन् 1947 में 'भ्रष्टाचार निवारण कानून' पास किया गया। भ्रष्टाचार अधिनियम की कार्यान्विति के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देने के लिए 1949 में 'टेकचन्द्र समिति' की स्थापना की गयी। 1953 में आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में 'रेलवे भ्रष्टाचार जाँच कमेटी' निर्मित की गयी। गृह मन्त्रालय ने सन् 1955 में 'प्रशासन सर्तकता विभाग' की स्थापना की। जून 1962 में तत्कालीन गृहमंत्री ने संस्थानम् कमेटी की स्थापना की, जिसने 1964 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। 1964 में तत्कालीन गृहमन्त्री गुलजारी लाल नन्दा ने भी भ्रष्टाचार निवारण के लिए संस्थानम कमेटी की सिफारिशों को लागू करने एवं अन्य बड़े कदम उठाने की घोषणा की। श्री के0 संस्थानम् की अध्यक्षता में बनी भ्रष्टाचार निरोधन समिति ने सरकार को 137 अनुशंसाएँ 'भ्रष्टाचार निवारण 1964' हेतु प्रस्तुत की एवं 'प्रशासनिक सुधार आयोग 1966' द्वारा प्रस्तुत सुझाव भ्रष्टाचार को दूर करने से भी सम्बन्धित रहे हैं। इस दिशा में 'द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, 2005' का गठन भी एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

भारत में भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कई तरह की संस्थाओं के रूप में 'लोकपाल' तथा 'लोकायुक्त' के तौर पर प्रयास सम्मिलित हैं। भारत में अब तक प्रशासनिक भ्रष्टाचार के स्वरूप एवं विभिन्न समितियों एवं आयोगों की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए भ्रष्टाचार के उपचार के लिए निरोधात्मक तथा सकारात्मक निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं-

1. प्रशासनिक भ्रष्टाचार चूँकि राजनीतिक भ्रष्टाचार से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, इसलिए निर्वाचन प्रक्रिया को सरल बनाकर मन्त्रियों तथा अन्य महत्वपूर्ण नेताओं को पूँजीपतियों के प्रभाव से मुक्त किया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में मन्त्री या अन्य राजनीतिक नेता, लोक सेवकों पर अनावश्यक दबाव नहीं डालेंगे।
2. फाइलों के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए एक समय निर्धारित होना चाहिए। यदि उस समय के अन्दर निर्णय नहीं लिया जाता है तो सम्बन्धित पदाधिकारी से 'कारण बाताओ' पूछा जाना चाहिए। साथ ही साथ इस बात की जाँच की भी व्यवस्था होनी चाहिए कि फाइलों का निष्पादन उचित ढंग से हो रहा या नहीं।

3. आई0ए0एस0, आई0पी0एस0 तथा आई0एफ0एस0 के पदाधिकारियों के लिए ऐसे साक्षात्कार की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे योग्य एवं सक्षम व्यक्ति ऐसी सेवाओं में आ सकें।
4. बढ़ती हुई महंगाई से उत्पन्न कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए सेवाओं के वेतनमान में वृद्धि होनी चाहिए।
5. पादाधिकारियों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोप की यथाशीघ्र जाँच की व्यवस्था होनी चाहिए और यदि वह भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाए तो उसके विरूद्ध जल्द से जल्द कार्यवाही हो जानी चाहिए।
6. साधारण न्यायालयों के कार्यभार तथा निम्न न्यायालयों का, मन्त्रियों तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से प्रभावित होने की सम्भावना को देखते हुए पदाधिकारियों के विरूद्ध आरोप की जाँच के लिए विशेष न्यायालय का गठन भी वांछनीय है।
7. ईमानदार पदाधिकारियों को पदोन्नति तथा अन्य प्रकार के प्रोत्साहन मिलने चाहिए, ताकि अन्य पदाधिकारी भी पदोन्नति पाने एवं नाम पैदा करने की कोशिश करें।
8. गलत तथा सही कार्यों के प्रचार के माध्यम से भी लोक सेवकों की नैतिकता को प्रभावित किया जा सकता है। इससे प्रशासन के प्रति जनता की जागरूकता में भी वृद्धि होगी और लोकसेवकों के कार्य सम्पादन में भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

2.11 प्रशासनिक सुधार आयोग की भ्रष्टाचार कम करने के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशें

कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाले 'प्रशासनिक सुधार आयोग' की चौथी रिपोर्ट में देश के राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक परिदृश्य में व्यापक सुधारों एवं भ्रष्टाचार रोकने के उपायों की सिफारिशें की गयी हैं। 236 पृष्ठों वाली यह रिपोर्ट छ: सदस्यीय आयोग ने 12 फरवरी, 2007 को प्रधानमन्त्री डॉ0 मनमोहन सिंह को प्रस्तुत की। इसकी प्रमुख सिफारिशों में निम्नलिखित शामिल हैं-

1. गठबन्धन से हटने वाले राजनीतिक दलों के सदस्यों को पुनः जनादेश लेना चाहिए। इससे केन्द्र एवं राज्यों में गठबन्धन सरकरों को अधिक स्थायित्व मिल सकेगा तथा उन्हें अनावश्यक 'ब्लैक मेलिंग' से बचाया जा सकेगा।

2. दलबदल विरोधी कानून कड़ा किया जाए। इन कानून का उल्लंघन करने वालों की सदस्यता रद्द करने का अधिकार राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के पास हो, जो चुनाव आयोग की सलाह पर फैसला देंगे।
3. निर्वाचित सदस्यों की अयोग्यता निर्धारित करने के लिए अलग से कानून बनाया जाए।
4. मन्त्रियों एवं नौकरशाहों के लिए एक नैतिक आचार संहिता बनाई जाए।
5. सांसद एवं विधायक निधि समाप्त की जाए।
6. राजनीतिक दलों के चुनावी खर्च का आंशिक वित्तीयन सरकार द्वारा किया जाए।
7. मुख्य चुनाव आयुक्त एवं चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति का अधिकार प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाले चयन समूह के पास हो। लोक सभा अध्यक्ष, राज्य सभा के उपाध्यक्ष, विधि मंत्री एवं विपक्ष के नेता इस चयन समूह में शामिल रहें।
8. लाभ के पद मामले से सम्बन्धित कानून में संशोधन किया जाए तथा सलाहकार किस्म के पदों को लाभ के पद की परिभाषा से दूर रखा जाए।
9. राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् का गठन किया जाए। उपराष्ट्रपति की अध्यक्षता में बनने वाली इस परिषद् में प्रधानमन्त्री, लोक सभा अध्यक्ष, सर्वोच्च न्यायाधीश, विधिमंत्री तथा लोक सभा एवं राज्य सभा में विपक्ष के नेता शामिल किए जाने चाहिए। परिषद की सलाह पर सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाया जा सके।
10. राष्ट्रीय लोकायुक्त का गठन किया जाए, जिसके अधिकार-क्षेत्र में सभी केन्द्रीय मंत्री, मुख्यमंत्री व सांसद आदि हों, किन्तु प्रधानमन्त्री को उसके दायरे से बाहर रखा जाए।
11. जनसेवक आदि रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़े जायें तो कानूनी कार्यवाही के लिए पहले मंजूरी लेने की आवश्यकता न हो, यदि किसी मामले में रिश्वत लेने से राज्य, जनता या जनहित का नुकसान हो रहा हो, तो सजा दोगुनी होनी चाहिए।
12. बड़े घोटलों की विशेष जाँच के लिए अलग से कानूनी प्रावधान हो। इस सन्दर्भ में आर्थिक अपराध जाँच ऑफिस के गठन की भी संस्तुति है।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्टेट ऑफ एम0पी0 और अन्य बनाम राम सिंह, 2005 के सुप्रीम कोर्ट के केस की पृष्ट संख्या 88 में भ्रष्टाचार की चारित्रिक विशेषताऐं बतलाते हुए 'भ्रष्टाचार को प्लेग की बीमारी की तरह भयावह बताया है एवं जिसके वायरस की तुलना एच0आई0वी0 वायरस से की है।

भारत में भ्रष्टाचार निरोध के लिए विधिक प्रावधान एवं संस्थाऐं-

Public Servants (Enquiries) Act, 1850	Indian Panal code, 1860
Delhi Police Establishment Act, 1946	Special Polic Establishement, 1941
Commission of Inquiry Act, 1952 (against Political	Prevention of Corruption Act. 1947
leaders and Eminent Public Men)	All India Services(Conduct) Rules,
Central Civil Services (Conduct) Rules, 1955	1954
Central Bureav of Investigation, 1963	Railway Services (conduct) Rules,
State Vigilance Commission, 1964	1956
Lokayukta (ombudsman) in State	Central Vigilance Commission, 1964
National Consumer Disputes	Prevention of Corruption Act, 1988
Redressal- Commission	Anti Corruption Bureaus in States
Directorate of Public Grievances in the	Divisional Vigilance Board
-cabinet secreatariat 1988	Divisional Vigilanc Office
	Administrative Tribunals
	(QuasiJudicial bodies)

2.12 भ्रष्टाचार चक्र

1. राजनैतिक तंत्र, 2. प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था, 3. व्यापार एवं राजनीति में निकट सम्बन्ध, 4. सरकारी कार्यों का वृहद एवं विशाल क्षेत्र, 5. सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, 6. मुद्रा अर्थव्यवस्था, 7. विकास के असमान अवसर, 8. निर्धनता/गरीबी, 9. भ्रष्टाचार उन्मूलन के तरीकों का अभाव, 10. देश भक्ति की कमी, 11. नैतिक मूल्यों का पतन, 12. अशिक्षा, 13. अज्ञनता एवं जागरूकता में कमी, 14. चरित हीनता/ नैतिक पतन, 15. प्रशासकीय कठिनाइयां, 16. पूंजी संग्रह की प्रवृत्ति, 17. शिक्षा का अभाव, 18. बेरोजगारी, 19. कानून की

अनभिज्ञता, 20. अपर्याप्त वेतन/ वेतनमानो में विसंगतियॉं, 21. अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, 22. आबादी में भिन्नता, 23. अत्यधिक लाभान्वित होने की प्रवृत्ति, 24. उच्चाधिकारियों का सहयोग, 25. कर्मचारी संघ, 26. अदूरदर्शिता, 27. कालाबाजारी, 28. वर्गवाद, 29. अकर्मण्यता, 30. स्वार्थी प्रवृत्ति।

अभ्यास प्रश्न-

1. कौटिल्य के द्वारा भ्रष्टाचार कितने प्रकार के बताये गये हैं?
2. कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया। सत्य/असत्य
3. 1949 में टेकचन्द्र समिति की स्थापना की गयी। सत्य/असत्य
4. 1953 में आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में रेलवे भ्रष्टाचार जाँच कमेटी निर्मित की गयी। सत्य/असत्य
5. 1955 में प्रशासन सर्तकता विभाग की स्थापना की। सत्य/असत्य

2.13 सारांश

इस इकाई में हमने यह अध्ययन किया है कि भ्रष्टाचार में व्यक्ति सामाजिक नियमों का सोच समझकर उल्लंघन करता है तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों की अवहेलना करता है। साथ ही व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकारों का दुरूपयोग करता है, मिलावट करता है, रिश्वत लेता है, पक्षपात का सहारा लेता है, निमार्ण कार्यों के घटिया स्तर की वस्तुओं का उपयोग करता है। ये सारी बातें नियमों के प्रतिकूल हैं और कानून भी अंधा हो गया है। वैसे भी कानून की हिफाजत करना सभी भारतवासियों का धर्म है, परन्तु सभी निजी स्वार्थ एवं भौतिक उपलब्धियों के लिए धर्म का पालन न करके उसे तोड़ने में विश्वास रखते हैं। जब तक स्वयं में चेतना नहीं जागृत होगी तब तक कुछ नहीं हो सकता है। हम लोग मानसिक रूप से विकृत हो चुके हैं।

2.14 शब्दावली

सच्चरित्रता- नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता।

लघु मार्ग- स्वार्थ पूर्ति के लिए छोटे रस्ते तो अपनाना।

प्रतिष्ठा का परिचायक- भौतिक सुख साधन हेतु वस्तुओं की उपलब्धता।

विकास- समाज के प्रत्येक वर्ग के सभी क्षेत्रों में विकसित होना।

विधिक प्रावधान- विधि द्वारा बनाये गये नियम।

'व्हिसल ब्लोअर्स' (Whistle-blower)- यह अंग्रेजी का शब्द है, जिसका अर्थ होता है वो व्यक्ति जो नियम-कानूनों के विरूद्ध हो रहे कार्यों पर आवाज उठाता है या उसका विरोध करता है।

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 40 प्रकार के, **2.** सत्य, **3**. सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कटारिया, सुरेन्द्र- कार्मिक प्रशासन।
2. महेश्वरी एवं अवस्थी- लोक प्रशासन के सिद्धान्त।

2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भट्टाचार्या, मोहित- लोक प्रशासन।

2.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशासन में भ्रष्टाचार पर एक निबन्ध लिखिए।
2. भ्रष्टाचार में वे कौन -कौन से कारक हैं, जो इसे बढ़ावा देते हैं ? विवेचना कीजिए।
3. वर्तमान में भ्रष्टाचार के बदलते आयामों का वर्णन कीजिए।
4. भ्रष्टाचार के उन्मूलन पर सुझाव एवं प्रयास की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 3 राजनीति और प्रशासन का अपराधीकरण

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 राजनीति: अर्थ और प्रकृति

3.3 अपराध: अर्थ और उसका चरित्र

3.4 राजनीति और अपराध का सम्बन्ध

3.5 प्रशासनिक अपराध की प्रकृति

3.6 आर्थिक अपराधों में प्रशासकों की भूमिका

3.7 प्रशासनिक अपराध और उपचार

3.8 भारत में राजनीतिक अपराधीकरण का इतिहास

3.9 राजनीतिक अपराधीकरण के कारण

3.10 निर्वाचित राजनीतिक अपराधी: एक सर्वेक्षण

3.11 राजनीतिक अपराधीकरण: 2017 के विधान सभाओं के चुनावों का विश्लेषण

3.12 राजनीतिक अपराधीकरण के परिणाम

3.13 राजनीतिक अपराधीकरण तथा प्रशासनिक उपाय

3.13.1 वोहरा कमेटी

3.13.2 सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश

3.13.3 राष्ट्रीय पुलिस आयोग

3.14 राजनीतिक और प्रशासन का अपराधीकरण: एक मूल्यांकन

3.15 सारांश

3.16 शब्दावली

3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

राजनीतिक और प्रशासन का अपराधीकरण एक गंभीर समस्या हे। इस इकाई में इस विषय को राजनीति प्रशासन और अपराध के वृहद परिप्रेक्ष्य में लिया गया है। राजनीति की अपनी एक प्रकृति है जो समय और स्थान के अनुसार बदलती रहती है। अपराध और अपराधी का भी एक स्वभाव है जो गतिशील है। इस तरह लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिज्ञ प्रशासन और अपराधी परिस्थितियों के अनुसार पारस्परिक सामन्जस्य बैठा लेते हैं। राजनीतिज्ञों का उद्देश्य है सत्ता प्राप्ति प्रशासकों का ध्येय है अपनी स्थिति को मजबूत करना और अपराधियों का लक्ष्य है धन जुटाना। इस तरह राजनीतिक साध्य के लिए अपराधी साधन और प्रशासक माध्यम बन जाते हैं। आज भारत में यह तीनों एक दूसरे के अभिन्न अंग तथा पूरक बन चुके हैं। देश की अधिकांश बुराइयाँ आर्थिक घोटाले, जातिय-साम्प्रदायिक टकराव, हत्याऐं, अपहरण, बलात्कार, प्रशासन का राजनीतिकरण, पुलिस प्रशासन की अविश्वसनीयता, माफिया (खनन, भू-जंगल, रियल स्टेट) का दबदबा, यह सब राजनीतिक और प्रशासनिक अपराधीकरण के परिणाम हैं। शासन स्तर पर इन बुराईयों को रोकने के लिए कुछ कदम उठाए गये हैं, लेकिन ''चोर चोरी कैसे रोक सकता है है?'' विडबंना यह है कि जनमानस ने राजनीतिक अपराधीकरण को अपना समर्थन देकर उसे वैधता प्रदान कर दी है। चुनावों के आकड़ें तो यही सिद्ध करते हैं।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राजनीति और अपराध के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- राजनीतिक के अपराधीकरण के इतिहास को भारतीय सन्दर्भ में जान पायेंगे।
- राजनीतिक अपराधीकरण के कारण एवं परिणाम तथा राजनीतिक अपराधों में बढ़ोत्तरी के कारणों को जान पायेंगे।

- आर्थिक अपराधों में प्रशासकों की भूमिका के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- राजनीतिक अपराधीकरण को रोकने के लिए शासकीय उपायों के बारे में जान पायेंगे।
- 2007 से लेकर 2017 के चुनावों के सन्दर्भ में राजनीतिक अपराधीकरण की स्थिति के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

3.2 राजनीति: अर्थ और प्रकृति (Politics: Meaning and Nature)

राजनीति के अपराधीकरण का अर्थ उसके कार्य, कारण और परिणाम के सम्बन्ध को समझने से पूर्व 'राजनीति' और अपराध का वैज्ञानिक अध्ययन करना जरूरी है। राजनीति राजनीति विज्ञान का विषय है, राजनीति विज्ञान की दसियों परिभाषाऐं हैं: यह राज्य का विषय है यह सरकार का विषय है; यह सामाजिक रचनाकारी का विज्ञान है; यह सामाजिक विकारों को पहचानने तथा उनके निराकार का विषय है; यह लोगों को श्रेष्ठ या उत्तम बनाने का विषय है; यह मूल्यपरक है; यह मूल्य विहीन है; यह राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन है; यह राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन है; यह शुद्ध राजनीति का अध्ययन है; यह संभावना (Possible) का विषय है; यह असंभावना (Impossible) का विषय है। यह सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष का नाम है, यह असहमति का नाम है और अन्त में बिल्कुल आधुनिक नजरिए से यह यथार्थ राजनीति है। जिसमें कोई मूल्य नहीं है, कोई नैतिका नहीं है, कोई आदर्श नहीं है, केवल सत्ता और भौतिकता है-इसे नग्न राजनीति कहा जाता है। एक और आधुनिकतम् शब्द राजनीति के लिए गढ़ा गया है। यह है 'पॉलिटिकिंग' (Politicking)। सत्ता प्राप्त करने के लिए ''छल, और कपट की राजनीति।'' इस राजीति के खिलाड़ी को 'पॉलिटक' कहते हैं जिसका अर्थ है- मक्कार, चालाक, छलछंदी, नीति कुशल, तिकड़मी और इसकी राजनीति को 'पॉलिटिकिंग' कहते हैं। जब हम बात राजनीति के अपराधीकरण की करते हैं तो विषय का क्षेत्र राजनीति की तीन प्रकार की परिभाषाओं से घिरा हुआ नजर आता है-

1. राजनीति, सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष का नाम है।
2. राजनीति, यथार्थ राजनीति का नाम है।
3. राजनीति, ''छलछंदी, कपटी, षडयंत्रकारी'' राजनीतिक प्रक्रिया है। यह तीनों परिभाषाऐं राजनीति के अपराधीकरण की भूमिका निश्चित करती है।

3.3 अपराध: अर्थ और उसका चरित्र (Crime: Meaning and its Character)

अपराध समाजशास्त्र और मनोविज्ञान का विषय है। यहाँ हमको यह समझना है कि अपराध क्या है, उसके कितने क्षेत्र हैं और अपराधी कौन है और क्यों है। समाज में व्यक्ति की एक सकारात्मक हैसियत है जिससे सामाजिक व्यवस्था बनती है, लेकिन दूसरी ओर व्यक्ति का एक नकारात्मक चेहरा है जो सामाजिक अव्यवस्था और सामाजिक विघटन पैदा करता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति की नकारात्मक गतिविधियाँ समाज के नियमों और मूल्यों से मेल नहीं खाती। यह असमाजिक गतिविधियाँ दो प्रकार की होती हैं। पहली, व्यक्ति के विरूद्ध तथा दूसरी, राज्य के विरूद्ध। यह दोनों प्रकार 'अपराध' हैं। राज्य की नजर में अपराध वह है जिसे कानून(Criminal Law) ने अपराध माना है। लेकिन अपराध की अवधारणा गतिशील(Dynamic) है। जो एक समाज में अपराध है वह दूसरे समाज में अपराध नहीं है। जो आज अपराधी है वह कल अपराधी नहीं हो सकता। कल वह समाज के लिए एक आदर्श नेता होगा। समाज ने जिसका तिरस्कार किया था, वह उसका सत्कार कर सकता है, उसका अनुसरण कर सकता है; वह उसमें ही अपने अस्तित्व की खोज कर सकता है। यही समाज का आचरण है जो अपराध को बढ़ावा देता है, अपराधी को मंडित करता है। अपराधी समाज की इस मानसिकता को समझता है और उसका लाभ उठाता है। एम0जे0 सेधना के अनुसार अपराधी दो प्रकार के होते हैं- गैर-वास्तविक या नामामत्र के (Nominal) अपराधी तथा (2) वास्तविक (Real) अपराधी।

गैर-वास्तविक या नाममात्र के अपराधी वे लोग हैं जो किसी विशेष मकसद (cause) के लिए अपराध करते हैं। इनमें धार्मिक, वैज्ञानिक तथा मानवीय कारण हो सकते हैं। ऐसे लोग स्वभाव से अपराधी नहीं होते हैं। वास्तविक अपराधी स्वभाव से अपराधी होते है। यह हत्यारे होते हैं, धार्मिक-हिंसक उन्मादी या सांस्कृतिक राष्ट्रवादी जनूनी होते हैं; यह बाहुबली या यह सामन्ती दंभी कुलीन होते हैं। इनमें जमींदार, पूंजीपति, उद्योगपति, नौकरशाह, धर्मान्दी तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रवक्ता भी होते हैं। यह जब सामाजिक मूल्यों को कुचल कर अपने हितों की पूर्ति करते हैं तो वास्तविक अपराधियों (Real, Criminals) की श्रेणी में आ जाते हैं। यह स्वयं भी अपराध करते हैं और यह अपराध करवाते भी हैं।

3.4 राजनीति और अपराध का सम्बन्ध (Relation between Politics and Crimes)

यहाँ विषय है 'राजनीति और प्रशासन का अपराधीकरण।' अतः विषय की सार्थकता की दृष्टि से पहले राजनीति की उन परिभाषाओं को चुनना होगा जो अपराधियों के अनुकूल हैं। ऐसी चार परिभाषाऐं हैं जो अपराध और अपराधी के लिए आधार तैयार करती है तथा उसको राजनीति के साथ विनियमन (adjustment) समायोजन या अनुकूल का अवसर प्रदान करती हैं। यह परिभाषाऐं हैं-

1. राजनीति, संभावना की कला है। (Politics is an Art of Possible)
2. राजनीति, सत्ता के लिए संघर्ष है। (Politics is Struggle for Power)
3. यथार्थ राजनीति का नाम राजनीति है। (Real politick is politics)
4. छलछंदी, कपटी, षडयंत्रीय तथा मूल्यविहीन राजनीति वास्तविक राजनीति है।

अब यहाँ यह देखना है कि वे कौन से अपराधी हैं जो उक्त राजनीति की चार परिभाषाओं से मेल खाते हैं। राजनीति और अपराध के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यथार्थ या वास्तविक अपराधी (Real Criminal) सरलता से वास्तविक राजनीति (Real Politick) तथा छलछंदी राजनीति (Politicking) में अपनी जगह बना लेते हैं। राजनीतिज्ञों का उद्देश्य किसी तरह सत्ता प्राप्त करना होता है इसलिए वह संभव की कला का सहारा लेकर सत्ता के लिए संघर्ष (Struggle for Power) करते हैं। यहाँ टकराव (Conflicts) की ऐसी स्थिति बनती है जिसके समाधान के लिए वे वास्तविक अपराधियों (Real Criminals) की मदद लेते हैं। बदले में यह वास्तविक या स्वाभाविक अपराधी राजनीतिज्ञों और प्रशासकों से लाभ उठाते हैं। यह लाभ हैं-

- प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धन प्राप्त करना (राजनीतिज्ञों के माध्यम से)
- अपने हितों के पक्ष में कानून बनवाना (प्रशासकों के माध्यम से)
- चुनावों में अपने लिए या अपने सम्बन्धियों के लिए टिकट लेना और चुनाव लड़ना या लड़वाना।
- सम्बन्धित राजनीतिज्ञों या राजनीतिक दलों की सफलता के लिए धार्मिक, जातीय, वर्गीय, प्रजातीय उन्माद और टकराव (हिंसक संघर्ष) पैदा करके ध्रुवीकरण का माहौल पैदा करना।

- अब इनका आधुनिकतम हत्यार सोशल मीडिया है, जिसके माध्यम से यह राजनीतिक या निजि लाभ के लिए नफरत और विभाजन का माहौल तैयार करते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि सत्ता के लिए संघर्ष की राजनीति में राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा अपराधियों का गठजोड़ बड़ा स्वाभाविक और तर्कसंगत है। इसका नतीजा यह है कि-

- राजनीतिज्ञ स्वयं सफेद पोश अपराधी बन जाते हैं।
- प्रशासक पर्दे के पीछे से राजनीतिज्ञों और अपराधियों की मदद करते हैं।
- अपराधी राजनीतिज्ञों का चोला पहन लेते हैं।
- राजनीतिज्ञ अपराधियों से सहायता लेते हैं।
- प्रशासन माफिया से धन बटोरते हैं।
- राजनीतिज्ञ अपराधियों को संरक्षण देते हैं।
- प्रशासन और राजनीतिज्ञ अपराधियों को दण्ड से बचाते है और कोई पद देकर उनको पुरस्कृत करते हैं।

अपराधी प्रशासक और राजनीतिज्ञ का यह गठजोड़ (विशेष रूप से भारत में) क्यों सम्भव है? विश्लेषण से पता लगता है कि राजनीतिक मूल्यों में समय के साथ गहरा बदलाव और जनमानस की विकृत सोच ऐसे अपराधीकरण के लिए जिम्मेदार है।

3.5 प्रशासनिक अपराध की प्रकृति (Nature of Administrative Crime)

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में संगठन (विभाग) के उच्चतर तथा मध्य स्तरों पर लोक सेवक चयन आयोगों द्वारा चयनित होकर आते हैं। ऐसे प्रत्याशियों के चरित्र और उनकी पृष्ठभूमि की गहन छानबीन और पुलिस सत्यापन के बाद ही उनको प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति मिलती है। इस तरह जो प्रक्रिया अपनाई जाती है उससे अवांछनीय और आपराधिक प्रवृत्ति की लोग भारतीय प्रशासन में दाखिल नहीं हो सकते। चयन के बाद भावी प्रशासकों को जो कड़ा प्रशिक्षण दिया जाता है उसके तकनीकी, व्यवहारवादी तथा नैतिक तीनों पहलू होते हैं। इसलिए विश्वास

किया जा सकता है कि भारतीय प्रशासक अपने युवा चरण में अपनी पृष्ठभूमि, अपनी योग्यता, अपनी सोच, अपने प्रशिक्षण तथा अपनी प्रकृति से न तो अपराधी होते हैं और न ही अपराध से उनका कोई रिश्ता होता है।

लेकिन, दूसरी ओर, यह भी सच है कि जैसे ही लोक सेवक प्रशासन को प्रौढ़ अवस्था में पहुँचते हैं, वे तीन शक्तियों से प्रभावित होने लगते हैं- नौकरशाही की मानसिकता, राजनीतिक परिस्थितियां तथा निजी व्यक्तिगत हित। मार्क्स के शब्दों में, ''नौकरशाही की मानसिकता प्रशासकों को परजीवी (Parasite) बना देती है। वे अपने अस्तित्व के लिए प्रभुत्व-सम्पन्न लोगों की यथास्थिति को बनाये रखने का माध्यम हैं।'' दूसरे, वे राजनीतिक परिवेश के अनुसार स्वंय को ढालते हैं। उनके चोले राजनेताओं के नजरिये तथा भूमिकाओं के अनुसार बदलते रहते हैं। वे 'समय के नौकर' (Servant of the Time) होते हैं। ''शाहों के साथ शाह, चोरों के साथ चोर'' की कहावत उनपर लागू होती है। इसलिए, अगर राजनीति का अपराधिकरण होता है तो प्रशासन का अपराधिकरण अपरिहार्य है। तीसरे, वे राजनीतिक परिस्थितियों तथा राजनेताओं के स्वभाव और मनशा को भांपकर राज्यहित को स्वहित में बदल देते हैं। ऐसा वे उच्च पदों को हथियानें और अपने भविष्य को सुधारने के लिए करते हैं। नतीजा यह होता है कि लोक सेवक धीरे-धीरे परिभाषित प्रशासनिक अपराध की तरफ बढ़ने लगते हैं। यह अपराध इस प्रकार है-

1. सत्ता या पद का दुरुपयोग, (निजी हितों की पूर्ति तथा प्रभुत्व सम्पन्न लोगों, मित्रों और सम्बन्धियों को लाभ पहुँचाने के लिए)।
2. विकृत प्रशासन अथवा कुशासन(Maladministration), (नियमों को तोड़ना, उनकी अनदेखी करना या नियमों की आड़ लेकर स्वहित या परहित के काम करना, विशेष रूप से सार्वजनिक व्यय की दृष्टि से और इस तरह राज्य या समाज को नुकसान पहुँचाना)।
3. आर्थिक भ्रष्टाचार, (पूंजीपतियों, उद्यमियों, माफिया, ठेकेदारों, भू-स्वामियों (Real State) इत्यादि के पक्ष में नियम बनाना, उनको आर्थिक लाभ पहुँचाना तथा बदले में मोटी रकम हथियाना और राज्य कोष को नुकसान पहुँचाना)।

इस तरह ये युवा अधिकारी जो बड़े जोश व खरोश के साथ सुनहरी परिकल्पनाओं को संजोय भारतीय प्रशासन में पदार्पण करते हैं, जब प्रशासन की अंधकारमय वास्तविकता से परिचित होते हैं तो वे उसका मुकाबला नहीं करते हैं, बल्कि स्वंय उसमें विलीन हो जाते हैं। यही परजीवी की पहचान है।

3.6 आर्थिक अपराधों में प्रशासकों की भूमिका (Role of Public Servants in Economic Crimes)

भारत में लोक प्रशासन को पांच भागों में बाँटा जा सकता है- 1. सामान्य प्रशासन (सचिवालय और जिला स्तर पर), 2. रेलवे प्रशासन, 3. कर विभाग का प्रशासन और राजस्व (Revenue) प्रशासन, 4. पुलिस प्रशासन और 5. न्यायिक प्रशासन।

इनमें रेलवे प्रशासन, कराधान या राजस्व प्रशासन तथा न्यायिक प्रशासन पूरी तरह भ्रष्टाचार के रोग से ग्रस्त है, लेकिन सामान्य प्रशासन तथा पुलिस प्रशासन आर्थिक भ्रष्टाचार का भी शिकार है और पारम्परिक व वास्तविक अपराधों का भी केन्द्र है, क्योंकि सामान्य प्रशासन तथा पुलिस प्रशासन का सीधा सम्बन्ध राजनीतिज्ञों तथा उनसे जुड़े वास्तविक अपराधियों से है। क्योंकि लोक सेवक या नौकरशाह परजीवी हैं इसलिए वे अपने अस्तित्व को बनाने रखने के लिए अपराधियों-माफिया गिरोह, दबंगों, बाहुबलियों इत्यादि से सम्पर्क बनाये रखते हैं और उनको संरक्षण प्रदान करते हैं।

अपराध के इस खेल में पुलिस प्रशासन सबसे आगे है। अक्सर अपराधियों और पुलिस बल में ''वर्दी'' का अन्तर रहता है। पुलिस मैन तथा अपराधी दोनों परजीवी हैं, जिसके अनेक कारण हैं- 1. अपराधियों को राजनीतिक समर्थन, 2. पुलिस प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप, 3. पुलिस अधिकारियों की राजनीतिक वफादारी, 4. पुलिस अधिकारियों पर निलम्बन और स्थानान्तरण की लटकती तलवार तथा 5. पुलिस प्रशासन का नैतिक पतन (रिश्वतखोरी, ब्लैकमेलिंग, आतंकित आचरण, स्वयं सामान्य अपराधों-चोरी, डकैती, शराब, बलात्कार आदि में शामिल होना)

जहाँ तक रेलवे, राजस्व, कराधान और न्यायिक विभागों का सम्बन्ध है, यहाँ प्रशासक अधिकारी देश के सबसे भयानक अपराध-भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गये हैं। सुशासन का आधार है- निष्ठा (Integrity), जिसका अर्थ है, ''नैतिक सिद्धान्तों और चरित्र की मजबूती, ईमानदारी और स्वस्थ्य आचरण। लेकिन जैसा कि कौटिल्य का कहना था कि ''जिस तरह शहद को चखने के लिए यह असंभव है कि उसे जीभ की नोक पर न रखा जाये, इसी तरह यह

असंभव है कि सरकारी अधिकारी राजा की आय (राजस्व) का एक टुकड़ा न खाए''। भारत में यह अधिकारी मात्र एक टुकड़ा नहीं खाना नहीं चाहते, बल्कि राजस्व का एक बड़ा भाग हजम करने के आदी हो गये हैं। सन्थानम ने भ्रष्टाचार पर अपनी रिपोर्ट में लिखा,''यदि रेलवे से आधा भ्रष्टाचार समाप्त हो जाये तो रेल की लोहे की पटरियाँ सोने की बन सकती हैं'' सन्थानम ने भारतीय कानून की धारा- 161 के सन्दर्भ में सन् 1968 में ही यह टिप्पणी की थी कि ''एक छोटे क्लर्क से लेकर मंत्री तक ऐसा कोई नहीं है जो रिश्वतखोरी से तृप्त न होता हो''

3.7 प्रशासनिक अपराध और उपचार (Administrative Crimes and Remedies)

2012-13 के अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार के विरूद्ध विश्व विख्यात आन्दोलन को और लोकपाल की स्थापना के लिए जन संघर्ष को एक क्रान्ति माना जा सकता है। अन्ना हजारे भ्रष्टाचार को देश के प्रति सब से बड़ा अपराध और अपराधी को देश का सबसे बड़ा दुश्मन मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि अतीत में देश के बड़े निष्ठावान नेता भ्रष्टाचार की समस्या के प्रति संवेदनशील नहीं थे। उन्होंने 1947 से ही इस बीमारी के निराकरण के लिए कदम उठाने शुरु किये, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं-

1. 1947 में भ्रष्टाचार निवारक कानून (Prevention of Corruption Act, 1947) अस्तित्व में आया।
2. टेकचन्द कमेटी (1949)
3. रेलवे भ्रष्टाचार जांच कमेटी (कृपलानी कमेटी, 1953)
4. विवियान बोस कमीशन (1956)
5. केन्द्रीय सर्तकता आयोग (Central Vigilance Commission, 1964) के0 सन्थानम की अध्यक्षता में।

इन कमेटियों और आयोगों के अतिरिक्त प्रत्येक राज्य सरकार ने भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए अपने स्तर पर अनेक निवारक अधिनियम बनाये तथा सतर्कता संगठनों की स्थापना की, लेकिन मानवीय कमजोरियों के आगे यह सब प्रभावहीन ही रहे हैं। देश के बड़े और बदनाम घोटालों ने यह सिद्ध किया है कि जब तक राजनीतिज्ञों और लोक सेवकों के चरित्र का नैतिक उत्थान नहीं होगा, भ्रष्टाचार का दैत्य काबू में नहीं आयेगा। जून 2017 का यह समाचार कि ''39 आई0ए0एस0 अधिकारी, 29 केन्द्रीय सचिवालय सेवा के बड़े अधिकारी तथा 68 अन्य

प्रशासनिक अधिकारी भ्रष्टाचार तथा अन्य अनियमिताओं में लिप्त पाये गये, (सेवी वर्ग प्रशिक्षण विभाग की रिपोर्ट) यह सिद्ध करता है कि बड़े प्रशासनिक अधिकारी पूरी तरह भ्रष्टाचार के अपराध में रंग गये हैं।''

3.8 भारत में राजनीतिक अपराधीकरण का इतिहास (The History of Criminalization in India)

जैसा कि लिखा जा चुका है मूल्य परिवर्तनशील होते हैं। वे योरोप में भी बदले हैं लेकिन वहाँ यह बदलाव अनुदारता से उदारता के अनुरूप हुआ है। लेकिन भारत में मूल्यों में यह परिवर्तन उदारता से संर्कीणता की दिशा में हुआ है। राजनीतिक अपराधीकरण का सब से बड़ा कारण यही है। इस बदलाव को इतिहास के झरोके से देखा जा सकता है-

1. 1885 से 1946 तक भारतीय राजनीति का पहला चरण है। इस चरण के राजनीतिक अभिकर्ता (Actors) उच्चतम कुलीन या अभिजात वर्ग से थे। यह शिक्षित थे, पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित थे, इसलिए उदारवादी और आदर्शवादी थे। आदर्शवादी राजनीतिज्ञों के वर्चस्व के कारण इस चरण में राजनीतिक अपराधीकरण नहीं हो सका।
2. 1947 से लेकर 1965 तक भारतीय राजनीति स्वतंत्रता सेनानियों के इर्द-गिर्द घूमती नजर आती है। यहाँ भी राजनीतिक अभिकर्ता चरित्रवान, निष्ठावान, नैतिक मूल्यों में विश्वास करने वाले आदर्शवादी व्यक्ति थे। क्योंकि इस चरण के राजनीति अभिकर्ता स्वयं प्रभावशाली और प्रतिष्ठित थे, इसलिए उन्हें अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किसी भी प्रकार के अपराधियों की आवश्यकता नहीं थी।
3. 1966 से 1985 तक का दौर भारतीय राजनीति का उथल-पुथल का दौर था। आदर्शवादी नेतृत्व का लगभग अन्त हो चुका था अथवा उनका वर्चस्व ढीला पड़ने लगा था। जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, रफी अहमद किदवई, तथा गोबिन्द बल्लभ पंत की राजनीति मात्र एक कल्पना बन चुकी थी। यद्यपि अभी भारतीय राजनीति का पूरी तरह अपराधीकरण तो नहीं हुआ था, लेकिन अपराधियों ने दस्तक देना आरम्भ कर दी थी। वे भारतीय राज्य को चुनौती देने लगे थे। फिर जो घटनाऐं घटी उनका सिलसिला आज तक जारी हैं-

- पंजाब में गुरूद्वारे पर कब्जा करने के लिए काँग्रेस और अकाली दलों में टकराव। नतीजा खालिस्तान की मांग, आतंकवाद का उदय; पहले राजनीतिज्ञों द्वारा मिण्डरानवाले का इस्तेमाल और जब वह सिर पर चढ़ कर बोलने लगा तो आपरेशन ब्लूप स्टार को अंजाम। श्रीमती गान्धी को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा और भी भयानक परिणाम सिक्खों के कत्लेआम के रूप में निकला।

- इसी चरण में राजनीतिक अपराधीकरण के दैत्य ने देश के लगभग सभी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में सिर उठा लिया। उत्तर -पूर्व में प्रजातीय अलगाववादियों ने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए वास्तविक अपराधियों का सहारा लेकर खून-खराबा शुरू किया; पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, आन्ध प्रदेश, आदि सूबों में सामाजिक-आर्थिक वंचितों ने अपराधियों को संगठित करके नक्सलवाद को जन्म दिया, जिनका रक्तपात आज तक रूका नहीं है। महाराष्ट्र में 'मराठी मानस' के नाम पर शिव सेना के सैनिकों ने धार्मिक-राष्ट्रवादी उन्माद फैलाकर जिस घृणा और द्वेष को बढ़ावा दिया है वह राजनीतिक अपराधीकरण का सर्वाधिक घिनौना उदाहरण कहा जा सकता है। परिणाम स्वरूप बाल ठाकरे दहाड़ते रहे और उत्तर भारत के लोग कांपते रहे। उधर जम्मू कश्मीर में 'आजादी' तथा 'आत्म-निर्णय' के नाम पर राजनीतिक अपराधीकरण का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो गया, क्योंकि पाकिस्तान इस अपराधीकरण के खेल में परोक्ष रूप से कूद पड़ा।

4. 1986 से लेकर मार्च 2017 तक के समय को राजनीतिक अपराधीकरण के नजरिए से भारत का सर्वाधिक अन्धकारमय काल (Darkest period) माना जाएगा। इसमें आतंकवाद, सम्प्रदायवाद (साम्प्रदायिकता), जातिवाद, अलगाववाद, प्रचण्ड राष्ट्रवाद, घमान्दता तथा उग्रवाद सभी का विक्राल स्वरूप सामने आ गया। धर्म, विचारधारा तथा संस्कृति का चोला पहन कर शुद्ध रूप से सत्ता प्राप्ति के लिए अपराधियों के बल पर राजनीतिज्ञों ने विभाज्यीय तथा ध्रुवीकरणीय (Divisive and polarizing) राजनीति का सहारा लिया। राजनीति के शह मात के इस खेल में अपराधियों ने खुलकर भूमिका निभाई।

5. 1986 से लेकर 2014 तक आर्थिक अपराधियों (निजी उद्योग कम्पनियां, ठेकेदार, माफिया तथा प्रशासक) ने राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकों का संरक्षण लेकर ऐतिहासिक आर्थिक अपराधों को अंजाम दिया। इन अपराधों में विशेष रूप से 2-जी स्पैक्ट्रम स्कैम-1.76 लाख करोड़, वक्फ बोर्ड लैण्ड स्कैम-1.52 लाख करोड़, कॉमनवैल्थ गेम्स स्कैम-70,000 करोड़, सत्यम स्कैम-14,000 करोड़, बोफोर्स स्कैम-100 से 200 करोड़, फॉडर स्कैम-1000 करोड, तथा हवाला स्कैन्डल-100 करोड़ तथा इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों ऐसे घोटाले हैं जिनको राजनीतिज्ञों, आर्थिक अपराधियों (उद्योगपति, पूँजीपति, ठेकेदारों, भूमाफिया) तथा प्रशासकों ने मिलकर अंजाम दिया। साधारणतया इन घोटालों को भ्रष्टाचार की श्रेणी में रखा जाता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि यह घोटाले प्रशासनिक अपराध के परिणाम थे।

3.9 राजनीतिक अपराधीकरण के कारण (Reasons of Criminalization of Politics)

भारत में जिस तेजी के साथ राजनीति का अपराधीकरण हुआ है वह आश्चर्यजनक है। इतिहास के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 1975 से लेकर आज तक राजनीतिक अपराधीकरण ने पूरे भारत को अपने शिकंजे मे जकड़ लिया है। इस स्थिति के जो कारण सामने हैं वे इस प्रकार हैं-

1. क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में वृद्धि। (उत्तर भारत में)

2. वामपंथियों तथा दक्षिणपंथियों में टकराव। (बंगाल, केरला)

3. धार्मिक-सांस्कृतिक पाखंडियों का राजनीति मे प्रवेश। (उत्तर भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश में)

4. भू-माफिया, जंगल माफिया, खनन माफिया इत्यादि का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति को प्रभावित करना। (पूरे भारत में)

5. क्षेत्रीय अलगाववादियों का राजनीति पर कब्जा। (उत्तर -पूर्व)

6. बाहुबलियों, प्रशासकों तथा राजनीतिज्ञों मे गठजोड़। (उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड इत्यादि)

7. खण्डित जनादेश तथा त्रिशंकू लोक सभा या विधान सभा।

8. बांग्लादेशी घुसपैठ और उसका उग्र प्रतिरोध। (आसाम)

9. अलगाववादियों को आतंकवादियों तथा पाकिस्तान का समर्थन। (जम्मू-कश्मीर)

10. आरक्षण की राजनीति। (हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश)

11. साम्प्रदायिकता-साम्प्रदायिक दंगे। (उत्तर भारत)

12. आतंकवाद, नक्सलवाद, माओवाद। (बंगाल, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ तथा आन्ध्र प्रदेश)

13. धार्मिक ध्रुवीकरण की राजनीति। (उत्तर भारत)

यहाँ हम राजनीतिक अपराधीकरण की दृष्टि से चार कारणों की संक्षेप में संविक्षा करेंगे अर्थात-

1. क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि का यह रूजहान 1985 के बाद से देखने को मिलता है। इस समय देश में 50 क्षेत्रीय राजनीतिक दल, 07 राष्ट्रीय राजनीतिक दल 1706 गैर-मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल हैं। अर्थात् कुल मान्यता प्राप्त और गैर-मान्यता प्राप्त 1761 राजनीतिक दलों ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर जबरदस्त दबाव बनाया हुआ है। इन दलों के अभिकर्ता (नेता) ग्रामीण अंचलों से होते हैं जो पंचायती स्तर पर दबंगई में दक्ष होते हैं। यह अपने क्षेत्रों में समाज के कमजोर तबकों को दबाकर रखने में माहिर होते हैं। यह स्वयं अपराधी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। जब इनका शहरीकरण हो जाता है, तब यह धनबल के आधार पर अपना दल बना लेते हैं। वास्तव में पंचायती राज्य व्यवस्था भारत में राजनीतिक अपराध की प्रथम आधारभूत प्रयोगशाला है।
2. खंडित जनादेश तथा त्रिशंकू लोक सभाऐं तथा विधान सभाऐं राजनीतिक अपराधीकरण का एक और बड़ा कारण है। इस स्थिति में जोड़-तोड़ और क्रय-विक्रय (Horse-Trading) की राजनीति को बढ़ावा मिलता है। गठबन्धन की सरकार बनने के बाद स्थिति और गंभीर हो जाती है। सहयोग के स्थान पर समझौते की नीति अपनाई जाती है। ऐसी स्थिति में अपराधी चरित्र के राजनीतिक दल अस्थिर सरकार से आर्थिक लाभ उठाते हैं।
3. राजनीतिक अपराधीकरण का तीसरा बड़ा कारण दो नजरियों का टकराव है। यह दो नजरिये हैं- चरम वामपंथी विचारधारा तथा उग्र अथवा प्रचंड दक्षिणपंथी विचारधारा। पहली विचारधारा के समर्थक समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा साम्यवाद का समर्थन करते हैं तो दूसरी विचारधारा के समर्थक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, उग्र राष्ट्रवाद, हिन्दुत्व तथा पूँजीवाद के समर्थक हैं। इन दो विचारधाराओं का यह टकराव लगभग पूरे भारत में है। लेकिन विशेष रूप से यह बंगाल, केरला, त्रिपुरा, आसाम, बिहार, झारखण्ड,

छत्तीसगढ़, तिलंगाना तथा आन्ध्र प्रदेश में देखने को मिलता है। इस टकराव में अपराधियों का खुलकर प्रयोग होता है। नक्सलवाद तथा माओवाद की राजनीति इस टकराव का नतीजा है।

4. धार्मिक ध्रुवीकरण की राजनीति, राजनीतिक अपराधीकरण का चौथा बड़ा कारण है। भारतीय राजनीतिज्ञ कौटिल्य के सिद्धान्त ''साम, दाम, दण्ड, भेद'' में भी सबसे अधिक विश्वास करते हैं। धुव्रीकरण की राजनीति हमारे राजनीतिज्ञों को विरासत से मिली है-ब्रितानी हकूमत से, जो ''बाँटों और शासन करो'' में माहिर थे।

   ध्रुवीकरण के तरीके हैं- दंगे कराना, भावनात्मक मुद्दे उठाना, धार्मिक उन्माद पैदा करना, साम्प्रदायिक भाषा का प्रयोग करना तथा सोशल मीडिया के माध्यम से धार्मिक भावनाओं को आहत करना या महापुरूषों एवं धर्मग्रन्थों का अपमान करना। यह सब कुछ धार्मिक और सामाजिक अपराधियों के माध्यम से सत्ता प्राप्ति के लिए कराया जाता है।

3.10 निर्वाचित राजनीतिक अपराधी: एक सर्वेक्षण (Elected Political Criminals: A Survey)

अब तक के अध्ययन के यह पता लगा कि राजनीतिक अपराधीकरण का दायरा बहुत विस्तृत और जटिल है। अध्ययन से यह भी आभास होता है कि राजनीतिक अपराधी जाहिर या प्रकटीय भी होते हैं तथा अप्रकटतीय भी होते हैं। अधिकांश अपराधी विद्यमान होत हैं लेकिन सक्रिय नहीं होते। लेकिन भारतीय संसद तथा विधान सभाओं या विधान परिषदों में जो अपराधी (एम0एल0ए0 तथा एम0पी0) होते हैं, वे स्पष्ट तथा सक्रिय होते हैं। साधारणतया इन्हीं निर्वाचित राजनीतिक दागियों के सन्दर्भ में राजनीतिक अपराधीकरण की व्याख्या की जाती है। मौजूदा रूजहान यह सिद्ध करते हैं कि देश में विधानसभाओं, विधान परिषदों तथा संसद के अपराधी या दागी सदस्यों के अनुपात में तेजी से वृद्धि हुई है। 2004 की लोकसभा में विजयी प्रत्याशियों की संख्या, जिन पर आपराधिक मामले चल रहे थे, 24 प्रतिशत थी जो 2009 की लोक सभा में बढ़कर 30 प्रतिशत हो गयी। यहाँ तक कि 2014 में यह संख्या 34 प्रतिशत तक पहुँच गई। 2014 में 541 प्रत्याशियों का विश्लेषण करने से पता लगा कि 186 (34 प्रतिशत) विजयी सांसदों पर आपराधिक मुकदमें चल रहे थे। ''न गुण्डा राज न भ्रष्टाचार'' का नार देने वाली पार्टी, बी0जे0पी0, जिसके अधिकांश सदस्य जीत कर आए थे, संसदीय चुनाव में, अपराधियों की सूची

में सब से आगे थी। इस दल के कुल 282 विजयी प्रत्याशियों में 98 सांसदों (35 प्रतिशत) पर आपराधिक मुकदमें चल रहे थे (या चल रहे हैं)।

उत्तर प्रदेश में यह स्थिति और भी बदत्तर है। यहाँ 2012 के विधान सभा के चुनावों में 47 प्रतिशत विधान सभा सदस्यों ने अपने विरूद्ध चल रहे आपराधिक मामलों की घोषणा की। इनमें से अधिकांश समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी से सम्बन्धित थे। 2007 के विधान सभा के चुनाव में 403 निर्वाचित सदस्यों में से 140 ने (35 प्रतिशत) अपने विरूद्ध चल रहे आपराधिक मामलों की जानकारी चुनाव आयोग को दी। ए0डी0आर0 (Association for Democratic Reform : Election Watch) के अनुसार 16वीं लोकसभा में हर तीसरा एम0पी0 दागी था। 2007 के संसदीय चुनावों के सन्दर्भ में प्रकाशित आकड़ों से पता लगता है कि एन0डी0ए0 के 37 संसद सदस्यों पर आपराधिक मामले दर्ज थे, जबकि भाजपा के 137 संसद सदस्यों में 26 दागी थे। (20 प्रतिशत) और कांग्रेस के 145 सांसदों में से 15 पर केस दर्ज थे। आर0जे0डी0 के 40 प्रतिशत संसद सदस्य और बसपा के एक तिहाई सदस्य दागी थे।

विडंबना यह है कि जैसे-जैसे सरकारी एजेंसियाँ राजनीतिक अपराधों के बारे में सतर्क होती जा रही हैं, अपराधीकरण का दैत्य उतनी तेजी के साथ अपना विकराल रूप धारण करता जा रहा है। उदाहरण के लिए वोहरा कमेटी (1993), सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश (2002) तथा नेशनल पुलिस कमीशन (1977) की सिफारिशों और प्रयासों के बावजूद स्थिति और अधिक बिगड़ी है। 28 अगस्त 1997 को चुनाव आयोग के अध्यक्ष जी0वी0जी0 कृष्णमूर्ति ने अपराधियों के राजनीतिकरण के बारे में आंकड़ों को प्रकाशित करके सब को हैरत में डाल दिया। उनके अनुसार 1996 में जिन 1,37,752 प्रत्याशियों ने लोक सभा का चुनाव लड़ा उनमें 1500 पर गंभीर आपराधिक इल्जाम थे जिनमें हत्या, डकैती, बलात्कार, चोरी, अपहरण, दंगे, धन उगाही इत्यादि संगीन जुर्मों ने राजनीतिज्ञों के असली चेहरों से पर्दा हटाया था। 520 मुल्जिम उत्तर प्रदेश तथा 350 बिहार के थे। 11वीं लोकसभा में 40 सदस्य मुल्जिम थे, जबकि देश की विधान सभाओं के 700 एम0एल0ए0 (4722 में से) मुकदमों का सामना कर रहे थे।

3.11 राजनीतिक अपराधीकरण: 2017 के विधान सभाओं के चुनावों का विश्लेषण (Political Criminalization: Analysis of Legislative Assembly Elections 2017)

फरवरी-मार्च 2017 में पांच विधान सभाओं उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखण्ड, गोवा तथा मणिपुर में आम चुनाव कराये गये। इस सम्बन्ध में राजनीतिक अपराधीकरण से जुड़े जो तथ्य सामने आये हैं वे चिन्ताजनक हैं। यहाँ पहले उत्तर प्रदेश को लिया जाये तो इस प्राक्कल्पना (Hypothesis) के आधार पर कि उत्तर प्रदेश राजनीतिक अपराधीकरण के प्रत्येक पहलू की प्रयोगशाला है। यहाँ पांच राजनीतिक दल प्रमुख हैं जो मान्यता प्राप्त है। लगभग 15 ऐसे दल हैं जिनको मान्यता नहीं मिली है सैकड़ों निर्दल भी मैदान में उतरते हैं। यहाँ केवल मान्यता प्राप्त पांच राजनीतिक दलों का अपराधीकरण के संदर्भ में विश्लेषण किया जायेगा। उत्तर प्रदेश की विधान सभा के सदस्यों की संख्या 403 है। सभी सीटों पर चुनाव कराया गया। जो तथ्य सामने आये वे इस प्रकार है-

1. प्रथम, तृतीय, चौथे, पांचवे तथा छठें चरणों में भाजपा ने 267 प्रत्याक्षी खड़े किये जिन में 110 दागी थे, बसपा ने 278 प्रत्साशी खड़े किये जिन में 108 दागी थे, सपा ने 209 प्रत्याशियों को मैदान में उतारा जिनमें 77 दागी थे, रालोद के 157 प्रत्याशी मैदान में कूदे जिन में 44 दागी थे, तथा कांग्रेस 87 प्रत्याशियों के साथ मैदान में उतरी जिनमें 23 दागी थे इस तरह भाजपा 41 प्रतिशत, बसपा के 39 प्रतिशत, सपा के 37 प्रतिशत, रालोद के 28 प्रतिशत तथा कांग्रेस 26 प्रतिशत प्रत्याशी दागी थे। इस तरह 998 प्रत्याशियों में 362 अर्थात 36प्रतिशत दागी थे। (दूसरे तथा सातवें चरण के आंकड़े उपलब्ध होने के बाद स्थिति और गम्भीर हो सकती है)।
2. कुल निवार्चित 403 सदस्यों में भाजपा के 325 (312+9+4), सपा के 47, बसपा के 19, कांग्रेस के 07, रालोद का 01 तथा अन्य 04 हैं। इनमें भाजपा के 146, सपा के 14, बसपा के 05, कांग्रेस के 02 तथा अन्य में 01 दागी सदस्य हैं। इस तरह भाजपा में 325/146 = 45 प्रतिशत, सपा के 47/4 = 29 प्रतिशत, बसपा में 19/5 = 26 प्रतिशत, कांग्रेस में 7/01 = 14 प्रतिशत दागी हैं। कुल 403 सदस्यों में 166 अर्थात 41प्रतिशत दागी हैं। इस तरह जहाँ 2007 के चुनाव में निवार्चित दागी सदस्यों का प्रतिशत 35 प्रतिशत तथा 2012 में यह 37 प्रतिशत तथा वहाँ 2017 में यह प्रतिशत 41 प्रतिशत पहुँच गया। अर्थात राजनीतिक अपराधीकरण का यह ग्राफ दिन- ब-दिन ऊपर की ओर जा रहा है।

3. लगभग सभी निवार्चित अपराधियों पर संगीन आरोप लगाये गये हैं। जिनमें हत्यायें, हत्याओं का प्रयास, बलात्कार, अपहरण, महिला उत्पीड़न, साम्प्रदायिक दंगे भड़काना या उनमें सक्रिय भागीदारी इत्यादि हैं।
4. वे राजनीतिक दल जो तत्कालीन शासकीय दल पर गुण्डा राज का आरोप लगाकर तथा दबंगो को जेल का रास्ता दिखाने का वायदा करके मतदाताओं को अपनी ओर मोड़ने की रणनीति अपना रहे थे, उन्होंने सब से अधिक बाहुबलि मैदान में उतारे। इनमें भूपेन्द्र (21 गम्भीर मामले), मुख्तार अंसारी (16 संगीन मामले), गोपाल निशाद (11 मामले) तथा राजकुमार तुलसयान (10 मामले) प्रमुख हैं। इसी प्रकृति के अन्य दबंगो के नाम (जो जेल में हैं या जमानत पर हैं) ए0डी0आर0 एलेक्शन ब्रांच ने अपनी रिपोर्ट में जोड़े हैं। इतना ही नहीं उत्तर प्रदेश में बड़ी संख्या में दागियों को सत्ता की बागडोर भी सौंपी गई है।
5. उत्तर प्रदेश के बाद उत्तराखण्ड के चुनावों (2017) पर यदि नजर डाली जाये तो अनेक चौंकाने वाले तथ्य सामने आयेंगे। उत्तराखण्ड विधान सभा में 70 सीटें हैं। जिनमें से 56 पर भाजपा, 11 पर कांग्रेस तथा अन्य को 02 पर जीत मिली। एक नतीजा रोका गया। उत्तराखण्ड में पहाड़ी क्षेत्रों का इतिहास अपराध मुक्त रहा है। धर्म, जाति इत्यादि के नाम पर यहाँ ध्रुवीकरण की संभावना नहीं के बराबर है। लेकिन तराई, भाबर इत्यादि क्षेत्रों में सक्रिय भू-माफिया, खनन माफिया तथा जंगल माफिया का क्षेत्र की राजनीति पर वर्चस्व रहा है। दल-बदल ने यहाँ की राजनीति को और अधिक असंतुलित किया है। जिसके नतीजे में अपराधियों को राजनीति में पैंठ जमाने का मौका मिला है। इसका नतीजा यह निकला कि जहाँ 2012 के चुनाव में केवल 04 दागी चुनकर आये थे, वहाँ 2017 में इनकी संख्या 14 हो गयी। अर्थात 2012 में मात्र 5.7 प्रतिशत दागी थे, वहाँ 2017 में यह संख्या बढ़कर 20 प्रतिशत हो गई। इस स्थिति का एक बड़ा कारण 'डबल इंजन की सरकार' का नारा देने वालों ने 'हर हाल' में चुनाव जीतने के फार्मूले पर लड़ाई लड़ी तथा जहर को जहर से मारने की कोशिश में उन्होंने दागियों को सिर पर बिठा लिया। आर्थिक अपराधियों के आगे समर्पित उत्तराखण्ड की राजनीति किस दिशा में जायेगी, यह समय तय करेगा।
6. पंजाब की विधान सभा में 117 सीटें हैं, जिनमें से 77 पर कांग्रेस ने 20 पर आप ने, 18 पर शिरोमणि अकाली दल भाजपा तथा अन्य ने 02 पर जीत हासिल की। पंजाब की राजनीति पर 10 वर्ष तक शि0 अका0 दल और भाजपा का वर्चस्व रहा। वास्तव में यह वर्चस्व अपराधियों का था जिन में रियल स्टेट से

लेकर ट्रांसपोर्ट तक तथा खनन से लेकर भू-माफिया तक सब पर एक परिवार का प्रभाव था। नतीजा यह हुआ कि पूरा पंजाब आर्थिक अपराधों और नशे में डूब गया। राजनीतिक अपराधीकरण के संदर्भ में अध्ययन से पता चलता है कि 2017 एम0एल0 ऐज़ में केवल 19 सदस्य हैं जिन पर कोई अपराधिक केस दर्ज नहीं था, जबकि 2012 में ऐसे सदस्यों की संख्या 16 थी। अर्थात अपराधीकरण में 03 प्रतिशत का इजाफा हुआ है।

7. जहाँ तक मणिपुर का सवाल है 60 सीटों वाली विधान सभा में निवार्चित सदस्यों पर (2017) आपराधिक मामले दर्ज हैं, जबकि 2012 में यह संख्या शून्य थी।
8. गोवा में 40 सीटों पर आधारित विधान सभा में 2017 में 31 एम0एल0 ऐ0 पर कोई आपराधिक केस दर्ज नहीं था, जबकि 2012 में ऐसे साफ सुथरे सदस्य 28 थे। कुल मिलाकर उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, मणिपुर और गोवा में राजनीतिक अपराधीकरण बढ़ा है।

राजनीतिक अपराधीकरण के बढने के पिछे कुछ कारण जिम्मेदार हैं। जैसे- दबंगों और बाहुबलियों को प्रत्याशी बनाया जाता है, भले ही वे जेल में हों। अपराधी प्रवृत्ति या मानसिकता के लोगों को शासन में सत्ता सम्बन्धी पद दिये जाते हैं। अपराधी प्रवृत्ति के सत्ताधारियों को न केवल साधारण समाज के एक बड़े तबके से बल्कि प्रशासनिक अधिकारियों, नौकरशाहों, पुलिस अधिकारियों तथा सामाजिक-धार्मिक संगठनों से सम्मान मिलता है।

3.12 राजनीतिक अपराधीकरण के परिणाम (Consequences of Political Criminalization)

चुनावों से पूर्व, चुनावों के दौरान तथा चुनावों के बाद राजनीतिक अपराधीकरण के भयावह परिणाम सामने आते हैं। यह इस प्रकार हैं-

1. चुनावों से पूर्व राजनतिज्ञ, अपराधियों का इस्तेमाल करते हैं। इन अपराधियों में धार्मिक अपराधी, सामाजिक अपराधी तथा आर्थिक अपराधी सब शामिल होते हैं।
2. चुनावों के दौरान सभी प्रकार के अपराधी सत्ता प्राप्ति के संघर्ष में अपराधिक कृत्यों को धन, बल और भय के माध्यम से अंजाम देते हैं।
3. चुनावों के वाद सभी प्रकार के अपराधी अपनी भागीदारी के बदले आर्थिक और राजनीतिक लाभ उठाते हैं। माफिया वर्ग की छूट मिलती है, उनको ठेके मिलते हैं और आर्थिक मुकदमों में राहत मिलती है।

4. दागियों को राजनीतिक पद मिलते हैं तथा उनके अपराधों को वैद्यता मिलती है।
5. सामाजिक अपराधियों-हत्यारे, बलात्कारी, अपहरणकर्ता, दंगाई, द्वेष, घृणा तथा ध्रुवीकरण के प्रतीकों पर से जांच ऐजंसियों के माध्यम से मुकदमे वापस ले लिए जाते हैं, या उनको जमानत दिलाने के लिए रास्ता साफ किया जाता है। तर्क यह दिया जाता है कि तथाकथित अपराधियों को राजनीतिक बदले की भावना से फंसाया गया था।
6. अपराधियों को राजनीतिक समर्थन, सहयोग और संरक्षण से अपराधियों का मनोबल बढ़ता है, जिसका नतीजा होता है- आर्थिक भ्रष्टाचार का पनपना, प्रशासन का कमजोर होना, पुलिस प्रशासन का मनोबल टूटना, जातीय टकराव में वृद्धि, साम्प्रदायिक संघर्ष में तीव्रता, गुण्डा-गर्दी में इजाफा, महिला उत्पीड़न, भय का माहौल, तथा (09) सामाजिक विघटन तथा नैतिक मूल्यों में गिरावट।
7. जब किसी राजनीतिक दल को अपनी अपराधिक रणनीति में सफलता मिल जाती है तो अपराधिक राजनीति उसके लिए आदर्श बन जाती है और राजनीतिक अपराधीकरण की प्रक्रिया सतत् गतिशील बनी रहती है।
8. सभी पराजित राजनीतिक दल सत्ताधारी या विजयी राजनीतिक दल की रणनीति का तोड़ अपराधीकरण के परिप्रेक्ष में तलाशने का प्रयास करते हैं अथार्थ 'जहर से जहर को मारने' की रणनीति राजनीति के सिद्धान्त बन जाती है। जैसा कि 'वास्तविक राजनीति' (Real politic) का तकाजा है।

3.13 राजनीतिक अपराधीकरण तथा प्रशासनिक उपाय (Political Criminalization and Administrative steps)

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति और प्रशासन का अपराधीकरण आरम्भ हो गया। इतना ही नहीं 'प्रशासन का अपराधीकरण' और 'प्रशासन का राजनीतिकरण' भी सामने आने लगा। पहले राजनीतिज्ञ अपराधियों का इस्तेमाल करते थे, बाद में अपराधियों ने राजनीतिज्ञों और प्रशासकों का इस्तेमाल शुरु कर दिया। जब स्थिति गम्भीर हो गयी तब शासन के कान खड़े हुए। 1992 में भारतीय सरकार ने मुख्यमंत्रियों की एक कान्फ्रेंस बुलाई। ''भारत में आपराधिक न्याय का प्रशासन'' इस सम्मेलन का विषय था। अन्य मुद्दों के अलावा सम्मेलन में

राजनीति के अपराधीकरण तथा प्रशासन के राजनीतिकरण पर भी चिन्ता व्यक्त की गई। परिणामस्वरूप सरकार ने एक कमेटी गठित की जिसके अध्यक्ष संघीय ग्रह सचिव एन0एन0 वोहरा बनाये गये।

3.13.1 वोहरा कमेटी (Vohra Committee)

भारत सरकार ने 11 मार्च 1993 में संघीय गृह सचिव एन0एन0 वोहरा की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की। इस कमेटी का काम ऐसे अपराधियों के गुटों (Crime Syndicates) तथा माफिया संगठनों की गतिविधियों के बारे में जानकारी हासिल करना था, जिनका सम्बन्ध सरकारी कर्मियों (अधिकारियों) तथा राजनीतिक व्यक्तियों (नेताओं या मंत्रियों) से था और जो इन अपराधियों को संरक्षण देते थे। कमेटी ने 03 अक्टूबर 1993 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया कि ''आपराधिक गिरोहों, पुलिस, नौकरशाहों तथा राजनीतिज्ञों के मध्य एक घिनौना गठजोड़ देश के अनेक क्षेत्रों में आम बात है।'' रिपोर्ट के अनुसार ''बिहार, उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा में माफिया गिरोह स्थानीय सामन्ती राजनेताओं का संरक्षण हासिल करते हैं। सरकारी मशीनरी भी उनको संरक्षण देती है।'' रिपोर्ट में कहा गया कि ''उक्त राज्यों में माफिया जाल एक समानान्तर सरकार चला रहा है।'' कमेटी ने चौकाने वाला खुलासा करते हुए कहा कि ''अपराधी सिन्डीकेटों ने धन-बल के आधार पर जांच करने वाली तथा सजा देने वाली एजेन्सियों को प्रभावित करके उनके काम को कठिन बनादिया है। यहाँ तक कि न्यायपालिका के सदस्य भी माफिया के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं।''

वोहरा कमेटी ने चुनावों पर व्यय होने वाले काले धन को भारत में राजनीतिक अपराधीकरण का सबसे बड़ा कारण बताया। कमेटी का यह भी मानना था कि राजनेता अपराधी गिरोहों, हथियारबन्द सेनाओं तथा अपराधी संघों का स्वंय नेतृत्व करते हैं और अन्ततः यही नेता राज्यों की विधान सभाओं तथा राष्ट्रीय संसद में निवार्चित होकर आते हैं। लगभग 23 वर्ष पूर्व वोहरा कमेटी ने अपनी रिपोर्ट शासन को सौंपी थी, लेकिन भारत में, जैसी कि ऐसी रिपोर्टों की नियति है उस पर कोई अमल नहीं हो सका। 16 मई 1993 को राष्ट्रपति ने वोहरा कमेटी की सिफारिशों को लोक सभा में पेश करते हुए यह टिप्पणी की, ''राजनीति के अपराधीकरण का विषय पूरे राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय है। यह बहुत अधिक परेशान करने वाली बात है कि एक तरफ हमारी 'राजनीतिक व्यवस्था' आरोपित अपराधियों तथा आतंकियों की 'झूठी मुठभेड़ों' (Fake encounters) अथवा संक्षिप्त या सरसरी कार्यवाही करके मृत्यु दण्ड (Summary Executions) देने के प्रति सहनशील है, लेकिन दूसरी और हमारी सर्वोच्च प्रतिनिधि

संस्था, भारतीय संसद ऐसे अपराधियों को जिनपर अनैतिक मानव व्यापार, अपहरण तथा हत्याओं के इल्जाम हैं, शरण देती है।''

3.13.2 सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश (Supreme Courts Directions)

राजनीतिक अपराधीकरण की खतरनाक दिशा को भापकर संघीय सरकार, एन0जी0ओज0 तथा सिटीजेंस फॉर नेशनल कनसेंसस (Citizens for National Consensus or ENC) ने जब निर्वाचन सुधार के लिए बहुत अधिक जोर डाला, तब 02 मई 2002 को सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय या फैसला सुनाया। व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक प्रत्याशी जो संसद, राज्य विधान सभाओं या नगर महापालिकाओं के लिए चुनाव लड़ेगा, उसको अपने प्रार्थना पत्र के साथ निम्न हलफनामा दाखिल करना होगा-

1. प्रत्याशी का आपराधीक रिकार्ड। (सजा, निस्तार, आरोप)
2. प्रत्याशी का वित्तीय रिकार्ड। (पूंजी या सम्पत्ति, देनदारी)
3. प्रत्याशी की शैक्षिक योग्यतायें।

28 जून, 2002 को सर्वोच्च न्यायालय की इस व्यवस्था को चुनाव आयोग ने लागू कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय का यह मानना था कि मतदाताओं को प्रत्याशी के आपराधिक रिकार्ड, सम्पत्ति देनदारी तथा शैक्षिक योग्यता को जानने का अधिकार है। चुनाव आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्याशी के हलफनामे को प्रकाशित करें, ताकि मतदाता प्रत्याशी की पृष्ठभूमि के बारे में अवगत हो सकें।

3.13.3 राष्ट्रीय पुलिस आयोग (National Police Commission)

वोहरा कमेटी तथा सर्वोच्च न्यायालय की सिफारिशों और व्यवस्था से पहले 1977 में नेशनल पुलिस कमीशन की स्थापना की गई। कमीशन ने प्रशासन के अनेक पहलुओं को अपनी रिपोर्ट में दर्शाने का प्रयास किया, जिसमें राजनीतिक अपराधीकरण के कारणों की ओर भी इशारा किया गया। आयोग की एक रिपोर्ट में कहा गया, ''मौजूदा व्यवस्था में पुलिस राज्य सरकार की कार्यपालिका के नियंत्रण में काम करती है, लेकिन जिस तरह से इस देश में पुलिस पर राजनीतिक नियंत्रण का प्रयोग किया गया है उसका भयानक दुरुपयोग हुआ है, जिसका परिणाम कानून के शासन में गिरावट और पुलिस की विश्वसनीयता में कमी आई है।'' रिपोर्ट में कहा गया है कि

स्थानान्तरण या निलम्बन की धमकी राजनीतिज्ञों के हाथ में सब से शक्तिशाली हथियार है। जिसके बल पर वे (राजनीतिज्ञ) पुलिस को अपनी इच्छानुसार झुका लेते हैं। आयोग की सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिफारिशें थीं-

1. पुलिस को गैर-कानूनी राजनीतिक हस्तक्षेप से बचाना।
2. पुलिस को गैर-कानूनी और अवैध नौकरशाही के हस्तक्षेप से मुक्त करना।
3. बेईमान पुलिस अधिकारियों, राजनीतिज्ञों तथा अपराधियों के गठजोड़ (Nexus) को हतोत्साहित करना।

3.14 राजनीति और प्रशासन का अपराधीकरण: एक मूल्यांकन

1. राजनीतिक और प्रशासन का अपराधीकरण भारतीय राजनीति का एक असहज घटनाक्रम हो गया है। यह स्थिति लोकतंत्र की भावना के विपरीत है। कानून के शासन के स्थान पर घन और बल का शासन स्थापित हो गया है। सब से अधिक भयावह स्थिति यह है कि राजनीतिज्ञों तथा जन समुदाय ने अपराधियों की सार्थकता को स्वीकार कर लिया है। इसका अर्थ है जनता तथा उसके प्रतिनिधियों द्वारा लोकतंत्रीय मूल्यों के विरूद्ध जनादेश का समर्थन। यहाँ लोकतंत्र वास्तव में लोकतंत्र का निषेध हो गया है।
2. राजनीतिक दलों की जबरदस्त संख्या बढ़ी है। इसका अर्थ यह नहीं है कि राजनीति के स्तर में सुधार हुआ है या राजनीतिक सामाजीकरण अथवा राजनीतिक संस्कृतिक का विकास हुआ है, इसका अर्थ है राजनीतिक संस्कृति में गिरावट, राष्ट्रवादी भावना में कमजोरी, राजनीतिक मूल्यों का ह्रास। राजनीतिज्ञों, लोक सेवकों तथा अपराधियों तीनों ने लोकतंत्र को अपने हितों की पूर्ति का एक उपकरण बना रखा है। अपराधियों के धन बल के आधार पर जिन राजनीतिज्ञों को सत्ता मिल जाती है वे आदर्शवाद का लिबादा पहन लेते हैं। जिनको सत्ता नहीं मिलती वे आदर्शवादी चोले को फाड़ने के लिए संघर्ष करते हैं।
3. नीति-निर्माण पर राजनीतिज्ञों (लोमड़ी की तरह चालाक) और नौकरशाहों का पूरी तरह नियत्रंण हो यह तो समझ में आता है, लेकिन नीति-निर्माण में आर्थिक और सांस्कृतिक अपराधियों (बाघ की तरह निमर्म, वहशी) का दखल हो यह राजनीतिक और प्रशासनिक अपराधीकरण की देन हैं। इन परा संवैधानिक शक्तियों (Extra–Constitutional Power) का उद्देश्य धन कमाना और अपनी विचारधारा को आगे बढ़ाना होता है।

4. भारत में अधिकतर मतदाता अनभिज्ञ, अशिक्षित तथा भावुक होते है, इसलिए वे अपराधियों द्वारा सरलता से खरीद लिये जाते हैं या उनके भड़काने और बहकावे में आ जाते हैं।
5. आम तौर से भारतीय धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। राजनीतिज्ञ, अपराधियों की मदद से उनकी धार्मिक भावनाओं को सरलता से भड़का सकते हैं।
6. अधिकतर राजनीतिज्ञ भारत की मूल्यविहीन राजनीति का प्रतीक हैं और मैक्यावेली के इस कथन में विश्वास करते हैं कि ''लोगों को धार्मिक बनाओ, स्वयं धर्म का चोला पहनो लेकिन धर्म में विश्वास मत करो, बल्कि धार्मिक बन कर धार्मिक भावनाओं का शोषण करो।''
7. राजनीति का सबसे घिनौना पहलू यह है कि अपराधी छवि के नेताओं को राजनीतिज्ञ टिकट देते हैं, वे चुनाव लड़ते हैं और वे साफ छवि वाले प्रत्याशी को पराजित कर देते हैं और राजनीतिक पद पर आसीन हो जाते हैं। यह भारतीय लोकतंत्र का उपहास है और अनेक टीकाकारों ने इस स्थिति को लोकतंत्र का दुःखांतक (Tragic) पहलू कहा है। यहाँ सय्यद शहाबुद्दीन (IFS) पूर्व एम0पी0 और बुद्धिजीवी का दर्द उनके इस वक्तव्य से छलकता है कि ''सय्यद शहाबुद्दीन को शहाबुद्दीन (राजनीतिज्ञ-अपराधी) जिस पर 36 अपराधी मुकदमे चल रहे हों, हरा सकता है'' (सय्यद शहाबुद्दीन को लोकसभा चुनाव में शहाबुद्दीन ने सिवान, बिहार से हराया था)। यहाँ विडम्बना यह है कि जहाँ भारतीय राजनीति के महायोधाओं ने सय्यद शहाबुद्दीन को 'भारत का जिन्नह' कहा, वहाँ शहाबुद्दीन (अपराधी) को उन्होंने अपने सिर पर बैठा लिया।
8. राजनीतिक और प्रशासनिक अपराधीकरण का एक और कारण और परिणाम है 'भ्रष्टाचार'। भ्रष्टाचार एक द्वि-कतारीय (two-tier) प्रक्रिया है। पहले, संस्थायें भ्रष्ट होती हैं और फिर भ्रष्टचार संस्थागत हो जाता है। अन्ततः भ्रष्टचार तथा संस्थायें एक-दूसरे की पूरक हो जाती हैं और आधार-संरचना (Superstructure) खोखली हो जाती हैं। देश के विभिन्न भागों में होने वाले स्कैम यह सिद्ध करते हैं कि भारत में भ्रष्टचार संस्थागत हो गया है। नोटबन्दी के बाद भी 2017 के चुनावों पर जिस तरह धन बहाया गया उस से सिद्ध होता है कि पहले काले धन को सफेद किया गया और फिर उसका उपयोग चुनावों के दौरान मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए किया गया। 'एलेक्शन वाच' का दावा है कि 2017 के विधान सभा चुनावों में जमकर काले धन का इस्तेमाल वोट खरीदने के लिए हुआ। (प्रति वोटर 100 के हिसाब से प्रत्येक गाँव पर

10 हजार से 40 हजार रूपये खर्च किये गये)। बाहुबलियों ने प्रधान और कोटेदार के जरिए वोट खरीदे। इसके अतिरिक्त शराब का भी खुलकर इस्तेमाल किया गया।

9. राजनीतिक अपराधीकरण के मामलें में विशेष रूप से चुनावों के दौरान, चुनाव आयोग प्रभावहीन तथा बेवस नजर आता है। राजनीतिज्ञों तथा अपराधियों के मध्य बने सम्बन्ध को तोड़ना उसका काम है। यद्यपि आयोग निर्धारित फार्म के जरिए प्रत्याशी से एक हलफनामा लेता है जिस में वह अपनी सम्पत्ति, न्यायालय में चल रहे केसों, सजाओं इत्यादि की जानकारी देता है जो एक सकारात्मक कदम है, लेकिन उसके पास ऐसी कोई यांत्रिकी नहीं है जिस से वह किसी मतदाता को दागी प्रत्याशी के पक्ष में मत देने से रोक सके।

10. चुनाव आयोग की आचार संहिता के संदर्भ में भी आलोचना की जा सकती है। आचार संहिता के उल्लंघन पर सिर्फ दिखावे का केस होता है। यह आयोग की हनक दखाने और दूसरों को डराने के लिए होता है। तफतीश की रफतार धीमी होती है। 2012 के विधान सभा और 2014 के लोक सभा चुनाव में 2487 लोगों पर कुल 910 मामले दर्ज हुये। केवल 32 मामलों पर निर्णय हो सका। बाकी मामले ठण्डे बस्ते में डाल दिये गये।

3.15 सारांश

1. राजनीति का सम्बन्ध अपराध से है, इसलिए राजनीतिक की प्रकृति, उसके चरित्र और भारतीय सन्दर्भ में उसकी परिभाषा को यदि समझा जाये तो यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय राजनीति का सम्बन्ध ''छलछंदी, कपटी, षडयंत्रकारी'' राजनीतिक प्रक्रिया से है, जिसके लिए अंग्रेजी में शब्द ''पालिटिकिंग''(Politicking) का प्रयोग किया गया है।

2. क्योंकि अपराधियों का सम्बन्ध राजनीतिज्ञों से है इसलिए अपराध की प्रकृति को समझना होगा। राजनीतिक अपराधी वास्तविक अपराधियों (Real Criminals) की श्रेणी से आते हैं। इनमें माफिया, बाहुबली, दंभी सामन्ती ऐसे अपराधी हैं जो राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा पुलिस को अपने काबू में कर लेते हैं।

3. भारतीय राजनीति का चरित्र राजनीतिज्ञों और प्रशासकों तथा अपराधियों का गठजोड़ तैय करता है। वास्तविक राजनीति का लक्ष्य है सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष और संघर्ष के लिए अनिवार्य हैं बाहुबलि, हत्यारे, डकैत, जनूनी धर्म प्रर्वतक तथा ध्रुवीकरण में दक्ष रणनीतिकार।
4. अपराधियों को शरण स्थली चाहिए, जो उनको राजनीतिज्ञ राष्ट्र की ''सर्वोच्च स्थली'' संसद या विधानसभा को पनाहगाह के रूप में मोहय्या कराते हैं।
5. राजनीतिक अपराधीकरण का भारत में एक ऐसा इतिहास है, जो शून्य (1885) से आरम्भ होकर, उदारवादी, साम्प्रदायिक, जातिवादी, धर्मान्दी, अतिवादी, उग्रवादी तथा आतंकवादी और अलगाव वादी चरणों से गुजरता हुआ आज विशुद्ध विभाजनकारी बिन्दु पर टिक गया है। साम, दाम, दण्ड, भेद आज भारतीय राजनीति का मूलमंत्र है और इस राजनीति के मुख्य खिलाड़ी हैं राजनीतिज्ञ और अपराधी जिनको जिताकर जनता ने वैधता प्रदान कर दी है।
6. राजनीतिक अपराधीकरण के बीसियों कारण हैं, लेकिन मुख्य कारण तो सत्ता के लिए संघर्ष ही है। सत्ता साध्य है और अपराधी साधन हैं। राजनीतिक दलों में निरन्तर वृद्धि, विचारात्मक टकराव, धार्मिक-सांस्कृतिक जनून, माफिया का सशक्तिकरण, अलगाववाद, खण्डित जनादेश, ध्रुवीकरण की राजनीति, उग्रवाद, आतंकवाद, भ्रष्टाचार-यह सब ऐसे कारण हैं जो राजनीतिक अपराधीकरण के लिए भूमिका अदा करते है।
7. निर्वाचन (विधान सभाओं तथा संसद) से सम्बन्धित सर्वेक्षण तथा उपलब्ध आकड़ों से पता चलता है कि बावजूद सर्वोच्च-न्यायालयों के निर्देशों, आयोगों तथा कमेटियों के सुझावों के राजनीतिक अपराधीकरण का ग्राफ निरन्तर ऊँचा होता जा रहा है। 1992 में यदि यह 16 प्रतिशत था तो आज 2017 के चुनावों के बाद (पांच विधान सभाओं के चुनाव) यह 43 प्रतिशत हो चुका है। इसका एक बड़ा कारण राजनीतिक दलों की राजनीति तथा जनता का इस नीति को समर्थन है।
8. राजनीतिक अपराधीकरण की गम्भीरता को देखते हुए कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की ओर से कुछ सकारात्मक कदम उठाये गये हैं, जिनमें अपराधों, सम्पत्तियों और योग्यताओं से सम्बन्धित प्रत्याशियों

द्वारा अलफनामा देना है। लेकिन विडम्बना यह है कि अधिकांश ऐसे प्रत्याशियों को मतदाता जान बूझकर विधान सभा या संसद तक पहुँचा देता है।

9. सच यह है कि ज्यादातर मतदाताओं, राजनेताओं, प्रशासकों, पुलिस कर्मियों तथा सुरक्षा ऐजंसियों की मानसिकता अपराधी है और जब तक ऐसा है राजनीतिक अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र को खोखला करता रहेगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. 2017 के विधान सभा चुनावों में निर्वाचित 403 सदस्यों में कितने प्रतिशत दागी निर्वाचित हुए?
2. वोहरा समिति की स्थापना कब हुई?
3. नेशनल पुलिस कमीशन की स्थापना कब हुई?
4. सर्वोच्च न्यायालय ने 2002 में कौन सा निर्देश नहीं दिया?
5. राजनीतिक अपराधियों को किस का समर्थन हैं?

3.16 शब्दावली

रियल पॉलिटिक्स- वह राजनीति जो सत्ता को प्राप्त करन के लिए और सत्ता को बनाये रखने के लिए व्यवहार में लाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रियल पॉलिटिक्स का उद्देश्य महाशक्तियों का अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाना, दूसरी शक्ति के प्रभाव को कम करना तथा सदा राष्ट्रहित की बात करते रहना होता है।

पालिटिकिंग- यह चाहे आन्तरिक राजनीति हो या बाह्य राजनीति इसकी प्रकृति छल, धोखा, फरेब, अनैतिकता, मूल्यहीनता, हिंसा और उग्रता से भरी होती हैं। विकासशील देशों की लोकतांत्रिक व्यवस्था में जहाँ राजनीतिक दलों की बहुलता होती है, ऐसी छलछदी राजनीति का बोलबाला होता है।

वामपंथी- वह विचारधारा है जिसका सम्बन्ध मार्क्सवाद, साम्यवाद या माओवाद से है जो पूँजीवाद और सामान्तवाद के विरुद्ध है, जो धर्म या आस्था पर आधारित नहीं है और जिसमें राष्ट्रवाद के लिए कोई स्थान नहीं है।

दक्षिणपंथी- वह विचारधारा जो पूँजीवाद का समर्थन करती हैं और उग्र राष्ट्रवाद का नारा देती है।

3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 41 प्रतिशत, **2.** 1992 में, **3.** 1977 में, **4.** संतानों का रिकार्ड, **5.** जनता का

3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Weiver, Myrox : Party Politics in India, New Delhi.
2. Shastri Sandeep : Local Democracy and Political Parties in India (2003), New Delhi.
3. Spectrum: A Journal of Multi-disciplinary Research, vol.2 issue 10, October 2013.
4. Awasthi & Avasthi : Indian Administration, Agra.

3.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Association for Democratic Reforms: Election Watch: Reports on General Elections 2007, 2012 , 2017 see on websites.
2. Dr. Mallikarjun Minch RP: Criminalization of Politics and Indian Administrations Spectrum vol.2, 10 October 2013.
3. Madhu Kishwar: Art. Criminalization of Politics, see website.
4. Neha Sharma, Art : Criminalization of Politics–A Threat to Democracy, Published in Law Mantra : Journal : info@mantra.com

3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक अपराधीकरण से आप क्या समझते हैं? भारत में राजनीतिक अपराधीकरण की स्थिति क्या है? 2014 के संसदीय चुनावों के सन्दर्भ में समझाईये।
2. राजनीतिक और प्रशासनिक अपराधीकरण में आपस में किस तरह का सहयोग है? इस पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 4 भारत में वित्तीय प्रबन्ध और बजट निर्माण प्रक्रिया

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 वित्तीय प्रबन्धन से आशय

4.3 वित्तीय प्रबन्धन का महत्व

4.4 भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया

4.4.1 बजट की तैयारी

4.4.1.1 बजट निर्माण प्रक्रिया के विभिन्न चरण

4.4.1.2 वार्षिक वित्तीय विवरण या बजट पत्रांकों का संक्षिप्त विवरण

4.4.2 बजट की स्वीकृति

4.4.3 बजट का क्रियान्वयन

4.4.4 बजट का विधायी नियन्त्रण

4.5 सांराश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

भारत में लोक प्रशासन के वित्तीय प्रबन्ध व बजट का निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है, इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं, कि भारतीय प्रशासन क्या है, शासन एवं राज्य शासन क्या है।

वित्त, प्रशासन का जीवन रक्त है, प्रशासन के प्रबन्ध में वित्त शरीर और उसकी छाया के रूप में जुड़े हैं। किसी भी संगठन, उद्योग, कार्यालय और उद्यम के क्रियान्वयन हेतु कर्मचारी और पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, जिसे केवल वित्त के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रशासकीय इंजन का ईधन 'वित्त' है। प्रशासन का प्रबन्ध बिना वित्त के असम्भव है। भारत में लोककल्याणकारी और विकासात्मक राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के सामाजिक और विकासात्मक कार्यों में अप्रत्याशित वृद्धि बनी हुई है। जिस हेतु राजस्व एकत्रण, क्रियान्वयन एवं विधायी नियत्रंण की महत्ती आवश्यकता है, जो उपलब्ध वित्तीय स्रोतों के सर्वोत्तम प्रयोग को बनाए रखे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में वित्तीय प्रबन्ध के आशय, तत्व, सिद्धान्त एवं बजट के माध्यम से उसके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र का विवेचन कर सकेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वित्तीय प्रबन्ध के अर्थ तथा विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- वित्तीय प्रबन्ध के महत्व को लिख सकेंगे।
- बजट निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

4.2 वित्तीय प्रबन्धन का आशय

''वित्तीय प्रबन्ध'' दो शब्दों के मेल से बना है। ''वित्तीय'' का शाब्दिक अर्थ है, धन सम्बन्धित संसाधन और ''प्रबन्ध'' शब्द का आशय सामान्य उद्देश्य के लिए मानव एवं संसाधनों का सरल प्रयास करने से है। लोक प्रशासन के वित्तीय प्रबन्ध में उन प्रशासनिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है, जिनके द्वारा वित्तीय साधनों

का संग्रह, विनियोजन तथा लेखांकन किया जाता है। बजट बनाने तथा उसे क्रियान्वित करने से सम्बन्धित सभी प्रक्रिया, वित्तीय प्रबन्ध का केन्द्र-बिन्दु होती है।

सार्वजनिक आवश्यकताओं को परिपूर्ण करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न स्रोतों से धन एकत्र किया जाता है। परन्तु लोककल्याणकारी और विकासात्मक राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के सामाजिक और विकासात्मक कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से राजकोष में धन अपर्याप्त रहता है। दूसरी ओर प्रशासनिक संरचना की आवश्यकता और कर्मचारियों की सार्वजनिक वित्त पर तीक्ष्ण नजर सार्वजनिक वित्त के प्रयोग को दिग्भ्रमित कर सकती है। अतः चोरी को रोकने एवं उपलब्ध वित्तीय स्रोतों के इष्टतम प्रयोग के लिए उत्तम वित्तीय प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। लोक प्रशासन में इसके अध्ययन को ही वित्तीय प्रबन्ध कहा जाता है। इस प्रकार वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख ध्येय राज्य के वित्त का उचित, दक्ष और प्रभावशाली प्रबन्ध है। इसके अर्न्तगत सरकार के वे तमाम कार्य आते हैं, जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक धन को इकट्ठा करने, व्यय करने, बजट बनाने, आय-व्यय का हिसाब बनाने, सरकार के लेन-देन तथा पूँजी एवं दायित्वों का विवरण रखने एवं इनका सम्पूर्ण प्रतिवेदन तैयार करने से होता है।

वित्तीय प्रबन्ध का संबंध मुख्यतया निम्नलिखित बातों से है-

1. सार्वजनिक सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए धन का एकत्रिकरण करना।
2. सार्वजनिक सेवाओं को प्रदान करने के लिए धन का व्यय करना (बजट तैयार करना)।
3. धन एकत्रीकरण और व्यय के लिए प्रशासन को अधिकृत करना, अर्थात अनुमानित बजट को विधानमण्डल में स्वीकृत कराना।
4. सार्वजनिक धन के प्रयोग करने वालों की नियन्त्रण सत्ता का निर्धारण करना।
5. आय-व्यय सम्बन्धी सिद्धान्तों को क्रियान्वित करना, जिससे बजट का निष्पादन कहते हैं।
6. व्यय किए गये धन के सम्बन्ध में उत्तर दायित्व का निर्धारण करना।
7. बजट सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में कानूनी उत्तर दायित्व लेना तथा परीक्षण कराना, ताकि विधायिका को जवाब दिया जा सके।

आइए अब वित्तीय प्रबन्ध के कुछ अधिक परिष्कृत परिभाषाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं-

एल0 डी0 व्हाइट के अनुसार, ''वित्त प्रबन्ध के अन्तर्गत वे क्रियाऐं सम्मिलित हैं, जो अधिकारियों को धन उपलब्ध कराती हैं तथा उसका नीतिपरक एवं वैधानिकता के साथ कुशलतापूर्वक प्रयोग का आश्वासन देती है''।

डॉ0 सी0 पी0 भाम्भरी के अनुसार, ''वित्त का प्रशासन में वही मूल्य बताया है, जो वातावरण में ऑक्सीजन का है एवं प्रबन्ध उसको वैधानिकता के साथ प्रयोग करता है।''

जेज गैस्टन के अनुसार, ''वित्त प्रबन्ध सरकारी संगठन का वह भाग है, जो सार्वजनिक धन के संग्रह, सुरक्षा तथा आबंटन, सार्वजनिक राजस्व तथा व्यय में समन्वय, राज्य की तरफ से ऋण के क्रियान्वयन के प्रबन्ध, सार्वजनिक व घरेलू वित्त मामलों के सामान्य नियंत्रण से सम्बन्धित है।''

यद्यपि उपरोक्त परिभाषा वित्तीय प्रबन्ध के संकुचित क्षेत्र को दर्शाते हैं, लेकिन वित्तीय प्रबन्ध को व्यापक रूप में जी0 एस0 लाल निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं, ''वित्तीय प्रबन्ध में राज्य के वित्त के समुचित प्रयोग और फलोत्पादक प्रशासन से सम्बन्धित सिद्धान्तों और व्यवहार के साथ सम्बन्धित होता है।'' इस प्रकार उपरोक्त बातों के अध्ययन के बाद निम्नलिखित परिभाषा दी जा रही है।

''वित्तीय प्रबन्ध में सार्वजनिक आय-व्यय की उन समस्त क्रियाओं को शामिल करते हैं, जोकि विधानमण्डल के द्वारा बनाई गयी विधि के अनुसार है। ताकि समस्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में कानूनी उत्तर दायित्व लेना तथा परीक्षण कराना, ताकि विधायिका को जबाब दिया जा सके।''

4.3 वित्तीय प्रबन्धन का महत्व

लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के विस्तार के साथ सरकार के कार्यों में लगातार वृद्धि हुई। इसी प्रकार प्रशासन के प्रत्येक कार्य के लिए कर्मचारी एवं संसाधन की माँग बढ़ी, जिसकी पूर्ति वित्त द्वारा ही सम्भव थी। वर्तमान वैश्वीकरण की परिधि में जिस नवीन कल्याणकारी विश्व की संकल्पना का उद्-भव हुआ है, वहाँ सरकार ने उन नए क्षेत्रों में प्रवेश किया, जो राज्य के कार्य-क्षेत्र से बाहर रखे गये थे। इस प्रकार बदलते हुए सन्दर्भ में वित्तीय प्रबन्ध की महत्ता प्रशासन में अपने आप दृष्टिगोचर होती है, कि बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिए संसाधन की उत्पत्ति के नए स्रोतों तथा अनुकूलतम प्रयोग को महत्ता दी जाए।

वित्त, प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग है। वह उसका जीवन रक्त या जीवन आधार है। प्रशासन और वित्त में उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, जितना शरीर और रक्त में। वस्तुतः 'प्रशासनिक इंजन' का ईंधन 'वित्त' है। शासन के किसी भी

कार्य को वित्त के अभाव में पूर्ण नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार हृदय शरीर में शुद्ध रक्त की पूर्ति कर चेतना और ऊर्जा का संचार करता है, उसी प्रकार प्रशासन में वित्त, प्रशासन की नीतियाँ तथा योजनाओं को पूर्ण करता है, क्योंकि वित्त के अभाव में उनका कार्यान्वयन संभव नहीं है। अतः वित्त को लोक प्रशासन की चालक शक्ति कहा जाता है।

प्राचीन समय में राज्य के बाहरी आक्रमण से बचाव, आन्तरिक शान्ति को बनाये रखने तथा प्रशासन के सामान्य क्रियाओं के संचालन हेतु धन की आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु आज राज्य के कार्य में उसके लोककल्याणकारी योजनाओं के लगातार वृद्धि से वित्त की अनिवार्यतता बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप वित्तीय प्रबन्ध का प्रशासन अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु बन गया है, जो सीमित संसाधन के आधार पर कल्याणकारी विचारधारा के अतिरिक्त लोकतंत्रात्मक व्यवस्था और प्रबन्ध के क्षेत्र में विकसित तकनीकी विशेषता के फलस्वरूप भी बड़ा है।

4.4 भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया

भारत में आधुनिक युग में बजट पद्धति का आरम्भ वायसराय लार्ड केनिंग के कार्यकाल में हुआ। जेम्स विल्सन को 1859 मे वायसराय कार्यकारिणी में वित्त विशेषज्ञ के रूप में नियुक्त किया गया। जिन्होंने 1860 में बजट के माध्यम से भारत की वित्तीय स्थिति का बड़ा सुन्दर विश्लेषण और सर्वेक्षण प्रस्तुत किया, जिस कारण उन्हें भारत में आधुनिक बजट पद्धति का संस्थापक और जन्मदाता कहा जाता है। भारत में बजट पद्धति तैयार करने का उत्तर दायित्व कार्यपालिका को है। 'बजट' शब्द का तो संविधान में कहीं उल्लेख ही नहीं है। संविधान का अनुच्छेद- 112,(1) में ''वार्षिक वित्तीय विवरण'' तैयार करने का उल्लेख करता है, जो प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राष्ट्रपति की स्वीकृति के साथ संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जायगा, जिसमें भारत सरकार के आय और व्यय के अनुमान प्रस्तुत किए जायेंगे। संघीय व्यवस्था के अनुरूप भारत में सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही बजट नहीं होता है। राज्यों के अपने अपने पृथक बजट होते हैं। संघीय स्तर पर भारत में द्वि-बजट की व्यवस्था विद्यमान है, पहला- सामान्य बजट, तथा दूसरा- रेलवे बजट। वर्तमान में मोदी सरकार ने 2017 के बजट में रेलवे बजट को आम बजट के साथ पेश करते हुए अलग से रेल बजट को समाप्त कर दिया है। अब मात्र आम बजट ही पेश होगा। रेलवे बजट का आरम्भ सन् 1921 में 'एकवर्थ समिति' की सिफारिश पर सामान्य बजट से अलग कर दिया गया। ऐसा व्यापारिक दृष्टिकोण के आधार पर किया गया कि रेलवे द्वारा निश्चित अंशदान की व्यवस्था होने से सिविल

अनुमानों में स्थिरता आए और रेलवे वित्त के प्रशासन में लोचपन बना रहे। सामान्य बजट का परिसीमन भारतीय संघीय व्यवस्था में शक्तियों के बटँवारे द्वारा कर दिया गया है। संघीय सरकार और राज्य सरकारें क्रमशः संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में उल्लिखित कार्यों तक ही सीमित है। इस प्रकार केन्द्रीय बजट इस सीमाओं के अर्न्तगत रहकर ही बनाया जाता है। लेकिन 96 वर्षों के बाद रेलवे बजट को आम बजट के साथ मिला कर वर्तमान सरकार ने आम बजट; 2017 पेश किया।

भारतीय सामान्य बजट की रूपरेखा के अर्न्तगत बजट में सरकार के आय-व्यय को तीन खण्डों में रखा जाता है। पहला- समेकित या संचित निधि, दूसरा आकस्मिक निधि और तीसरा- लोकखाता। जिसमें समेकित निधि से व्यय करने के लिए संसद से पूर्व-स्वीकृति अनिवार्य है, जिस हेतु संविधान के अनुच्छेद- 113 के अनुसार अनुदानों की माँगों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। जबकि आकस्मिक निधि से राष्ट्रपति के आदेशानुसार आकस्मिक घटनाओं- युद्ध, बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि आवश्कताओं में परिपूर्ति के लिए व्यय किया जाता है। लोकखाता में जन-सामान्य के द्वारा भविष्य निधि, अल्प बचत संग्रह और अन्य जमा धन आता है, जो सरकार की निगरानी में रहता है और वापस लौटाने की जिम्मेदारी भी सरकार की होती है। अतः इनमें से होने वाले व्यय के लिए संसद की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है। व्यय के आधार पर भारतीय बजट में दो खण्ड पाये जाते हैं, पहला- राजस्व बजट, दूसरा- पूँजीगत बजट। राजस्व बजट में दो भाग- राजस्व प्रप्तियाँ तथा राजस्व व्यय हैं। राजस्व प्रप्तियाँ में आयकर, निगम कर, उत्पादकर और अन्य करों, फीस एवं गैर-कर इत्यादि से होने वाली आय को शामिल करते हैं। राजस्व व्यय जिसमें सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं और व्यवस्था सम्बन्धी व्यय को इस भाग में शामिल किया जाता है। पूँजीगत बजट में सरकार की पूँजीगत प्राप्तियाँ तथा पूँजीगत व्यय शामिल है। पूँजीगत प्राप्तियाँ में जनता से लिए गये उधार, विदेशी सरकार और संस्थाओं से प्राप्त उधार, अल्प बचत तथा भविष्य निधि, ऋण तथा अग्रिमों की वापसी, विनिवेश, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त आय को शामिल किया जाता है। पूँजीगत व्ययों को दो भागों में योजनागत पूँजीगत व्यय तथा गैर-योजनागत पूँजीगत व्यय में रखा जाता है। जिसमें जमीन, इमारतों, मशीनों, उपकरणों जैसे परिसम्पत्तियों को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले व्यय को शामिल करते हैं।

भारत में बजट निर्माण करने का दायित्व वित्त मन्त्रालय को प्राप्त है। वित्त मंत्री, जोकि राष्ट्र के कोष का संरक्षक तथा देश के वित्तीय नीति का कर्णधार माना जाता है, बजट प्रस्ताव संसद के समक्ष रखता है और वित्त विधेयक पारित कर, संसद, वित्तीय वर्ष के लिए बजट का अनुमोदन करती है। इस बजट निर्माण में वित्त मन्त्रालय को अनेक प्रशासनिक मन्त्रालय, योजना आयोग एवं नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक का महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता है, जो एक दिन नहीं अपितु वर्ष भर चलने वाली प्रक्रिया का प्रणाम है। भारतीय बजट प्रक्रिया को प्रमुख रूप से चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

4.4.1 बजट की तैयारी

भारत में बजट निमार्ण प्रक्रिया में सर्वप्रथम वित्त मन्त्रालय प्राथमिकता रूप में विभिन्न मन्त्रालयों, वित्त आयोग, योजना आयोग तथा नियन्त्रण महालेखा परीक्षक के सहयोग से वित्तीय-वर्ष (भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से आरम्भ होकर 31 मार्च तक रहता है।) के शुरू होने के सात से आठ माह पूर्व बजट अनुमान तैयार करता है। बजट की तैयारी के इस प्रथम चरण में कार्यपालिका के द्वारा सरकार की नीति, योजना कार्यक्रम आदि का निरूपण किया जाता है, जिसके आधार पर बजट की तैयारी शुरू की जाती है। प्रशासानिक मन्त्रालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों से उसकी आवश्यकताओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती है। वित्त आयोग केन्द्र और राज्य के मध्य बाँटे जाने वाले संसाधनों के सम्बन्ध में सिद्धान्तों को निर्धारित करता है। योजना आयोग योजनाओं की प्राथमिकता के सम्बन्ध में मन्त्रणा देता है। इस बजट अनुमान की विचार-विमर्शीय प्रक्रिया में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं, जैसे जीवन बीमा निगम, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, औद्योगिक विकास संस्थान आदि के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। योजना आयोग अपने स्तर पर विचार-विमर्श में राज्यों के वित्त सचिवों, वित्त आयुक्तों, विभिन्न क्षेत्रों के तकनीकी विशेषज्ञों, संघीय सरकार के मन्त्रियों के साथ गोष्ठियाँ आयोजित करता है। इस विचार-विमर्श प्रक्रिया में गैर-योजना खण्ड के व्यय की सीमा का भी निर्धारण किया जाता है एवं संघीय सरकार के समस्त स्रोतों का आकलन किया जाता है और नियन्त्रक महालेखा परीक्षक प्राक्कलन तैयार करने हेतु लेखा कौशल उपलब्ध कराता है।

4.4.1.1 बजट निर्माण प्रक्रिया के विभिन्न चरण

बजट अनुमान का कार्य भारत में वित्त मन्त्रालय द्वारा जुलाई-अगस्त माह से ही आरम्भ हो जाता है। वह विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागों के अध्यक्ष को राजस्व और व्यय का अनुमान प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित प्रपत्र भेजता है, जो विभागाध्यक्ष द्वारा स्थानीय कार्यालयों को भेजता है। इस प्रपत्र में निम्नलिखित खण्ड होते हैं-

- विनियोगों के मुख्य और उप-शीर्षक।
- गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय।
- चालू वर्ष के स्वीकृत अनुमान।
- चालू वर्ष के संशोधित अनुमान।
- आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान।
- बजट अनुमानों में प्रस्तावित वृद्धि या कमी का स्पष्टीकरण।

स्थानीय कार्यालयों में अनुमान प्रपत्र तैयार करके सम्बन्धित विभागों को भेज दिया जाता है। विभागाध्यक्ष प्राक्कलन प्रपत्र का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण कर उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन करके उन्हें समेकित एवं एकीकृत करके मन्त्रालय को भेजा जाता है। मन्त्रालय में विभाग स्तर पर इनका सूक्ष्म निरीक्षण करके संशोधन के उपरान्त नवम्बर माह के मध्य तक वित्त मंत्रालय को प्रेषित कर देते हैं। मन्त्रालय द्वारा ही इसकी एक प्रति नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को भी प्रेषित कर दी जाती है, जो अपनी टिप्पणियां वित्त मन्त्रालय के पास भेजता है। वित्त मन्त्रालय अनुमान प्रपत्रों का सूक्ष्मता पूर्वक मितव्ययिता सम्बन्धी परीक्षण करता है। यहाँ नीति सम्बन्धी परीक्षण नहीं किया जाता और ना ही विशेषज्ञ की तरह जाँच ही की जाती है।

पूँजीगत अनुमानों के लिए वित्त मंत्रालय योजना आयोग से परामर्श करता है, नयी योजनाओं के बारे में वित्त मन्त्रालय द्वारा छानबीन करते समय निम्न प्रश्न कर सकता है-

- क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में आवश्यक है?
- यदि है, तो अब तक इसके बिना कैसे काम चल रहा था?

- इसकी आवश्यकता अभी क्यों पड़ी?
- इस व्यय के लिए वित्तीय साधन कहां से प्राप्त होगें?
- क्या नए विकास इस व्यय को अनावश्यक बना सकते हैं?

इस प्रकार वित्त मन्त्रालय प्रश्नों के द्वारा नए व्यय मद की छानबीन पर्याप्त गहराई तक करता है। वित्त मन्त्रालय की व्यय मद की स्वीकृति के बिना उसे बजट में शामिल नहीं किया जा सकता। उसकी असहमति पर सम्बन्धित विभाग का मन्त्री इस सम्बन्ध में अपने विचार रखता है। असहमति होने पर प्रस्तावित योजना पर मंत्रिमण्डल में विचार-विमर्श होता है। मंत्रिमण्डल द्वारा जो भी निर्णय लिया जाए, उसे सभी को मानना होता है। अन्यथा असहमति प्रकट करने वाले व्यक्ति के समक्ष मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र देने का ही विकल्प मौजूद होता है। वित्त मन्त्रालय यह निगरानी करता है कि किसी मन्त्रालय को उसकी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक धन आंवटित न हो जाए। नयी योजनाओं या कार्यक्रम से सम्बन्धित व्यय पर ही अधिक सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता रहती है। इस सन्दर्भ में सर हर्बर्ट कहते है कि, ''वित्त मन्त्रालय को समीक्षा तथा प्रति-परिक्षण करने की एक विशेष दक्षता प्राप्त होती है, जो लम्बे अनुभव का परिणाम है। लेकिन इसमें समयानुसार निरन्तर नया परिवर्तन होते रहना जरूरी है ताकि उसका दृष्टिकोण कुछ बुद्धिमान व्यक्ति जैसा लगे।''

वित्त मन्त्रालय के नियन्त्रण का समर्थन दो बातों के आधार पर किया जाता है, पहला- वित्त मन्त्रालय स्वंय व्ययकारी विभाग नहीं होता है, इसलिए वह करदाताओं द्वारा चुकायी गयी राशियों का अधिक निष्पक्षता से रक्षा करता है। दूसरा- वित्त मन्त्रालय द्वारा दूसरे मन्त्रालयों के व्यय के लिए वित्त का प्रबन्ध किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि वह इस व्यय के औचित्य के सम्बन्ध में निर्णय ले सके। इन्ही बातों पर वित्त मन्त्री और वित्त मन्त्रालय की विशिष्टता को व्यक्त करते हुए ब्रिटेन में गठित हाल्डेन कमेटी ने कहा था कि ''यदि वित्त मन्त्री को जलाशय में पानी एकत्रित करने तथा पानी के निश्चित स्तर को बनाए रखने के लिए उत्तर दायी ठहराया जाता है, तो उसे पानी की निकासी पर भी नियन्त्रण रखने का हक प्राप्त होना चाहिए।''

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त वित्त मन्त्रालय के सूक्ष्म निरीक्षण को दोषपूर्ण माना जाता है।

1. भारी व्यय की आवश्यकताओं वाली योजनाओं में सूक्षम निरीक्षण पूर्ण नहीं हो पाता है। फलतःबजट में इनके लिए एक मुश्त राशि रख दी जाती है, जो उन योजनाओं के लिए कम अथवा ज्यादा पड़ती है, इसलिए बजट के बाद ऐसी योजनाओं के पुनर्निरीक्षण की जरूरत होती है।
2. आज की बदलती हुई परिस्थितियों में नियन्त्रण असामयिक है। वित्त मन्त्रालय का बड़े भाई जैसा व्यवहार अधिकांश मन्त्रालयों के लिए सरदर्द बन जाता है। इससे प्रत्येक नए प्रस्ताव पर स्वीकृति देने से इन्कार की आदत हो जाती है और इस प्रकार प्रगतिशील नीतियाँ अवरूद्ध हो जाती है।
3. योजनाऐं बजट तैयारी के अन्तिम समय में आती हैं, जिन्हें राजनीतिक कारणों से बिना सूक्ष्म निरीक्षण के बजट में शामिल कर लिया जाता है, जो पूरे बजट कार्यक्रम को नुकसान पहुँचा सकता है।
4. वित्त मन्त्रालय के कर्मचारी मानवीय कमजोरियों एवं सीमाओं से अछूते नहीं होते हैं। अनेक अवसरों पर ऐसा होता है कि एक पैसा बचाने के लिए रूपया खर्च कर देते हैं। यह छोटी-छोटी मदों की स्वीकृत में आनाकानी दिखते हैं, किन्तु बड़ी-बड़ी योजनाओं को बिना आपत्तियाँ उठाए स्वीकार कर लेते हैं।

व्यय सम्बन्धी अनुमान पूर्ण हो जाने पर सरकारी आय तथा राजस्व के अनुमान तैयार किए जाते हैं। इस कार्य में वित्त मन्त्रालय को आयकर विभाग, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विभाग आदि द्वारा सहायता प्राप्त होती है। ये गतवर्ष की आय के आधार पर आगामी वित्तीय वर्ष की सम्भावित आय का अनुमान लगाते हैं। वित्त मन्त्रालय व्यय के आधार पर आवश्यक आय हेतु कर की दरों में परिवर्तन कर सकता है। वित्त मन्त्रालय समस्त विभागों की अनुदान मांगों के एकत्रित करके, जो आय-व्यय का दस्तावेज बनाता है, इसे ही बजट कहते हैं। उसके दो भाग किए जाते हैं, पहला- वार्षिक वित्तीय विवरण पत्र, और दूसरा- अनुदानों की माँग। प्रथम भाग में जन-आलेखन तथा संचित निधि को रखा जाता है, जबकि दूसरे में संचित निधि के पूरे किए जाने वाले व्यय को दिखलाया जाता है।

4.4.1.2 वार्षिक वित्तीय विवरण या बजट पत्रांकों का संक्षिप्त विवरण

संविधान के अनुच्छेद- 112 के अनुसार प्रत्येक वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में, जो 01 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है, भारत सरकार द्वारा अनुमानित आय और व्यय का विवरण संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इस वार्षिक वित्तीय विवरण को ही प्रमुख बजट-प्रपत्र कहते हैं। इस वार्षिक वित्तीय विवरण में सरकार के आय और व्यय को

तीन भागों में, जिनके अनुसार सरकारी लेखे रखे जाते है, दिखाया जाता है ये भाग हैं- 1. समेकित या संचित निधि, 2. आकस्मिकता निधि तथा 3. लोक खाता।

सरकार को प्राप्त होने वाले सभी कर राजस्व, गैर-कर राजस्व, शुल्कों तथा उसके द्वारा लिए गये ऋण और उसके द्वारा वितरित ऋणों की वसूली से प्राप्त होने वाली आय ''समेकित निधि'' में दिखाई जाती है। सरकार का पूरा व्यय समेकित निधि से किया जाता है और जब तक संसद की स्वीकृति नहीं मिल जाती तब तक इस निधि में से कोई धन खर्च नहीं किया जा सकता है। कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब सरकार को संसद की स्वीकृति मिलने के पहले कुछ आवश्यक आकस्मिक व्यय करना पड़ता है, जिसका अनुमान ही नहीं रहता है। इस तरह का व्यय आकस्मिक निधि से किया जाता है। यह निधि अग्रदाय(Imprest) के रूप में राष्ट्रपति के पास रहती है। आकस्मिक निधि इस तरह से जो भी व्यय करती है, उसे बाद में संसद की स्वीकृति से पूरा कर उतनी ही रकम आकस्मिक निधि में वापस डाल दी जाती है।

सरकारी खाते में समेकित निधि(Consolidated fund) से अलग कुछ अन्य लेन-देन, जैसे भविष्य निधियों के सम्बन्ध में लेन-देन, अल्प बचत संग्रह तथा अन्य जमा आदि का हिसाब रख जाता है। सरकार इन लेन-देनों के सम्बन्ध में बैंकर के रूप में कार्य करती है। इस तरह जो आय होती है, उसे लोकखाते में दिखाया जाता है और सम्बन्धित व्यय इसी में से धनराशि निकाल कर किया जाता है। सामान्य तौर पर लोकखाते में दिखाई जाने वाली आय सरकार की आय नहीं होती, क्योंकि इस धनराशि को किसी न किसी समय उन व्यक्तियों या प्राधिकारियों को जो इसे जमा करते हैं, वापस देना होता है। इसलिए लोकखाते से अदायगी के लिए संसद की स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं होता। सरकार की आय का कुछ भाग कुछ मामलों में खास-खास कार्यों के लिए, जैसे- कोयला खान श्रमिक कल्याण के लिए, चीनी विकास के लिए या वाणिज्यिक उपक्रमों में पुरानी मशीनरी के स्थान पर नई मशीनरी प्रतिस्थापन लाने आदि के लिए अलग-अलग निधियों से अलग निकाल कर रख दिया जाता है। यह धनराशि संसद की स्वीकृति से समेकित निधि से निकाली जाती है और विशेष कार्यों पर व्यय किये जाने के लिए लोकखाते में जमा रखी जाती है। परन्तु कार्य विशेष पर जो खर्च किया जाता है, उसे संसद के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि यह धन-राशि निधियों से अन्तरित(Transfers) करने से पहले ही संसद द्वारा निर्धारित की हुई होती है।

संविधान के अनुसार व्यय की कुछ मदें, जैसे राष्ट्रपति की परिलब्धियां(Emoluments), राज्य सभा के सभापति और उप-सभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन-भत्ते, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और भारत के नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक के वेतन भत्ते और पेंशन, सरकार द्वारा लिए गये उधारों के ब्याज एवं अदायगी और अदालती डिग्रियों के सम्बन्ध में की गयी अदायगियां आदि समेकित निधि पर भारित होती हैं और इन्हें संसद द्वारा स्वीकृति देने की आवश्यकता नहीं है। वार्षिक वित्तीय विवरण में समेकित निधि पर भारित व्यय को अलग से दिखाया जाता है। संविधान के अनुसार बजट में राजस्व खाते के व्यय को अन्य व्यय से अलग दिखाना होता है, इसलिए सरकार का बजट, राजस्व बजट और पूँजी बजट में बंटा होता है।

1. **वित्त विधेयक-** सरकार द्वारा लगाए जाने वाले नए करों के प्रस्ताव, विद्यमान कर ढाँचे को संसद द्वारा स्वीकृत अवधि के बाद जारी रखने के प्रस्ताव वित्त विधेयक के रूप में संसद के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते हैं।

2. **लेखाओं का वर्गीकरण-** सरकार के लेखे, संविधान के अनुच्छेद-150 के अधीन भारत के नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार रखे जाते हैं। वार्षिक वित्तीय विवरण में आय और व्यय अनुमान तथा अनुदानों की माँगों में व्यय के अनुमान लेखाओं के इसी वर्गीकरण के अनुसार दिखाए जाते हैं। इस वर्गीकरण का उद्देश्य संसद और जनता को संसाधनों के आबंटन और खर्च करने में सरकार के उद्देश्य को समझने में सहायता देना है।

3. **अनुदान की माँगे-** वार्षिक वित्तीय विवरण में समेकित निधि से किए जाने वाले व्यय के अनुमान दिए जाते हैं। ये अनुमान संविधान के अनुच्छेद-113 के अधीन अनुदान की माँगों के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रायः प्रत्येक मन्त्रालय अथवा विभाग के सम्बन्ध में अनुदान की एक माँग प्रस्तुत की जाती है। परन्तु बड़े मन्त्रालय या विभाग जो कई अलग-अलग सेवाओं के लिए उत्तर दायी होते हैं, वहाँ प्रत्येक मुख्य सेवा के लिए एक अलग माँग प्रस्तुत की जाती है। प्रायः प्रत्येक माँग में एक सेवा के लिए आवश्यक व्यवस्था दी गयी होती है। अर्थात इसमें राजस्व से किये जाने वाला व्यय, पूँजी व्यय, राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्रों को दिये जाने वाले अनुदान और उस सेवा के सम्बन्ध में ऋणों और अग्रिमों के लिए की गयी

व्यवस्था शामिल होती है। जिन मामलों में किसी सेवा से सम्बद्ध व्यवस्था पूर्ण रूप से समेकित निधि पर भारित व्यय के लिए होती है, जैसे- ब्याज की अदायगियां, तो यह व्यय बिलकुल भिन्न माँग से है। एक अलग विनियोग प्रस्तुत कर उस पर संसद द्वारा स्वीकृत लिए जाने की आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु ऐसी किसी सेवा के व्यय के मामले में, जिसमें 'स्वीकृत' एवं 'भारित' दोनों मदें शामिल हैं तो उस सेवा के लिए प्रस्तुत की जाने वाली माँग में भारित व्यय भी शामिल कर लिया जाता है, लेकिन दोनों की व्यवस्थाएँ अलग-अलग दिखाई जाती है। वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ अनुदान माँग प्रस्तुत की जाती है। प्रत्येक माँग में ऊपर की ओर पहले 'स्वीकृत' और 'भारित' व्यय तथा माँग में शामिल 'राजस्व' और 'पूँजी व्यय' का अलग-अलग जोड़ दिखाया जाता है। इसके उपरान्त विभिन्न मुख्य लेखा शीर्षों के अर्न्तगत व्यय के अनुमान दिए जाते हैं। इन ब्यौरों के बाद माँगों के अन्त में वसूलियों का ब्यौरा दिया जाता है, जिन्हें व्यय में से घटा कर खातों में दिखाया जाता है।

4. **विनियोग विधेयक-** लोक सभा द्वारा अनुदानों की माँगों को स्वीकार किए जाने के बाद इस प्रकार स्वीकृत रकमों और समेकित निधि पर भारित व्यय को पूरा करने के लिए आवश्यक रकम को समेकित निधि से निकालने के लिए विनियोग विधेयक के माध्यम से संसद का अनुमोदन प्राप्त किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद- 114 (3) के अनुसार समेकित निधि से कुछ भी धन संसद द्वारा इस सम्बन्ध में कानून बनाए बिना नहीं निकाली जा सकती है।

4.4.2 बजट की स्वीकृति

वार्षिक वित्तीय विवरण या बजट संसद में निम्नलिखित पांच स्तरों से गुजरता है-

1. **बजट प्रस्तुतीकरण का स्तर-** संसद का बजट अधिवेशन सामान्यतया फरवरी के मध्य में आरम्भ होता है। प्रथमतया रेल मन्त्री रेल विभाग का बजट प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात वित्त मन्त्री (28 फरवरी) 'वार्षिक वित्तीय विवरण' संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस विवरण के दो भाग होते हैं- वित्त मन्त्री का बजटीय भाषण और बजट अनुमान। बजट भाषण में वह देश की सामान्य आर्थिक स्थिति, सरकार की वित्तीय नीति, चालू वर्ष के वित्तीय अनुमानों, संशोधित अनुमानों में उत्पन्न अन्तर का

कारण, चालू वर्ष की स्वीकृत माँग और आगामी वर्ष के लिए प्रस्तुत की जाने वाली माँगों में पाये जाने वाले अन्तर के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण होता है। इस भाषण के द्वारा ही वित्त मन्त्री आगामी वर्ष के लिए सरकार की वित्त और आर्थिक नीति की घोषणा करते हैं।

2. **सामान्य विचार-विमर्श का स्तर-** बजट प्रस्तुत होने के कुछ दिन बाद उस पर विचार-विमर्श आरम्भ किया जाता है, जो कि तीन से चार दिन चलता है। इसका आरम्भ विरोधी दल के नेता द्वारा किया जाता है, जो अन्तर्निहित नीति अथवा सिद्धान्तों पर होती है। इस स्तर पर कोई प्रस्ताव नहीं आता। इसका उद्देश्य देश की वित्तीय व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं को उठाना और बजट पर विस्तार से विचार नहीं होता और न ही कटौती प्रस्ताव आते हैं। विचार-विमर्श के अन्त में वित्त मन्त्री द्वारा एक सामान्य उत्तर दे दिया जाता है।

3. **माँगों पर विचार-विमर्श और उसकी स्वीकृति का स्तर-** सामान्य विचार-विमर्श के पश्चात राज्य सभा का कार्य प्रायः समाप्त हो जाता है। परन्तु अब लोक सभा उन अनुदान माँगों, जो संचित निधि पर भारित नहीं होते, पर मतदान कार्य आरम्भ करती है। मतदान सम्बन्धी अधिकार लोक सभा का अक्षुण्ण अधिकार होता है। इस सन्दर्भ में उसे अधिकार है कि चाहे वह माँग को स्वीकार कर ले या माँग को अस्वीकार कर दे या माँग की गयी धनराशि कम कर दे। संविधान के अनुच्छेद- 113(1) के अनुसार सदन को माँग में वृद्धि करने का कोई अधिकार नहीं है। ना ही यह अनुदान के लक्ष्य को बदल सकती है, न ही अनुदान विनियोजन के साथ कोइ शर्त लगा सकती है। वे केवल इनमें कटौती प्रस्ताव रख सकते हैं। यह प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं- पहला- नीति सम्बन्धी कटौती प्रस्ताव वे होते हैं, जिनका उद्देश्य प्रस्तावित व्यय में अन्तर्निहित नीति का विरोध करना होता है। दूसरा- मितव्ययता कटौती प्रस्ताव, किसी माँग से धन की राशि कम करने का उद्देश्य रहता है। इस प्रस्ताव से सम्बन्धित वक्तव्य, मितव्ययता लाने के उपायों पर विचार करते हैं। तीसरा- प्रतीक कटौती प्रस्ताव, माँग से सम्बन्धित विशेष शिकायतों को सामने लाने का कार्य करते हैं।

व्यवहार में यह कटौती प्रस्ताव मंत्रिमण्डल की इच्छा से स्वीकार किया जाता है, अन्यथा यह उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव जैसा होता है। भारतीय संसद में माँगों पर मतदान के लिए छब्बीस दिन

निर्धारित किए गये हैं। इस अवधि में सभी माँगों को एक साथ मतदान के लिए लिया जाता है, एवं साथ ही पारित की जाती है। जब एक मन्त्रालय की माँग संसद में प्रस्तुत की जाती है, तो उस पर वाद-विवाद के दौरान मन्त्रालय की नीति और प्रशासनिक गतिविधियों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। इस दौरान संबंधित मन्त्री, विवाद संबंधी उत्तर देता है और अपने विभाग की माँग का औचित्य भी सिद्ध करता है।

4. **विनियोजन विधेयक पर विचार-विमर्श और उसकी स्वीकृति का स्तर-** माँगों पर मतदान के बाद विनियोजन विधेयक की स्वीकृति के रूप में मतदान का अन्तिम चरण पूरा किया जाता है। सदन द्वारा स्वीकृत माँगों को विनियोजन विधेयक के माध्यम से कानूनी रूप दिया जाता है। इसे पारित करते समय सदन पूर्व पारित अनुदानों में अथवा संचित निधि के प्रस्तावों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। संसद द्वारा पारित होने के बाद यह राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु भेज दिया जाता है, जो संविधिक प्रावधानों के कारण उसको निश्चित रूप से स्वीकृति प्रदान करता है।
5. **कर प्रस्ताव पर विचार-विमर्श और उसकी पुष्टि का स्तर-** कर सम्बन्धी प्रस्तावों को वित्त विधेयक का रूप दिया जाता है। वित्त विधेयक में सरकार द्वारा आगामी वर्ष के लिए वित्तीय प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते हैं, जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ ही रखा जाता है। विनियोजन विधेयक के पारित होने से सरकार को संचित निधि से धन व्यय करने का अधिकार तो मिल जाता है, पर सरकार की आय हेतु वित्त विधेयक की आवश्यकता होती है। वित्त विधेयक के पारित होने के उपरान्त बजट को संसद द्वारा स्वीकृत मान लिया जाता है।

विनियोजन एवं वित्त विधेयक को धन विधेयक की संज्ञा दी जाती है। अतः लोक सभा की तुलना में राज्य सभा का क्षेत्राधिकार सीमित होता है। सरकार के द्वारा रखे गये बजट में आय-व्यय के सभी अनुमान होते हैं, लेकिन विशेष स्थिति का सामना करने के लिए लोक सभा से कुछ और अनुदान पास कराये जाते हैं।

लेखानुदान, बजट-सत्र के दौरान 31 मार्च तक सभी माँगों पर बहस न भी हो पाये तो भी अन्तिम दिन में उन सब माँगों को पारित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में सभी माँगें अनुदान बन जाती हैं। इस व्यवस्था को लेखानुदान कहा जाता है। इससे वित्तीय वर्ष आरम्भ होने पर अर्थात, एक अप्रैल से वित्त को व्यय करने की वैधानिक अनुमति मिल जाती है। साथ ही नवीन वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के बाद भी विभिन्न माँगों पर बहस की जा सकती है।

प्रत्यानुदान वह अनुदान है, जिसमें संसद उन माँगों को भी स्वीकृत कर सकती है, जो कि अप्रत्याशित स्थिति का मुकाबला करने के लिए आवश्यक हो। जैसे युद्ध आदि पर व्यय करने के सम्बन्ध में।

अनुपूरक अनुदान का संविधान के अनुसार निम्न रूप में प्रावधान है- 1. यदि विनियोजन विधेयक द्वारा चालू वित्तीय वर्ष के लिए स्वीकृत धन अपर्याप्त हो। 2. यदि चालू वित्त वर्ष में किसी नये विषय जो कि बजट में न दिया हो, पर खर्च के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता हो। 3. यदि किसी कारण से चालू वित्त वर्ष में किसी विषय पर अनुदान से अधिक धन खर्च कर दिया गया हो।

अतिरिक्त अनुदान पर वित्त वर्ष की समाप्ति पर मतदान होता है। अनेक बार व्यय का निश्चित अनुमान लगाना तथा निर्धारित परिधि की सीमा के रूप में व्यय करना संभव नहीं होता। अतः अतिरिक्त अनुदान संसद द्वारा स्वीकृत कर धन के व्यय को वैधानिकता प्रदान की जाती है। इसमें संसद प्रस्तुति से पूर्व लोकलेखा समिति से अनुमोदन करना आवश्यक है।

4.4.3 बजट का क्रियान्वयन

बजट का सफल क्रियान्वयन वह है, जिसमें सभी वित्तीय नियमों, विनियमों का पालन होता है। इस क्रियान्वयन कार्य में अग्रलिखित वित्तीय संक्रियाऐं और उनसे सम्बन्धित अधिकारी और अभिकरण जुड़े हैं। बजट क्रियान्वयन सम्बन्धी इन विभिन्न संक्रियाओं का विवेचन निम्नवत है-

संक्रियाऐं	**अभिकरण/अधिकारी**
राजस्व का एकत्रीकरण	- राजस्व विभाग
एकत्रित राजस्व का रक्षण	- बैंक (सरकारी निजी) एवं राजकोष
उपलब्ध धन का वितरण	- वितरण अधिकारी
आय व्यय का लेखांकन	- महालेखाधिकारी
अंकेक्षण तथा प्रतिवेदन	- महालेखा परीक्षक

1. **राजस्व का एकत्रीकरण-** यह बजट के क्रियान्वयन सम्बन्धी प्रथम प्रक्रिया है। वित्त विधेयक में प्रस्तावित कर प्रस्ताओं के अर्न्तगत आय सम्बन्धी अनुमान लगाना और अनुमानित राजस्व का एकत्रीकरण करना होता है। अनुमान का अभिप्राय है कि उन व्यक्तियों और निगमनात्मक इकाइयों को

वित्त अधिनियम में निहित आधार के अनुरुप पहचानना और उनसे वसूल की जाने वाली कर राशि को आंकलन। उसके पश्चात उनसे इस धन को वसूल करने का कार्य ही राजस्व एकत्रीकरण का कार्य है। आय स्रोतों के मूल्यांकन तथा वसूली का कार्य वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग करता है, जो एक सचिव के नियन्त्रण व निर्देशन में कार्य करता है। यह केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क बोर्ड के माध्यम से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सभी प्रकार के संघीय कर से सम्बन्धित राजस्व मामलों में नियन्त्रण एवं वसूली करता है।

2. **राजस्व का संरक्षण-** राजस्व कोष के संरक्षण की व्यवस्था के सन्दर्भ में दो बातें आवश्यक हैं, पहला- वित्तीय लेन-देन को सुविधाजनक बनाना और दूसरा- वित्तीय साधनों के गबन और दुरूपयोग को रोकना। धन संरक्षण और वितरण की व्यवस्था प्रत्येक देश द्वारा अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं के आधार पर निर्धारित होती है। भारत में राजकोष व्यवस्था का प्रचलन है। इस समय भारत में 400 राजकोष तथा 1200 उप-राजकोष कार्य कर रहे हैं। ये राजकोष जिला तथा तहसील स्तर पर सरकार की तरफ से भुगतान स्वीकार करते हैं एवं भुगतान देते हैं। साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक एवं भारतीय स्टेट बैंक जहाँ भारतीय रिजर्व बैंक के शाखाऐं नहीं हैं, वित्तीय भूमिका निभा रहे हैं, जो चालान के माध्यम से धन जमा करते हैं। जब भी किसी को सरकार से धन प्राप्त करना होता है, वह उसके नाम जारी किये गये चैक या प्राप्ति बिल को सरकारी राजकोष या बैंक में सम्बन्धित अधिकारी के सम्मुख पेश करके धन ले सकता है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था वित्त मन्त्रालय के दिशा-निर्देश में चलती है।

3. **राजकोष का वितरण-** एकत्रित धन को वितरित करना, बजट क्रियान्वयन सम्बन्धी एक प्रमुख स्तर है। बजट पास होने के तुरन्त बाद वित्त मंत्रालय विभिन्न मंत्रालयों को स्वीकृत अनुदानों की सूचना दे देता है। मन्त्रालय बजट प्रावधानों तथा प्रशासनिक स्वीकृतियों की सूचना विभागाध्यक्ष को दे देता है, जो प्रक्रिया जिला स्तर तक पहुँच जाती है। वितरण अधिकारी सरकारी कोषों के संरक्षण तथा संवितरण का कार्य राजकोष, उप-राजकोष तथा अधिकृत बैंक की शाखाओं के माध्यम से नियमानुसार करते रहते हैं। यहाँ वह देखता है कि चालान या चैक सम्बन्धित अधिकृत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित है, अथवा नहीं। परन्तु इसके साथ यह देखता है कि-

- क्या वह बजट प्रावधान के अनुरूप है, अथवा नहीं?
- क्या तत्सम्बन्धी समुचित प्रशासनिक और तकनीकी अनुमोदन प्राप्त हो चुका है?
- क्या भुगतान की माँग उचित है?
- क्या भुगतान के लेखा की व्यवस्था है अथवा नहीं?

आजकल अधिकांश धन सम्बन्धी लेन-देन चेक या प्राप्ति बिल द्वारा ही किया जाता है। अतः संवितरण का कार्य इतना कठिन नहीं रहा है। बैकिंग के विस्तार के कारण अब सरकारी कोषों का भण्डारण रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक अथवा उसकी शाखाओं में किया जाता है। इसके साथ राजकोष अथवा उप-राजकोष भी इस दायित्व का निर्वाह करते हैं।

4. **आय-व्यय लेखे-** आय-व्यय या नियन्त्रण लेखे का मुख्य ध्येय धन संग्रहण, एकत्रण और रक्षण करने वाले अधिकारियों की ईमानदारी का आश्वासन देना और इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए नियमों, निर्देशों और सीमाओं का कठोरता से अनुपालन करने का आश्वासन प्राप्त करना है। जो अलग लेखा तथा अंकेक्षण विभाग के माध्यम से नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता से किया जाता है। रेलवे के अलावा प्रत्येक विभाग एवं राज्यों में एक महालेखापाल होता है। लेखापरीक्षक द्वारा निर्धारित नियमों के अनुरूप प्रारम्भिक लेखा उस कोषागार में होता है, जहाँ किसी प्रकार का लेन-देन होता है। फिर व्यय शीर्षों के अनुसार सभी लेन-देनों का व्यौरे-वार वर्गीकरण एवं लेखाधिकारियों द्वारा लेखों का मासिक संकलन तथा अन्त में भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा इनका वार्षिक संकलन होता है।
5. **लेखों का अंकेक्षण तथा परिक्षण-** महालेखाकार कार्यालय देश भर के हिसाब-किताब को पहली तारीख को प्राप्त कर प्राप्तियों तथा खर्च का शीर्ष के अनुसार वर्गीकरण करता है। जहाँ राजस्व खाता, पूँजीगत खाता, ऋण खाता और दूरस्थ प्राप्तियों रूपी चार शीर्षों में लेखा सूचनाऐं संकलित की जाती हैं। जहाँ अन्तिम रूप में भारत का महालेखा परीक्षक सरकार के समस्त लेखों का उपरोक्त शीर्षों के आधार पर लेखा करके केन्द्र और राज्यों में क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल के सम्मुख पेश करता है। जिसमें

वित्तीय लेखे, विनियोजन लेखे और तत्सम्बन्धी अंकेक्षण प्रतिवेदन होती है। प्रतिवेदन निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है-

- क्या धन का विनियोजन अधिनियम के अनुसार किया गया?
- क्या धन के विनियोजन में निर्धारित नियमों का अभिपालन किया गया?
- क्या सार्वजनिक धन का दुरूपयोग तो नहीं किया गया?
- सेवाओं की सम्पन्नता में कितना समय व्यय किया गया? इत्यादि।

इस प्रकार लेखा परीक्षण सार्वजनिक हित, सार्वजनिक धन के उचित व्यय को आश्वस्त करने का एक महत्वपूर्ण उपाय है, जो प्रशासनिक अधिकारियों को किसी प्रकार के घोटाले के प्रति सचेत करता है।

4.4.4 बजट का विधायी नियन्त्रण

प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में सरकारी वित्त पर विधायिका का नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। भारत में इस नियन्त्रण के विकास का एक रोचक इतिहास रहा है। यहाँ 1911 में केन्द्रीय व्यवस्थापिका में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत रखा गया है। इसके साथ ही जनलेखा समिति का गठन किया जाता है, जिनमें निर्वाचित एवं सरकारी दोनों प्रकार के सदस्यों को लिया जाता है। स्वतन्त्रता के बाद विधायिकों द्वारा लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति तथा सार्वजनिक उपक्रमों और विभागीय समिति के माध्यम से सार्वजनिक वित्त पर नियन्त्रण रखती है। इसलिए वित्तीय नियन्त्रण की दृष्टि से समितियाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. संविधान के किस अनुच्छे के अनुसार भारत सरकार अनुमानित आय और व्यय का विवरण संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है?
2. भारत में वित्तीय वर्ष कब से कब तक रहता है?
3. लेखानुदान बजट सत्र के दौरान कब तक पारित कर दिया जाता है?

4.5 सारांश

प्रशासनिक कार्यों को बिना वित्त को पूर्ण किया जाना सम्भव ही नहीं है। वित्तीय प्रबन्ध में उन प्रशासनिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है, जिनके द्वारा वित्तीय साधनों का संग्रह, विनियोजन तथा लेखांकन किया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख ध्येय राज्य के वित्त का उचित, दक्ष और प्रभावशाली प्रबन्ध है। इसके अन्तर्गत सरकार के वे तमाम कार्य आते हैं, जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक धन को इकट्ठा करने, व्यय करने, बजट बनाने, आय-व्यय का हिसाब बनाने, सरकार के लेन-देन तथा पूँजी एवं दायित्वों का विवरण और इनका सम्पूर्ण प्रतिवेदन तैयार करने से होता है। इसलिए कहा जाता है कि प्रशासनिक इंजन का ईधन वित्त है। प्रशासन के प्रत्येक कार्य को वित्त के अभाव में पूर्ण नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार हृदय शरीर में शुद्ध रक्त की पूर्ति कर चेतना और ऊर्जा का संचार करता है, उसी प्रकार प्रशासन में वित्त उसकी नीतियाँ तथा योजनाओं को पूर्ण करता है, क्योंकि वित्त के अभाव में उनका कार्यान्वयन सम्भव नहीं है। इसी कारण वित्त को लोक प्रशासन की चालक शक्ति कहा जाता है।

भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया का प्रमुख उत्तर दायित्व वित्त मन्त्रालय का है। वित्त मन्त्रालय का प्रमुख वित्त मन्त्री होता है, जो राष्ट्र के कोष का संरक्षक तथा देश की वित्तीय नीति का कर्णधार माना जाता है। लोक वित्त का उचित वितरण एवं प्रयोग करना उसका प्रमुख कार्य है। 'बजट' का निर्माण एक दिन में न करके अपितु साल भर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में होता है। जिसके प्रमुख रूप में चार चरण हैं- प्रथम चरण में, वह बजट की तैयारी करता है, जिसके अर्न्तगत वह बजट अनुमान आगामी वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के 07 से 08 माह पूर्ण प्रारम्भ करता है। इस प्रक्रिया के पूर्ण करने में विभिन्न प्रशासनिक मन्त्रालय, योजना आयोग तथा नियन्त्रक महालेखा परीक्षक उसकी सहायता करते हैं। द्वितीय चरण में, बजट की संसदीय स्वीकृति प्राप्त की जाती है, जहाँ बजट प्रस्तुतीकरण से लेकर धन विधेयक की स्वीकृति लेखानुदान माँगों को पास करना, विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक की स्वीकृति ली जाती है। तृतीय चरण में, बजट का क्रियान्वयन है, जिसके अन्तर्गत वित्त के एकत्रीकरण, संरक्षण, वितरण लेखा एवं अंकेक्षण और प्रतिवेदन की प्रक्रिया समाहित है। बजट निर्माण प्रक्रिया का अन्तिम चरण उसका विधायी नियन्त्रण है, जो संसदीय एवं विभागीय समितियों एवं नियत्रक-महालेखा परीक्षक के द्वारा पूर्ण किया जाता है।

4.6 शब्दावली

पूँजी व्यय- यह अर्थव्यवस्था में भौतिक रूपी परिसम्पत्तियों के निर्माण के लिए किया लाने वाला व्यय है। जैसे- भूमि, मशीन, भवन आदि।

राजस्व व्यय- यह अर्थव्यवस्था में सरकारी विभागों में सामान्य कार्यों पर किया जाने वाला व्यय है, जिसके द्वारा किसी भौतिक परिसम्पत्ति का निर्माण नहीं होता है। जैसे-वेतन, दैनिक खर्च आदि।

पूँजी प्राप्तियां- ये सरकार द्वारा जनता से लिये गये ऋण हैं, जिन्हें बाजार ऋण कहते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक या विदेशी संस्थानों से लिये गये ऋण आदि।

वित्त विधेयक- वित्त विधेयक में आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के करारोपण प्रस्तावों को प्रस्तुत किया जाता है। जिसका स्वीकृति संसद से आवश्यक होती है।

धन विधेयक- संविधान के अनुच्छेद- 110(1) में उल्लिखित किसी विषय से सम्बन्धित होता है, जो वित्त विधेयक तो होता है। इसका संबंध विशेषतया कराधान, ऋणादान अथवा व्यय से होता है। वित्त विधेयक की धन विधेयक के रूप में प्रमाणित लोक सभा अध्यक्ष द्वारा होती है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 112, **2.** 1अप्रैल से 31 मार्च, **3.** 31 मार्च

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुन्दरम, के0पी0, (1990), भारतीय लोक वित्त एवं वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।
2. भट्टाचार्य, माहित, (2000), लोक प्रशासन के नए आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3. कौर, इन्द्रजीत, (2000), लोक प्रशासन, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
4. अवस्थी, ए0पी0,(2000), वित्त प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
5. फाड़िया, बी0एल0, (2010), भारतीय लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लाल, जी0 एस0, (1982), भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच0 पी0 कपूर, नई दिल्ली।
2. मुसग्रेव एण्ड मुसग्रेव, (1990), लोक वित्तः सिद्धान्त एवं व्यवहार, मैग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।
3. थावराज, एम0 जे0 के0, (1982), भारत का वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्तमान कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में वित्तीय प्रबन्ध क्यों महत्वपूर्ण हो गया है?
2. भारत में व्यय के आधार पर बजट के कितने भाग होते है? स्पष्ट कीजिए।
3. बजट क्रियान्वयन प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 5 सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण- विधायी, कार्यकारिणी एवं न्यायिक

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 सार्वजनिक व्यय का अर्थ

5.3 वित्तीय नियंत्रण का उद्देश्य

5.4 लोक प्रशासन एवं दायित्व

5.5 नियंत्रण के अभिकरण

5.6 सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण

5.6.1 बजट: अर्थ और उद्देश्य

5.6.2 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

5.6.3 भारत में कैग (CAG) की भूमिका

5.7 वित्तीय समितियाँ

5.7.1 सार्वजनिक लेखा समिति

5.7.2 आकलन समिति

5.8 अन्य संसदीय समितियाँ

5.9 सार्वजनिक व्यय पर कार्यकारिणी नियंत्रण

5.9.1 व्यय पर विभागीय नियंत्रण

5.9.2 व्यय पर वित्त मंत्रालय का नियंत्रण

5.10 व्यय पर न्यायिक नियंत्रण

5.11 सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण: समालोचना

5.12 सारांश

5.13 शब्दावली

5.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.17 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

किसी जनतंत्रीय कल्याणकारी राज्य में धन का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जनता से है। शासन तो इस धन का अभिरक्षक(Custodian) है। सार्वजनिक धन सार्वधिक हित के लिए व्यय हो शासन इसका प्रबन्ध करता है। सार्वजनिक व्यय विवेकशीलता, बुद्धिमत्ता, निष्ठा, निपुणता से तथा निश्चिता उद्देश्य के लिए विधिक नियामों के अनुसार व्यय हो, यह देखना शासन का उत्तर दायित्व है। शासन का अर्थ है, विधायिका कार्यपालिका तथा न्यायपालिका और इन तीनों संस्थानों की जिम्मेदारी है कि वह सार्वजनिक व्यय पर प्रभावशाली नियंत्रण रखें। ऐसे नियंत्रणों की प्रक्रिया बजट से आरम्भ होती है। बजट पास होने के बाद जब अनुदान के व्यय का चरण आरम्भ होता है तो नियंत्रण सम्बन्धी अनेक अभिकरण सामने आते हैं। इन में नियत्रक महालेखा परीक्षक, संसद की वित्तीय समितियाँ, कार्यपालिका से सम्बन्धित विभाग तथा वित्त मंत्रालय, न्यायपालिका, खोजी एजेंसियाँ- सी0बी0आई0 तथा सी0बी0सी0 इत्यादि आते हैं। इस इकाई में सार्वजनिक व्यय पर इन सब उपकरणों का अध्ययन किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक व्यय का अर्थ तथा वित्तीय नियत्रण का उद्देश्य समझ सकेंगे।
- सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण के अभिकरणों की जानकारी लेंगे।
- बजट का अर्थ तथा 'कैग' के अधिकारों और भूमिका से परिचित होंगे।
- विधायनी नियंत्रण के लिए संसदीय वित्तीय समितियों की भूमिका को समझ सकेंगे।

- सार्वजनिक व्यय पर कार्यकारिणी नियंत्रण के परिप्रेक्ष में विभागीय नियंत्रण तथा वित्त मत्रांलय के नियंत्रण के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- सार्वजनिक व्यय पर न्यायपालिका कैसे नियंत्रण रखती है, यह जान पायेंगे।

5.2 सार्वजनिक व्यय का अर्थ (Meaning of Public Expenditure)

शरीर की रक्त धमनियों का काम शरीर में रक्त प्रवाह को बनाये रखना होता है ताकि शरीर जीवित रह सके। राज्य में यही कार्य धन का है जो विभिन्न अभिकरणों (एजेन्सीज) के द्वारा राज्य सावयवी रूपी यांत्रिकी को संचालित रखता है। आधुनिक राज्यों का स्वरूप कल्याणकारी होता है। जनहित राज्य का अन्तिम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सरकारें जो धन व्यय करती हैं वह सार्वजनिक व्यय होता है। व्यय के लिए धन को विभिन्न स्रोतों के माध्यम से जुटाना शासन् का पहला काम है। यह ठीक उसी तरह है जिस तरह गाड़ी को चलाने के लिए पहले ईंधन का प्रबन्ध करना होता है। धन के जुटाने को 'आय'(Revenue) और धन के व्यय करने को खर्च(Expenditure) कहते हैं। यहीं से सार्वजनिक व्यय की अवधारणा सामने आती है। अर्थात वह धन को सरकार सर्वजन कल्याण पर खर्च करती है सार्वजनिक व्यय कहलाया जाता है।

लोकतंत्र में चाहे राजनीतिक व्यवस्था अध्यक्षात्मक हो या संसदात्मक, धन के जुटाने और उसके व्यय करने के पीछे जनता की परोक्ष सहमति होना जरूरी है। इस सहमति का माध्यम है राज्य की संसद (Parliament) तैयार शुदा बजट संसद में जनप्रतिनिधि बहस और सोच विचार के बाद स्वीकार करते है। राष्ट्रपति की मोहर लगते ही यह बजट वैधानिक हो जाता है। इसके साथ ही आरम्भ होता है बजट के अनुसार योजनाओं के क्रियान्वयन का काम।

5.3 वित्तीय नियंत्रण का उद्देश्य (The Purpose of Financial Control)

मनुष्य अपने स्वभाव से लोभी और दुष्ट है। और जब उसको सत्ता, अधिकार और शक्ति प्राप्त हो जाती है तो उसकी दुष्टता और अधिक उग्र हो जाती है। इस सत्य को कौटिल्य और मैक्यावेली ने स्वीकार किया है। मार्क्स की नौकरशाही की विचारधारा तो पूरी तरह नौकरशाहों की दुष्टता के इर्द-गिर्द घूमती हुई नजर आती है। लगभग सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने, विशेष रूप से मैक्स वेबर, रिग्स तथा डाउन्स ने तो जोर देकर लिखा है कि नौकरशाहों या

अधिकारियों का प्रशासकीय रूप निर्वैयक्तिक (Impersonal) है। सार्वजनिक धन उनका निजी धन नहीं है। यह धन जनता का है और इस की आय और व्यय के पीछे जनता की सहमति या असहमति है। नौकरशाह, अधिकारी, उनके मातहत कर्मचारी और इन सबसे बढ़कर सत्ताधारी राजनेता और उनसे सम्बन्धित सम्बन्धी और मित्रगण, यह सब एक ऐसा झुण्ड हैं जो लोभ और स्वार्थ से वशीभूत होकर सार्वजनिक हित को निजि हित में बदल देते हैं। यहीं से आरंभ होता है भ्रष्टाचार का चक्र जिसकी तकनीकें हैं विलम्ब, उदासीनता, दम्य और पक्षपाती (Nepotism) रवय्या। नतीजे के तौर पर योजनायें चरमरा जाती हैं और विकास रुक जाता है। भारत इस भयावाह दृश्य का सबसे बड़ा नमूना है। इन सारी प्रशासनिक बुराईयों को रोकने के लिए सबसे बड़ा और प्रभावशाली उपाय है वित्तीय नियंत्रण।

5.4 लोक प्रशासन और दायित्व (Accountability of Public Administration)

हाल के वर्षों में, पूरे विश्व में, सरकारी क्रिया-कलापों का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ है जिसे अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने ''सरकारीकरण''(Governmentalization) की संज्ञा दी है। इसके परिणाम स्वरूप नौकरशाही मजबूत हुई है जिसे शक्ति, अधिकार और संख्या के सन्दर्भ में ''नौकरशाहीकरण'' (bureaucratization) का नाम दिया गया है। प्रशासकीय परिप्रेक्ष में ऐसा होना अपरिहार्य है। शासन के विविध, बहुप्रयोजनात्मक तथा जटिल कार्य तभी प्रभावशाही ढंग से पूरे किये जा सकते हैं जब अधिकारियों या प्रशासकों को पर्याप्त सत्ता तथा विवेकशीलता प्रदान की जाये। एक लंगड़ी, आयोग्य, कमजोर तथा उदासीन नौकरशाही आधुनिक परिस्थितियों में सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं कर सकती। लेकिन यहाँ इस कहावत को भी याद रखना होगा कि 'शक्ति व्यक्ति को भ्रष्ट करती है तथा पूर्ण शक्ति उसे पूर्णतया भ्रष्ट बना देती है।'(Power corrupts man and absolute power corrupts him absolutely) सार यह है कि शक्ति या सत्ता का विकृत प्रभाव पड़ना अनिवार्य है तथा शक्ति की सीमा तथा भ्रष्टाचार की सीमा में गहरा सम्बन्ध है। इसका अर्थ यह है कि अगर लोकतंत्र के अस्तित्व को बनाये रखना है तो लोक प्रशासन में शक्ति के साथ संयम (Power with restraint) के सिद्धान्त को अपनाना होगा। आधुनिक हालात में यह कैसे होगा यह एक बड़ी असमंजस की बात है।

अतः ऐसी स्थिति में जरूरत महसूस होती है नियंत्रण के कुछ ऐसे उपकरणों की जो सत्ता और शक्ति के दुरुपयोग को रोक सकें या कम से कम कर सकें।

5.5 नियंत्रण के अभिकरण (Agencies of Control)

वित्तीय या सार्वजनिक नियंत्रण पर बहस से पूर्व यह समझना जरूरी है कि सरकारी मशनरी का प्रत्येक पहलू प्रशासनिक दृष्टि से उतना ही महत्वपूर्ण है जितना शासन का वित्तीय पहलू इसलिए वित्तीय नियंत्रण से पहले वृहत प्रशासनिक यांत्रिकी पर नजर रखना जरूरी है। नीतियाँ, नियम, सिद्धान्त, कानून, कार्यपद्धति और इन सबका क्रियान्वयन और निष्पादन यह सब व्यक्ति (अधिकारी, मातहत कर्मचारी के विशिष्ट स्वभाव के आगे आत्म सम्पर्ण कर देते हैं विशेष रूप से उन देशों में जहाँ राजनेता मानसिक रूप से स्वार्थी और सनकी होते हैं। लेकिन लोकतंत्र में इस विषम स्थिति पर नियंत्रण रखा जा सकता है। विशेष रूप से वहाँ जहाँ राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति का पृथक्करण (अर्थात व्यवस्थापिका, कार्यकापालिका तथा न्यायपालिका का एक दूसरे से प्रथक होना) होता है, जैसा भारत में है। शासन के यह तीनों अंग स्वतंत्र रूप से एक दूसरे पर और सम्पूर्ण प्रशासन पर नियंत्रण रख सकते हैं। इसलिए यहाँ सारांश में विधायनी नियंत्रण, ओमबड्समैन (Ombudsman) तथा जन या लोकप्रिय नियंत्रण पर सामान्य रूप से संक्षिप्त बहत होना जरूरी है।

1. विधायनी या व्यवस्थापिका (Legislative) जनता का प्रतिनिधित्व करती है। शासन बनाम प्रशासन का इसके प्रति उत्तर दायी होना जरूरी है। यह कानूनों और वृहत राष्ट्रीय नीतियों को बनाती है और शासकीय अथवा सार्वजनिक नियोजनों के लिए धन स्वीकृत करती है और इस लिए लोक प्रशासन को निर्देशन देना, उसका निरीक्षण करना और उस पर नियंत्रण रखना इसका उत्तर दायित्व है। प्रसिद्ध प्रशासनिक चिन्तक विलोबी इस प्रकार के विधायनी नियंत्रण को प्रशासनिक स्वास्थ्य के लिए एक अनिवार्य शर्त मानता है।
2. कार्यकारिणी नियंत्रण (Executive Control) का अपना महत्व है। वास्तव में संसदीय व्यवस्था में व्यवस्थापिका का प्रशासन पर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता है। यह नियंत्रण मुख्य कार्यपालक की कैबनिट के माध्यम से होता है। कैबनिट कार्यपालिका तथा अन्य प्रशसनिक अभिकरणों (Agencies) के शिखर पर होती है और इनके काम-काज के लिए उत्तर दायी होती है। कैबनिट, वास्तव में, कानूनी, संवैधानिक तथा राजनीतिक तौर पर व्यवस्थापिका (संसद) के प्रति उत्तर दायी होती है। लेकिन यह बाहरी नियंत्रण

है। कैबनिट द्वारा वास्तविक नियंत्रण आन्तरिक होता है। निर्देशन, नियमन, निरीक्षण, परामर्श और दण्डात्मक कृत्य यह सब आन्तरिक नियंत्रण के सकारात्मक उपकरण हैं।

3. न्यायिक नियंत्रण (Judicial Control) चाहे जिस क्षेत्र में हो, वास्तव में, यह लोकतंत्र का सर्वोत्तम प्रतिरक्षक माना जाता है। जनकल्याण के परिप्रेक्ष में आधुनिक भारतीय राज्य एक विशालकाय तिमिंगल या विशालकाय काल्पनिक समुन्द्री जन्तु (Leviathan) बन गया है। असीम और अपरिभाषित सत्ता (शक्तियाँ) और विवेक शक्ति (Discretion) की खुली छूट ने कानून, संविधान, नैतिकता सब को कूड़ेदान में डाल दिया है- विशेषण रूप से धन और स्वतंत्रता के सम्बन्ध में। यहाँ प्रायः जनता असहाय नजर आती है। यदि आशा की कोई एक किरण बचती है तो वह है न्यायपालिका, यही एक ऐसी प्रभावशाली, सक्रिय और पक्षपात रहित संस्था है जो प्रशासन की स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता, अनैतिकता और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाती है।

   यहाँ वास्तविक विषय यह है कि किस सीमा तक व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण करके जन नीतियों, आकांक्षाओं और नैतिक मूल्यों की सुरक्षा करती हैं। अतः आगे विस्तार से सार्वजनिक व्यय पर विधायनी, कार्यकारिणी तथा न्यायिक नियंत्रण की प्रकृति, उसके उपकरणों और तकनीकों की चर्चा की जायेगी।

5.6 सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण (Legislative Control over Expedition)

सार्वजिक आय और व्यय (Revenue and Expenditure) एक दूसरे के साथ जुड़े रहते है। प्रशासनिक तथा राजनीतिक स्तर पर इन दोनों मदों का दुरुपयोग निजि हित के लिए सम्भव है बल्कि होता रहता है। भारत में यह समस्या एक कैंसर का रूप ले चुकी है। नतीजे के तौर पर पूरा प्रशासन तंत्र, सम्पूर्ण राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था तथा सामाजिक संरचना लकवा ग्रस्त लगती है। इस रोग से निपटने के लिए सार्वजनिक व्यय के संदर्भ में विधायनी नियंत्रण एक प्रभावशाली संवैधानिक यांत्रिकी (Mechanism) सिद्ध होता है। एस0आर0 माहेश्वरी ने अपनी पुस्तक ''Indian Administration'' में लिखा है, ''बजट की प्रक्रिया का यह पहला काम है कि वह संसद की दायित्व सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करे, क्योंकि हमारे लोकतंत्र में सार्वजनिक धन जुटाने तथा उसके व्यय

की स्वीकृति की अन्तिम सत्ता केवल संसद के पास होती है। खजाने पर पूरा नियंत्रण संसद का अचुनौतीपूर्ण अधिकार है। उसकी स्वीकृति के बिना न तो कर लगाए जा सकते हैं और न धन व्यय किया जा सकता है।''

भारत में व्यय पर नियंत्रण का अर्थ है लोक सभा का नियंत्रण जो जनता का प्रतिनिधित्व करती है और उसके प्रति उत्तर दायी है। लोक सभा वित्तीय नियंत्रण दो तरह से करती है। पहला बजटीय नियंत्रण (Budgetary Control) जो बजट पास होने के बाद आरम्भ होता है, तथा दूसरा परा-बजटीय नियंत्रण (Post-Budgetary Control) जो बजट पास होने के बाद आरम्भ होता है। अतः बजट, अर्थात आय और व्यय का वित्तीय लेखा-जोखा सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण का पहला प्रभावशाली उपकरण है। यहाँ यह याद रखना होगा कि सार्वजनिक नजरिए से आय के अधिक व्यय का महत्व होता है। इसलिए लोक सभा में जब बजट अपनी उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया से गुजरता है तो लोक सभा का उद्देश्य व्यय पर नियंत्रण रखना होता है, क्योंकि यह व्यय जनहित के लिए है और इसकी प्रकृति सार्वजनिक है। सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण के लिए संवैधानिक दृष्टि से वित्तीय समितियों (Financial Committees) की स्थापना की गई है। इस तरह व्यय पर नियंत्रण के दो महत्वपूर्ण उपकरण हैं- बजट तथा वित्तीय समितियाँ। वित्तीय समितियां चार प्रकार की हैं- सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee), आकलन समिति (Estimate Committee), सार्वजनिक उपक्रमों पर समिति (Committee on Public Undertakings) तथा अन्य संसदीय समितियाँ।

5.6.1 बजट: अर्थ एवं उद्देश्य (Budget: Meaning and Objective)

बजट अर्थात वित्तीय वर्ष की आय-व्यय का व्योरा विधायनी नियंत्रण का पहला चरण है। संक्षेप में बजट द्वारा सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण के पाँच चरण होते हैं-

1. शासन के विभिन्न विभागों तथा अभिकरणों द्वारा तैयार वित्त मंत्री द्वारा बजट को पहले लोक सभा के पटल पर रखना।
2. सांसदों द्वारा बजट के विभिन्न पहलुओं ओर बिन्दुओं पर सामान्य चर्चा करना और प्रस्तावित नीतियों और योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए प्रस्तावित अनुदानों की समीक्षा करना और यह देखना कि अनुदान प्रस्तावित उद्देश्य के लिए खर्च होगा तो कैसे और किस तरह।
3. विभागों से सम्बन्धित मंत्री मांगे गये अनुदान के औचित्य को देखना या समझना।

4. विवेकशीलता के आधार पर उसको स्वीकारना या घटाना अथवा निरस्त करना। ऐसा सांसद 'कट मोंशस' (Cut Motions) के माध्यम से प्रशासकीय कमियों, वित्तीय अनियमित्ताओं तथा शिकायतों की ओर ध्यान आकृषित करने के लिए करते हैं। 'कट मोशस' या कट प्रस्ताव सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण का सबसे अधिक प्रभावशाली उपकरण है।
5. इसके अतिरिक्त व्यय पर नियंत्रण के लिए लोक सभा खाते पर मतदान (Vote on account), साख पर मतदान (Vote on credit), पूरकमांगें (Supplementary demands) तथा पूरक अनुदान (Supplementary grants) इत्यादि का संसद प्रयोग करती है।

विधायनी नियंत्रण का वास्तविक क्रियान्वयन बजट स्वीकृत होने के बाद आरम्भ होता है। और यहीं पर सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण की अवधारणा साकार होती नजर आती है। अब संसद को यह देखना होता है कि संसद ने जिन नीतियों, मदों तथा लक्ष्यों के लिए बजट स्वीकृत किया है वास्तव में उनका निष्पादन संसद के प्रयोजन या उसकी नियत के अनुसार उसी दिशा में हो रहा है या नहीं। ऐसा संसद अनेक अभिकरणों के माध्यम से करती है।

सार्वजनिक व्यय पर बजट स्वीकृत होने के बाद विधायनी नियंत्रण दो दिशाओं में होता है। प्रथम, सार्वजनिक व्यय के लिए अनुदानों को छानबीन के बाद स्वीकार करके। दूसरा, ऐसा अश्वस्त होकर कि उसके द्वारा स्वीकृत अनुदानों का व्यय कानूनी, तार्किक, नियमित, निष्ठापूर्ण तथा प्रभावशाली ढंग से हो रहा है। स्वीकृत अनुदानों का व्यय निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हो यह देखना भी संसद का काम है। संसद ऐसा नियंत्रण दो अभिकरणों के माध्यम से करती है- पहला, कम्पटरोलर एण्ड आडिटर जनरल अर्थात् CAG (Comptroller and Auditor-General) या नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक और दूसरी वित्तीय समितियाँ।

5.6.2 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General)

कैग (CAG) एक संवैधानिक व्यक्ति है जो संसद की परिधि से बाहर है और उसकी स्वतंत्र और स्वायत हैसियत है। संविधान के अनुच्छेद-148 के अनुसार, कैग का अखिल भारतीय चरित्र है और यह केन्द्र एवं राज्यों की वित्तीय व्यवस्था को नियंत्रित करता है। अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में मान्टफोर्ड सुधारों (1920-21) के तहत कैग

अस्तित्व में आया। समय समय पर इसके अधिकार और शक्तियों में परिवर्तन आता गया। लेकिन वास्तव में इसका स्वरूप और चरित्र 1935 के अधिनियम ने तैय किया है।

महालेखा परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है और उसकी हैसियत सर्वोच्च न्यायालय के जज के समान होती है। राष्ट्रपति उसको अपनी मर्जी से पदच्युत नहीं कर सकते। उसको पद से हटाने का अधिकार संसद के दोनों सदनों को है। कैग के चार कार्य या अधिकार हैं-

1. संघीय सरकार, राज्य सरकारों तथा राज्य क्षेत्रों की सरकारों के खातों का लेखा परीक्षण या आडित करना;
2. संघीय और राज्य सरकारों के आकस्मिक धन (Contingency Funds) और सार्वजनिक खातों (Public Accounts) का आडिट करना और सब प्रकार के व्यय पर रिपोर्ट देना;
3. संघ या राज्य विभागों से सम्बन्धित समस्त व्यापारिक, उत्पादकीय लाभ और घाटे के बारे में आडिट करना तथा रिपोर्ट देना; तथा
4. उन तमाम संघों, सरकारी कम्पनियों, समूहों, नगर महापालिकायों के ऐसे व्यय खातों की जाँच (Audit) करना जिनको सरकारी अनुदान मिला हो। कैग को यह अधिकार है कि वह तमाम बहीखातों, भण्डारों, कार्यालयों, खजानों या कोषागारों इत्यादि से सम्बन्धित खातों की छानबीन करके प्रत्येक वर्ष राष्ट्रपति को रिपोर्ट सौंपे ताकि राष्ट्रपति या राज्यपाल रिपोर्ट को सांसद के समक्ष प्रस्तुत करें।

5.6.3 भारत में कैग (CAG) की भूमिका (Role of the CAG in India)

लेखा परीक्षण (Audit) सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियंत्रण का एक अनिवार्य भाग है। सर्वोच्च आडिट अधिकारी की हैसियत से कैग का यह कर्त्तव्य है कि वह संविधान और संसदीय विद्यायन की मर्यादा को वित्तीय प्रशासन के सम्बनध में बनाये रखे। वह मुख्य आडिटर है और केन्द्रीय या राज्य सरकारों के आन्तिरिक या बाहरी समस्त आय और व्यय का लेखा परीक्षण उसकी जिम्मेदारी है। वह यह निश्चित करता है कि खातों में जो धन दिखाया गया है तथा जिसका भुगतान किया गया है क्या वह उस सेवा या उद्देश्य के लिए जिनके लिए उनका आवंटन किया गया था, वैधानिक रूप से मुहय्या कराया गया था। प्रसिद्ध महालेखा परीक्षक अशोक चान्दा के अनुसार, ‘‘उसका (CAG) का काम मात्र यही नहीं है, कि वह यह सुनिश्चित करे कि ससंद द्वारा स्वीकृत धन बिना

पूरक मत पारित हुए अधिक व्यय हुआ है, अथवा व्यय नियमानुसार हुआ है या नहीं, बल्कि उसको संसद की ओर से स्वयं को संतुष्ट करना पड़ेगा कि व्यय करने में 'बुद्धिमानी, ईमानदारी और मितव्ययीता बर्ती गई है।'' अशोक चान्दा के इस नये नजरिए के कारण ही एक दूसरे महालेखा परीक्षक टी0एन0 चतुर्वेदी ने देश के प्रसिद्ध बोफोर्स सौदे में अनियमिताओं को उजागर करके एक राजनीतिक भूचाल ला दिया। ऐसे अनेक घोटालों में कैग की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

कैग की एक महत्वपूर्ण भूमिका कोयला घोटाले में जिसे 'कोल गेट स्कैम' का नाम दिया है, उल्लेखनीय है। यह स्कैम यू0पी0ए0 शासन काल में 2012 में घटित हुआ। यह घोटाला तब सामने आया जब नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने सरकार की इस बात के लिए आलोचना की कि उसने 194 कोयले के ब्लाकों को सार्वजनिक और निजी उद्यमियों को अपने उद्योगों में इस्तेमाल के लिए सारे नियमों को तोड़कर (बिना नीलामी किये) सस्ते दामों में बेच दिया। ऐसा 2004 तथा 2009 के मध्य किया गया। कैग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, ''खजाने को भारी नुकसान उठाना पड़ा जबकि सार्वजनिक और निजी कम्पनियों के लिए धन की वर्षा हो गई।'' कैग की अन्तिम रिपोर्ट के अनुसार मनमाने तरीके से कोयले ब्लाकों के आवंटन के कारण खजाने को 1.86/- लाख करोड़ का नुकसान उठाना पड़ा। कैग प्रत्येक वर्ष इस तरह के अनेक घोटालों से पर्दा हटाता है। कुछ जनता की नजर में नहीं आते हैं, लेकिन कुछ ऐसे स्कैम है जिन्हेंने देश, शासन और शासकीय दल को हिलाकर रख दिया है। इनमें से कुछ इस प्रकार है-

- 2जी स्पेक्ट्रम स्कैम- 2008, हानि 1.76/- लाख करोड़
- वक्फ बोर्ड लैण्ड स्कैम- 2012, हानि 1.5-2/- लाख करोड़
- कामनवेल्थ गेम स्कैम- 2010, हानि 70,000/- करोड़
- सत्यम स्कैम- 2009, हानि 14,000/- करोड़
- बोफोर्स स्कैम- 1980-90, हानि100 से 200/- करोड़
- चारा घोटाला- 1990, हानि 1,000/- करोड़
- हवाला स्कैन्डल 1990-91, हानि 100/- करोड़

इन घोटालों से यह सिद्ध होता है कि भारत घोटालों का देश है, जहाँ सार्वजनिक धन पानी की तरह बहाया जाता है केवल निजी हित के लिए। कोयला घोटाले के सम्बन्ध में कैग की रिपोर्ट का यदि ध्यान से अध्ययन किया तो कैग के सम्बन्ध में एक बात यह भी सिद्ध होती है कि वह अपनी रिपोर्ट में राजनीतिक हितों का ध्यान अधिक रखता है सार्वजनिक हितों का कम। उसकी रिपोर्ट कहती है: ''कोयले के ब्लॉकों का आवटंन अधिक निपुणता से किया जा सकता था और सरकार और अधिक लाभ कमा सकती थी।'' यहाँ कैग ने कहीं भी यह नहीं कहा कि कोयला आवंटन से सम्बन्धित सारी प्रक्रिया भ्रष्टाचार का कारण बनी। लेकिन जब विरोधी दलों की ओर से दबाव डाला गया तब सी0बी0आई ने आयकर विभाग सेन्ट्रल विजिलेंस कमीशन (CVC) सब ने (CAG+CBI+IT+CVC) मिलकर घोटाले में भ्रष्टाचार के पहलू की भूमिका को जानने में सफलता हासिल की। सी0बी0आई0 ने 14 व्यक्तियों और कम्पनियों के विरूद्ध आपराधिक मामला देर्ज कराया। संसद की एक स्टैन्डिंग कमेटी ने सुझाव दिया कि 1993 से लेकर 2008 तक कोयले के तमाम आवटनों को गैर-कानूनी मानकर रद्द किया जायें तथा एन0डी0ए0 तथा यू0पी0ए0 सरकारों को कटघरे में खड़ा किया जाए।

5.7 वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)

मान्टफोर्ड सुधारों के बाद 1919 अधिनियम के तहत शासन ने दो समितियों की स्थापना वित्त पर नियंत्रण के लिए की उनमे पहली 'स्टैन्डिंग फाइनान्स कमेटी' थी तो दूसरी 'सेन्ट्रल पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी' बजूद में आई। यह दोनों ही समितियाँ व्यय की समीक्षा के अतिरिक्त परामर्शदाता की जिम्मेदारी भी निभाती थीं। स्वतंत्रता के बाद इन्हीं दो समितियों के आधार पर दो नई समितियों की स्थापना की गई। इनमें पहली सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) है और दूसरी आकलन समिति (Estimate Committee) है। इन दो समितियों के अतिरिक्त तीसरी सार्वजनिक उपक्रमों पर समिति (Committee on Public Undertakings) और अन्य संसदीय समितियाँ है। यहाँ संक्षेप में उक्त सभी समितियों की चर्चा की जायेगी।

5.7.1 सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee)

सार्वजनिक लेखा समिति की नियुक्ति सर्वप्रथम 1922 में की गई थी। तब में और आज की समिति में अन्तर यह है कि पहले इसमें अधिकारी होते थे लेकिन अब केवल सांसद इसके सदस्य होते हैं। अब इस समिति में 22 सदस्य हैं, 15 लोकसभा से तथा 07 राज्य सभा से। यह एक वर्ष के लिए चुने जाते हैं लेकिन इनको दूसरा वर्ष भी मिल

सकता है। इनका चयन अनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त से होता है। 1966-67 तक इस समिति का अध्यक्ष शासकीय दल से होता था, लेकिन उसके बाद से विरोधी दल का सदस्य स्पीकर द्वारा नामित किया जाता है। अनुच्छेद- 308 के अनुसार इस समिति के निम्नलिखित कार्य और कर्त्तव्य हैं-

1. उन खातों की छानबीन करना, जिनको संसद ने सरकारी व्यय के लिए पारित किया है। (इसके अतिरिक्त वे तमाम खाते भी जिन पर संसद ने खर्चों के लिए अपनी स्वीकृति दी है) ऐसा लेखा समिति आडिटर जनरल की रिपोर्ट के आधार पर करती है। इस सन्दर्भ में वह यह देखती है कि खातों में जो धन दिखाया गया है उसका विधिक रूप से उस उद्देश्य के लिए जिसके लिए वह स्वीकृत किया गया है, खर्च हुआ या नहीं। व्यय का सम्बन्ध उस विभाग से है जिसके लिए वह जारी किया गया है तथा व्यय निमानुसार है या नहीं।
2. उन खातों के व्योरों (Statement) की जाँच करना, जिनका सम्बन्ध राज्य की कार्पोरेशंस, व्यापारिक और औद्योगिक योजनाओं इत्यादि से है। यहाँ समिति को आय और व्यय के अतिरिक्त लाभ और हानि से सम्बन्धित व्योरे की भी जाँच करना होती है। यह सब कुछ भी आडिटर जनरल (CAG) की रिपोर्ट के तहत् देखा जाता है।
3. स्वायत्त और अर्धस्वायत निगमों, समूहों, संगठनों से सम्बन्धित आय और व्यय के ब्यौरे की जाँच करना। यह जाँच-पड़ताल भी कैग (CAG) की रिपोर्ट के आधार पर होती है।
4. उन मामलों पर जहाँ राष्ट्रपति ने आडिट को अनिवार्य माना है, कैग की रिपोर्ट पर विचार करना।
5. यह देखना कि क्या धन किसी मद या सेवा पर वित्तीय वर्ष में उस से अधिक व्यय हुआ है, जितना कि सदन ने उस उद्देश्य के लिए स्वीकृत किया था। यदि व्यय अधिक हुआ है तो क्या और किन परिस्थितियों में समिति को स्वतंत्रता है कि वह अपनी जाँच के आधार पर ऐसी सिफारिशें करें, जिन्हें वह उचित समझती है। सार्वजनिक लेखा समिति का उद्देश्य व्यय से सम्बन्धित विवेकशीलता, दूरदर्शिता, मितव्ययीता, औचित्य और बुद्धिमत्ता की जाँच करना होता है।

सारांश में, सार्वजनिक लेखा समिति को कैग की रिपोर्ट का परीक्षण करना होता है। कैग प्रति वर्ष अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है, जिसे राष्ट्रपति अध्ययन के बाद लोक सभा के सामने रखते हैं और लोक सभा इस

रिपोर्ट को सार्वजनिक लेखा समिति को समीक्षा और परिक्षण के लिए सौंप देती है। समिति आडिटर जनरल की सहायता से रिपोर्ट की बारीकी से छानबीन करती है और अनेक बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण मांगती है। वास्तव में, समिति की विधिवत बैठक से पहले महालेखागार या कैग समिति के सदस्यों से अपनी रिपोर्ट पर विस्तार से चर्चा करता है। समिति विभिन्न विभागों से सम्बन्धित उप-समितियाँ नियुक्त कर सकती है। विभागों अथवा अन्य अभिकरणों से सम्बन्धित अधिकारी अपने विभागों के खातों के बारे में सदस्यों को स्पष्टीकरण देते हैं। समिति की समीक्षा तथा जाँच-पड़ताल के परिणाम से समिति का अध्यक्ष समय समय पर संसद को अवगत कराता रहता है। समिति के सुझावों और सिफारिशों को शासन स्वीकार कर लेता है। रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि समिति वित्त मंत्रालय को भेजती है जो विभिन्न मंत्रालयों और विभागों पर समिति की सिफारिशों के क्रियान्वयन के लिए दबाव बनाता है।

5.7.2 आकलन समिति (Estimate Committee)

सन् 1921 में स्टेन्डिंग फाइनान्स कमेटी की स्थापना की गई थी। स्वतंत्रता के बाद 1950 में जॉन मेथाई, वित्त मंत्री भारत सरकार की सिफारिश पर आकलन समिति की स्थापना की गई। सार्वजनिक लेखा समिति के समान आकलन समिति का भी कोई संवैधानिक या विधिक आधार नहीं है। 1956 में इसके सदस्यों की संख्या तीस कर दी गई। इसके सदस्य लोक सभा द्वारा अपने ही सांसदों के मध्य से अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने जाते हैं। मंत्री इस समिति के सदस्य नहीं हो सकते। समिति का अध्यक्ष स्पीकर द्वारा नियुक्त होता है।

जैसा कि लिखा जा चुका है सार्वजनिक लेखा समिति का काम संसद के द्वारा स्वीकृत अनुदानों के व्यय की मर्यादा या उसके औचित्य और निरन्तरता का परीक्षण (Audit) करना होता है। वित्त पर संसदीय नियंत्रण को अन्जाम तक पहुँचाने के लिए जरूरी है एक ऐसी संस्था जो बजट में सम्मिलित अनुमानों या आकलनों (Estimates) की संवीक्षा (Scrutiny) करके व्यय में मितव्ययीता लाने के लिए तथा उसे उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए सकारात्मक सुझाव दें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सन् 1950 में आकलन समिति की स्थापना की गई। इस समिति के विशेष कार्यों में जो बातें सम्मिलित हैं, वे हैं-

1. मितव्ययता, संगठनात्मक सुधार, निपुणता अथवा प्रशासनिक सुधार जो अनुमानों की नीति के अनुरूप हों, (इस बारें में) रिपोर्ट तैयार करना।

2. प्रशासन में निपुणता और मितव्ययीता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों के लिए सुझाव देना।
3. यह देखना कि अनुमानों के अनुसार धन सीमाओं के भीतर मोहय्या कराया गया है।
4. जिस रूप में अनुमान संसद में प्रस्तुत किये जायें, उनका सुझाव देना।

आकलन समिति केवल उन्हीं अनुमानित व्ययों का परीक्षण करती है। जिनके परीक्षण को वह उचित समझती है या फिर उन विषयों की छानबीन करती है, जिसका निर्देशन लोक सभा या स्पीकर देता है। संक्षेप में इस समिति का काम भी सार्वजनिक व्यय की तार्किकता पर नजर रखना है। यह समिति विभागीय मंत्रियों से सम्पर्क बनाये रखती है, उनसे स्पष्टीकरण मांग सकती है, योजनाओं का मौके पर जाकर निरीक्षण कर सकती है और अपने अध्ययन के आधार पर रिपोर्ट तैयार करती है, जिसको तथ्यात्मक सत्यापन के लिए सम्बन्धित मंत्रालयों को भेजा जाता है। समिति के बहुमत के निर्णय को स्वीकार किया जाता है। अंत में इस समिति की रिपोर्ट सदन को सौंप दी जाती है। अधिकांशतः इस रिपोर्ट पर सदन में कोई बहस नहीं होती है और इसकी सिफारिशों को उचित महत्व दिया जाता है।

जहाँ तक समिति के क्षेत्राधिकार का प्रश्न है, मई 1959 में आकलन समिति का उद्-घाटन करते हुए लोक सभा के स्पीकर ने कहा था, ''समिति के मौलिक उद्देश्य हैं व्यय में मितव्ययीता, प्रशासन में निपुणता और आश्वस्त होना कि धन का सदुपयोग हुआ है, लेकिन यदि गहन परीक्षण के बाद यह पता लगता है कि किसी नीति के कारण धन की बर्बादी हुई है, तब समिति दोषों की ओर इशारा कर सकती है तथा ऐसी नीति को बदलने की सदन से सिफारिश कर सकती है।'' संक्षेप में समिति तीन प्रकार की सिफारिशें करती है- मितव्ययीता हासिल करने के सुझाव, आकलन प्रस्तुत के लिए निर्देश तथा संगठन में सुधार।

5.8 अन्य संसदीय समितियां (Other Parliamentary Committees)

सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण के उपकरणों के रूप में सार्वजनिक लेखा समिति तथा आकलन समिति के अतिरिक्त 'सार्वजनिक उपक्रमों से सम्बन्धित समिति' का भी अपना महत्व है। इस समिति की स्थापना 1965 में हुई और इसमें पंद्रह सदस्य होते हैं। इसके कार्य हैं-

- सार्वजनिक उपक्रमों की रिपोर्ट्स और खातों का परीक्षण करना,

- सार्वजनिक उपक्रमों पर नियंत्रक एवं महालेखाकार की रिपोर्टों का परीक्षण करना, तथा
- स्वायत्ता तथा निपुणता के सन्दर्भ में यह छान-बीन करना कि क्या सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबन्ध मजबूत व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार हो रहा है।

प्रशासन का और सार्वजनिक व्यय का आपस में गहरा सम्बन्ध है। सार्वजनिक धन का सदुपयोग हो, वह उद्देश्यपूर्ण हो, व्यय में मितव्ययीता हो, व्यय तार्किक हो, नीतियों का क्रियान्वयन जनहित में हो, यह सब प्रशासकों तथा प्रशासन पर निर्भर करता है। उदासीनता, विमुखता, निष्क्रियता, बेईमानी, लापरवाही ये सब दोष प्रशासन को लकवा ग्रस्त कर देते हैं, जिसका नतीजा होता है कि चारों ओर विलम्ब और अन्ततः वित्तीय वर्ष समाप्ति की सीमा पर धन पानी की तरह, जवाब देही से बचने के लिए, बहा दिया जाता है या बिना खर्च किये लौटा दिया जाता है। विकास की दृष्टि से यह दोनों स्थितियाँ भयावह हैं।

इस गम्भीर चुनौती को नजर में रखकर संसद ने अनेक अन्य संसदीय समितियों की समय-समय पर स्थापना की है। यह समितियाँ चार प्रकार की होती है-

1. वे समितियाँ जिनका सम्बन्ध संसद के दोनों सदनों के संगठन और शक्तियों से है। इन में नियमों से सम्बन्धित समिति (Committee on Rules), विशेषाधिकार समिति (Privileges Committee) तथा व्यापार परामर्शीय समिति (Business Advisory Committee) हैं।
2. वे समितियां जिनका सम्बन्ध वित्तीय व्यवस्था से है।
3. वे समितियाँ जो सदनों को उनके विधायनी कार्यों में मदद करती हैं, जैसे- चयन या प्रवर समितियाँ (Select Committees) तथा संयुक्त प्रवर समितियाँ (Joint Select Committees)। इन समितियों का सम्बन्ध दोनों सदनों से है, तथा
4. वे समितियाँ जो प्रशासन पर नियंत्रण करने में सहायता करती हैं। इनमें याचिकाओं से सम्बन्धित समिति, शासकीय वचनों से सम्बन्धित समितियाँ (Committees on Government Assurances), अधीन विधायन से सम्बन्धित समिति (Committee on Subordinate Legislation) तथा अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के कल्याण से सम्बन्धित समितियाँ। इन समितियों के अतिरिक्त अनेक परामर्शीय

समितियाँ (Consultative Committees) हैं, जो संसद के सदस्यों तथा मंत्रालय के मध्य विचार-विमर्श का एक मंच मोहय्या करती है।

संक्षेप में अन्य संसदीय समितियाँ प्रशासन को चुस्त दुरुस्त करने के लिए अस्तित्व में आई हैं, ताकि संसद द्वारा स्वीकृत व्यय पर प्रभावशाली नियत्रंण हो सके।

5.9 सार्वजनिक व्यय पर कार्यकारिणी नियंत्रण (Executive Control over Public Expenditure)

कार्यपालिका का दो मदों पर नियंत्रण होता है- व्यय पर तथा बजट पर। यह नियंत्रण आन्तरिक होता है, जबकि विधायनी नियंत्रण बाहरी होता है। कुछ विचारकों ने इस नियंत्रण को खड़ी रेखा (Vertical) या क्षितिजीय (Horizontal) रूप में माना है। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि यह आन्तरिक नियंत्रण है। भारत में वित्त मंत्रालय के द्वारा यह नियंत्रण होता है और इसे लेखा-परीक्षीय बजेटरी (Budgetary) नियंत्रण कहते हैं। वित्त मंत्रालय समस्त सार्वजनिक धन (Funds) का संरक्षक है। वह व्यय पर नियंत्रण रखता है व्यय को स्वीकृत करके, अनुदानों का निस्तारण करके और आन्तरिक आडिट करवाकर वित्त मंत्रालय व्यय पर नियंत्रण करता है। बजट पारित होने के बाद वित्त मंत्रालय व्यय करने वाले अभिकरणों को अनुदान वितरित करना आरम्भ कर देता है। नियंत्रण की यह प्रक्रिया अनेक स्तरों से होकर गुजरती है। यह स्तर है-

1. प्रत्येक कार्यकारिणी विभाग का प्रमुख उस विभाग का नियंत्रिक अधिकारी है, जिसको अनुदान दिया गया है।
2. नियंत्रिक अधिकारी भुगतान करने वाले अधिकारीयों को अनुदान प्रदान करते हैं। यह अधिकारी कार्यालयों के प्रमुख होते हैं।
3. धन व्यय करने से पूर्व प्रशासनिक मंत्रालय को बजटीय तथा प्रशासनिक स्वीकृति लेना जरुरी है।
4. कहीं-कहीं तकनीकी स्वीकृति भी अनिवार्य है।
5. व्यय किया जाने वाला स्वीकृत धन व्यय की तीन इकाईयों में विभक्त होता है- वेतन, प्रतिष्ठान, तथा आकस्मिक खर्चे। इन तीनों इकाईयों पर वित्तीय नियत्रंण रखना सरल होता है। सार्वजनिक खाते का कोई भी व्यय उस समय तक संभव नहीं है जब तक कि उसका प्रावधान बजट में न हो और सक्षम संस्था उसकी स्वीकृति न दे।

संक्षेप में बजेटरी नियंत्रण दो प्रकार का होता है- कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख द्वारा अपने विभाग पर नियंत्रण तथा वित्त मंत्रालय द्वारा तमाम विभागों पर नियंत्रण। संक्षेप में यह दोनों नियंत्रण इस इस तरह हैं-

5.9.1 व्यय पर विभागीय नियंत्रण (Departmental Control of Expenditure)

जिस प्रशासनिक मंत्रालय को अनुदान स्वीकृत किये जाते हैं उसकी व्यय पर नियंत्रण की पहली जिम्मेदारी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक विशिष्ट यांत्रिकी की व्यवस्था है, जिसके अनुसार विभिन्न स्तर के अधिकारी अपने उच्चतर अधिकारियों को तथा अन्ततः विभाग अध्यक्ष व्यय सम्बन्धी रिपोर्ट्स भेजते हैं। वित्त मंत्रालय ने विभागीय नियंत्रण के लिए विस्तृत कार्यविधि निर्धारित की है। संक्षेप में यह इस प्रकार है-

1. प्रत्येक भुगतान करने वाला अधिकारी एक विशेष रजिस्टर बनाता है, जिसमें उससे सम्बन्धित खाते के छोटे शीर्ष तथा उप-शीर्ष (Minor head and sub head) होते हैं। प्रत्येक माह के तीसरे दिन इस रजिस्टर में किये गये विवरण की एक प्रतिलिपि विभागीय अध्यक्ष या नियंत्रकीय अधिकारी को भेजी जाती है।
2. नियंत्रकीय अधिकारी भुगतान अधिकारी से प्राप्त वापसियों (Returns) का परीक्षण करता है और स्वयं को संतुष्ट करता है, यह ज्ञात करके कि-
    - खातों का वर्गीकरण सही दिखाया गया है,
    - प्रगतिशील व्यय की व्यवस्था की गई है,
    - व्यय अनुदान के अनुसार है,
    - वापसियां भुगतान अधिकारी द्वारा उचित ढंग से हस्ताक्षरित है,
    - यदि इनमें कोई त्रुटि है तो नियंत्रकीय अधिकारी इन त्रुटियों को सुधारने के लिए तुरन्त कदम उठाये, तथा
    - प्राप्त वापसियों के आधार पर नियंत्रकीय अधिकारी लेन-देन का एक व्यौरा (Statement) तैयार करता है और इसे विभाग प्रमुख को भेज देता है।

3. वापसियों के आधार पर जो उसे प्राप्त होती हैं, विभाग प्रमुख एक खाता तैयार करता है, जिसमें अनुदान प्राप्त धन के पूर्ण व्यय को दिखता है (गत माह का) और इसको महालेखाकर के कार्यालय को भेज देता है।

इस कार्यविधि से व्यय की सारी बारीकियाँ उभर कर सामने आ जाती हैं और व्यय पर आन्तरिक नियंत्रण प्रभावकारी हो जाता है।

5.9.2 व्यय पर वित्त मंत्रालय का नियंत्रण (Finance Ministry's Control over Expenditure)

किसी न किसी रूप में भारत में प्रत्येक व्यक्ति कर अदा करता है। करदाताओं के हित सुरक्षित रहें, यह तब संभव है जब व्यय करने वाले प्रशासनिक अभिकरणों पर वित्त मंत्रालय का नियंत्रण हो। वित्त मंत्रालय सार्वजनिक धन का संरक्षक होता है और उसके पास वित्तीय मामलों से सम्बन्धित नियंत्रण करने तथा समन्वय बैठाने की सम्पूर्ण शक्तियां हैं। वित्त मंत्रालय द्वारा सार्वजनिक व्यय तीन चरणों में नियत्रंण रखा जाता है, पहला- नीतियों और योजनाओं को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार करके, दूसरा- बजट में दिये गये अनुमानों के प्रावधानों को स्वीकार करके, तथा तीसरा- प्रशासनिक मंत्रालयों को व्यय करने की जो शक्तियाँ प्राप्त हैं उन्हें पहले से नियंत्रण है, जहाँ नित्य प्रतिदिन प्रशासनिक अभिकरण (agencies) नियंत्रण की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं। यहाँ नियंत्रण के तीन माध्यम या उपकरण हैं, अर्थात, क्रियाओं या कार्यकलापों के नियम, आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाताओं की एक व्यवस्था तथा आन्तरिक लेखा परीक्षण। क्रियाओं से सम्बन्धित नियम (Rules or codes) कुछ जटिल और विस्तृत हैं और यहाँ समझना या समझाना संभव नहीं है। लेकिन नियमों के बारें में कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिनको समझना जरूरी है-

1. बजट में स्वीकृत मदों के विरूद्ध न कोई आय (Revenue) प्राप्त की जा सकती है और न धन व्यय किया जा सकता है।
2. वित्त मंत्रालय की स्वीकृति के बिना भूमि, खदानों या वनों या जल का आवंटन नहीं किया जा सकता, ना उनका विक्रय किया जा सकता है और न पट्टे पर दिया जा सकता है।
3. वित्त मंत्रालय की स्वीकृति के बिना न तो सेवा पद बढ़ाये जा सकते हैं और ना वेतन या भत्ते (सरकारी कर्मचारियों के) बढ़ाए जा सकते हैं।

4. किसी भी वित्तीय पहलू पर वित्त मंत्रालय की स्वीकृति जरूरी है।
5. वित्तीय नियम के अनुसार कोई सरकारी नौकर सार्वजनिक खाते का एक पैसा तब तक नहीं खर्च कर सकता है, जब तक कि सक्षम अधिकारी से ऐसी अनुमति न मिली हो।
6. व्यय किया जाने वाला धन उस सीमा के भीतर हो, जिस की स्वीकृति संसद ने वित्तीय वर्ष (Current Year) के लिए दी है।
7. नियमों के माध्यम से नियंत्रण के अतिरिक्त वित्त मंत्रालय अपने अधिकारियों को प्रत्येक मंत्रालय (रेलवे तथा प्रतिरक्षा मंत्रालयों को छोड़कर) में संविक्षा के लिए भेजता है जो वहाँ जाँच-पड़ताल करके व्यय की वैधानिकता, शुद्धता, यथार्तता तथा औचित्य (ईमानदारी) को परखकर व्यय पर नियंत्रण रखता है।
8. वित्त मंत्रालय के अधिकारी विभिन्न विभागों के अधिकारियों को योजनाओं के वित्तीय पहलू से सम्बन्धित नतीजों के बारे में परामर्श देते हैं और अपने निष्कर्षों को वित्त मंत्रालय को सौंप देते हैं।
9. प्रत्येक मंत्रालय में सन् 1968 के बाद से अपने वित्तीय परामर्शदाताओं की व्यवस्था की गई है। वे अपने अध्ययन के आधार पर आन्तरिक तौर पर विभागीय प्रशासनिक अधिकारियों की वित्तीय नियंत्रण सम्बन्धी सहायता करते हैं। इस तरह परामर्शदाता अधिकारी दोहरी भूमिका निभाते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों को परामर्श देकर तथा वित्तीय मंत्रालय को गोपनीय रिपोर्ट प्रस्तुत करके।

इस तरह हम देखते हैं कि सार्वजनिक व्यय पर बाह्य नियंत्रण तो व्यवस्थापिका का होता है। लेकिन वह वैधानिक या संवैधानिक अथवा औपचारिक अधिक होता है, वास्तविक कम। 'लेकिन कार्यकारिणी द्वारा जिसमें विभागीय तथा वित्त मंत्रालय के नियंत्रण की भूमिका अहम होती हैं तथा जो शुद्ध रुप से आन्तरिक होता है, यथार्थ में वित्तीय नियंत्रण कहा जा सकता है। यह नियंत्रण तर्क संगत होता है, विधिक भी होता है और अनौपचारिक भी होता है। यह गैर- राजनीतिक होता है तथा शुद्ध रूप से वित्तीय होता है।

5.10 व्यय पर न्यायिक नियंत्रण (Judicial Control over Expenditure)

सार्वजनिक व्यय पर विधायनी नियंत्रण एवं कार्यकारिणी नियंत्रण वास्तव में वैधानिक, संवैधानिक तथा तकनीकी होते हैं। इनका आधार औपचारिकतावाद (Formalism) है। लेकिन वास्तविक नियंण होता है 'नैतिकता' के स्तर

पर जिसका केन्द्र व्यक्ति होता है। और भारत में यही समस्या है कि यदि तकनीकी स्तर पर सब कुछ ठीक-ठाक हैं तो नैतिक स्तर पर सब कुछ उल्टा है। इसलिए यहाँ आरम्भ होती है न्यायपालिका की भूमिका।

सैद्धान्तिक रूप से भारत एक कल्याणकारी राज्य है और इस शाब्दिक अवधारणा के नाम पर कार्यकारिणी और प्रशासनिक अभिकरणों के पास असीमित अपरिभाषि या दुष्परिभाषित सत्ता और विवेक की शक्ति है, और यह सच है कि अक्सर इस सत्ता का प्रयोग वैध, उचित तथा सूझ-बूझ से नहीं किया जाता है। एल0डी0व्हाइट ने इस सन्दर्भ में पाँच कमियों की ओर इशारा किया है: क्षेत्राधिकार का निश्चित न होना, कानून में त्रुटि, तथ्य-आकलन में त्रुटि, कार्यविधि में त्रुटियाँ तथा शासकीय विवेकाधीन छूट का दुरूपयोग। इन कमजोरियों का लाभ प्रशासक निजी हित के लिए उठा लेते हैं। राज्य सर्वशक्तिशाली बन जाता है और आम आदमी असहाय दिखता है। तब आशा की एक किरण न्यायपालिका के रूप में नजर आती हैं।

लोकतांत्रिक और विशेषरूप से विकासशील देशों में न्यायपालिका की मुख्य भूमिका सामाजिक और आर्थिक न्याय तथा लोक कल्याण के मध्य एक उचित संतुलन बनाए रखना होता है और दूसरी और व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा भी करना होती है। सामान्य रूप से न्यायपालिका कें पांच कार्य हैं-

1. कार्यकारणीय तथा प्रशासनिक अभिकरणों की स्वेच्छाचारिता तथा विवेक की शक्ति पर अंकुश लगाना,
2. नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता की सुरक्षा करना,
3. नागरिकों की शिकायतों को दूर कराने में मदद करना,
4. शासन तथा प्रशासन में भ्रष्टाचार पर लगाम लगाना, तथा
5. शासन अथवा प्रशासन के वे कार्य जो उनके क्षेत्राधिकार की सीमा से बाहर निकल जाते हैं, उनको निरस्त कर देना।

इन सभी कार्यों में यदि कहीं न कहीं 'धन' छिपा है तो उसे स्वतः व्यय या सार्वजनिक व्यय पर अंकुश माना जायेगा। लेकिन न्यायपालिका का चौथा कार्य, भ्रष्टाचार सम्बन्धी है जो वास्तव में सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है।

प्रायः न्यायपालिका प्रत्यक्ष रूप से व्यवस्थापिका या कार्यपालिका के समान प्रशासन पर वित्तीय या गैर-वित्तीय मामलों पर नियंत्रण नहीं रखती है। 'न्यायपालिका के संज्ञान' में का सिद्धान्त किसी नागरिक या संस्था को यह

अधिकार देता है कि वह निजी अथवा सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए न्यायपालिका से हस्तक्षेप की अपील करे। अर्थात व्यय अथवा सार्वजनिक व्यय के दुरुपयोग सम्बन्धी याचिका सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल करके सर्वोच्च न्यायालय के संज्ञान में मुद्दा लाया जाता है और सर्वोच्च न्यायालय उस सन्दर्भ में तुरन्त कार्यवाही करता है। इस सन्दर्भ में एक तत्कालीन उदाहरण बिहार में हुए चारे घोटाले से है।

08 मई 2017 को सर्वोच्च न्यायालय ने चारा घोटाले से सम्बन्धित झारखण्ड हाईकोर्ट के फैसले को रद्द करते हुए राजद प्रमुख लालू प्रसाद यादव के खिलाफ चारा घोटाले से जुड़े सभी चारों मामलों में आपराधिक साजिश का केस चलाने की अनुमति दे दी। चारा घोटाला तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद के कार्यकाल में पशुपालन विभाग द्वारा विभिन्न जिलों से फर्जी तरीके से 900 करोड़ रूपये की निकासी से जुड़ा है। लालू के अलावा बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्र व राज्य के पूर्व सचिव सजल चक्रवर्ती समेत कुल 45 लोग आरोपी हैं। बिहार के पशुपालन विभाग में यह गोरख धंधा 1985 से चल रहा था, जिसकी ओर सब से पहले तत्कालीन नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) टी0एन0 चतुर्वेदी ने उंगली उठाई थी। 2013 में चारा घोटाले के एक मामले में दोषी ठहराये जाने के बाद (झारखण्ड उच्च न्यायलय द्वारा) न केवल लालू प्रसाद की लोक सभा की सदस्यता चली गई, बल्कि उनके चुनाव लड़ने पर रोक भी लग गई। इसी तरह कोयला घोटाले में न्यायपालिका के नियंत्रण की दृष्टि से लोक सेवकों को दोषी पाया गया तथा कड़ी सजा सुनाई गई। दिल्ली न्यायालय ने 19 मई, 2017 के अपने फैसले में पहली बार तीन लोक सेवकों- पूर्व कायेला सचिव एन0सी0 गुप्ता, वर्तमान संयुक्त सचिव के0 एस0 करोफा और पूर्व कोल निदेशक के0 एस0 समारिया को ग्यारह में से आठ मामलों में दोषी पाया तथा कड़े कारावास की सजा सुनाई। इसे पूर्व अदालत ने जे0आई0पी0एल0 के दो निदेशक, आर0एस0 रूंगटा तथा आर0 सी0 रंगुटा को इसी मामले में चार वर्ष के कारावास का दण्ड दिया। इसी तरह राठी स्टील के तीन बड़े अधिकारियों उदति राठी (सी0ई0ओ0), परदीप राठी (एम0डी0) तथा कुशाल अग्रवाल (ए0जी0एम0) को कोयला मामले में दण्ड दिया गया। इन सब पर इल्जाम है कि तत्कालीन प्रधानमंत्री (जिनके पास कोयला मंत्रालय का प्रभार था) मनमोहन सिंह को धोखा दिया, गुमराह किया और गलत सूचनाऐं दीं। सर्वोच्च न्याय के ताजा फैसले से जो बाते उभर कर आती हैं, वे इस प्रकार हैं-

- राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तर पर सार्वजनिक धन का दुरुपयोग होता है और राजनीतिक तथा प्रशासनिक स्तर पर ही आरोपी को बचाने का प्रयास होता है।
- यद्यपि कैग की भूमिका बहुत अहम है और ज्यादातर वही दोषों, त्रुटियों या दुरुपयोगों को उजागर करता है, लेकिन वह आरोपियों को सजा नहीं दिलवाता है।
- जब बात राजनीतिक स्तर पर उछलती है तो सी0बी0आई की सहायता ली जाती है, जो आमतौर पर शासन दल के एक उपकरण के रूप में काम करती है।
- यहाँ न्यायपालिका सामने आती है। चारा घोटाले के सन्दर्भ में चार मामले थे। हाईकोर्ट में लालू यादव को एक मामले में दोषी ठहराते हुए शेष मामलों में उनके विरुद्ध सुनवाई पर रोक लगा दी थी।
- लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द कर दिया और निचली अदालत को लालू व अन्य के खिलाफ कार्यवाही 09 माह में पूरी करने के निर्देश दिये।

किस तरह न्यायपालिका सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण रखने में सहायता करती है यह चारा घोटाले पर सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से स्पष्ट हो जाता है। ऐसे ही अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने शासन और शासन से जुड़ी एजेंसियों (सी0बी0आई0 इत्यादि) को उनकी उदासीनता, अकर्मठता, निष्क्रियता तथा पक्षपात के लिए फटकार लगाई है और खिंचाई की है।

5.11 सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण: समालोचना (Control over Public Expenditure: Evaluation)

सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण की प्रक्रिया बजट पारित होने के साथ आरम्भ हो जाती है। लोक सभा में बजट का पहले प्रस्तुत होना और तमाम वैधानिक प्रक्रियाओं से गुजरना यह सिद्ध करता है कि जनता परोक्ष रूप से आय और व्यय की प्रक्रिया में शामिल है। अर्थात न उसकी मर्जी के बिना आय (विशेष रूप से करों के रूप में) प्राप्त की जा सकती है और न बिना उसकी स्वीकृति के धन व्यय किया जा सकता है। यह लोकतंत्र के तकाजे के अनुसार है। लेकिन यदि जन इच्छाओं के विपरीत आय और व्यय के दुरुपयोग की सम्भावना होती है तो नियंत्रण की यांत्रिकी सामने आती है-

नियंत्रक एवं महापरीक्षक इस यांत्रिकी की पहली कड़ी है। भारत में अब तक जितने घोटालों का भंडाफोड़ हुआ है, इनके पीछे कैग की भूमिका अहम रही है। उसने यह सिद्ध किया है कि आडिट सार्वजनिक व्यय पर संसदीय नियंत्रण का एक सर्वाधिक प्रभावशाली उपकरण है। 1976 से पूर्व कैग का काम लेखा परीक्षण भी था और लेखाकरण भी लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब कैग केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों की आय से होने वाले व्यय का केवल लेखा परीक्षण करता है। इस परीक्षण में वह यह भी देखता है आय और व्यय के मामलों में बुद्धिमत्ता, निष्ठा और मितव्ययीता का प्रयोग किया गया है या नहीं। इन शब्दों ने कैग को एक नया आयाम दिया है। लेकिन कैग की शक्तियों में कुछ कमियां भी हैं। वह प्राप्तियों (Receipts) का लेखा परीक्षण नहीं कर सकता। आयकर, धन या सम्पत्ति कर, व्यय कर, भू-क्षेत्र कर या चुंगी, आबकारी एवं भूमि आय, इसके आडिट के दायरे से बाहर हैं। (लेकिन 1993 के बाद से आयकर की वापसियां कैग के आडिट में शामिल हो गई हैं)। कुछ और भी ऐसे मद हैं जिन में संचित अथवा समेकित धन (Consolidated Fund) भी है जिन पर कैग को कोई अधिकार नहीं है। डी0 डी0 बसु कैग की भूमिका को आज भी सीमित मानते हैं।

नियंत्रण के सन्दर्भ में तीसरी भूमिका आती है- संसदीय समितियों की, जिनमें वित्त की दृष्टि से सार्वजनिक लेखा समिति, आकलन समिति और सार्वजनिक उपक्रमों से सम्बन्धित कमेटी आती हैं। जैसा कि लिखा जा चुका है कि संसद का काम न केवल सार्वजनिक व्यय के लिए अनुदान स्वीकृत करना है, बल्कि यह भी अश्वसस्त करना है कि यह अनुदान विधिक, निष्ठापूर्वक, निपुण तथ निरन्तरता बनाए रखते हुए खर्च हुए हैं। यह भी देखना है कि धन व्यय का उद्देश्य तथा तरीका संसद की मर्जी के अनुरूप है या नहीं इन बातों पर कैग अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है और रिपोर्ट की रौशनी में संसदीय समितियाँ रिपोर्ट के निष्कर्षों, सुझावों तथा चेतावनियों पर गौर करती है। सकारात्मक बात यह है कि समितियों द्वारा परीक्षण, अध्ययन और उसकी राय गैर-राजनीतिक होती है और इसलिए सम्मानीय होती है। यह कमेटियाँ अपनी रिपोर्ट संसद को प्रस्तुत कर देती हैं, जहाँ से अगली कार्यवाही आरम्भ होती है। यहाँ समितियों की कार्यशैली के बारे में दो बातें सामने आई हैं। पहली, यह कि समितियों का काम खातों का मात्र पोस्टमार्टम करना है। दूसरे, प्रत्येक वर्ष यह समितियाँ अधिकारियों की लापरवाही, उदासीनता, और दोषों को दोहरा कर फाईलों को बंद कर देती हैं।

वास्तव में व्यय के दुरुपयोग या सदुपयोग के लिए कार्यपालिका अथवा प्रशासन ही जिम्मेदार है, इसलिए कार्यकारिणी का सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण होना अनिवार्य है। यहाँ बाहरी एवं आन्तरिक दोनों प्रकार का नियंत्रण होता है। इस भूमिका को वित्त मंत्रालय तथा अन्य शासकीय विभाग निभाते हैं। वित्त मंत्रालय सभी सार्वजनिक धन (Funds) का अभ्रिक्षक (Custodian) है। वही वास्तव में सार्वजनिक व्यय को नियंत्रित रखता है। प्रत्येक कार्यकारिणी विभाग का प्रमुख निंयत्रिक अधिकारी है और अपने विभाग के व्यय के लिए जिम्मेदार है। नियंत्रण का यह सिलसिला प्रशासनिक कार्यालयों तक चलता है। 1955 में ''आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता'' (Internal Financial Adviser) की नियुक्ति की प्रत्येक मंत्रालय में व्यवस्था की गई। व्यय पर नियंत्रण की दृष्टि से यह एक प्रभावशाली कदम था। यद्यपि प्रशासनिक अधिकारियों ने इस व्यवस्था से स्वयं को असहज महसूस किया, लेकिन एम0जे0के0 थवराज ने आन्तरिक परामर्शदाता को प्रशासनिक मशीनरी में चिकनाई (Greasing) करने या उसे चिकना करने वला बताया है। यहाँ यह मानना पड़ेगा कि यह प्रशासनिक अधिकारी ही है जो व्यय या धन के दुरुपयोग को रोक भी सकता है और उस पर पर्दा भी डाल सकता है, जैसा कि अधिकांश घोटालों में होता आया है।

जहाँ तक वित्त अथवा सार्वजनिक व्यय पर न्यायपालिका के नियंत्रण का सवाल है, यहाँ दो बातें सामने आती हैं। वह तभी सक्रिय होती है, जब उसके संज्ञान में बात डाली जाती है या उस से अनुरोध किया जाता है। वह सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण की यांत्रिकी का भाग नहीं है। सार्वजनिक हित को संरक्षित रखना अथवा संवैधानिक संरक्षण प्रदान करना उसका दायित्व है। अनेक चर्चित घोटाओं में सर्वोच्च न्यायालय ने एक प्रक्रिया के तहत अपना दायित्व निभाया है। पहले कैग सार्वजनिक व्यय के दुरुपयोग से पर्दा उठाता है, संसदीय समितियाँ जाँच करती हैं, संसद में बहत होती है, विभागी स्तर पर जिम्मेदारी तैय की जाती है, अधिकांशतः केस सी0बी0आई0 को सौंपा जाता है, सी0बाई0आई0 अपनी जाँच के आधार पर आरोप तैय करती है, आरोपी के दण्ड देने का अधिकार न्यायपालिका का है। अब यहाँ यदि आरोपी को दण्ड नहीं मिलता है (निचली अदालत में), तो बात सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचती है जो ऐतिहासिक फैसले सुनाता है।

5.12 सारांश

सार्वजनिक व्यय पर विधायनी, कार्यकारिणी तथा न्यायिक नियंत्रण के सन्दर्भ में सारांश में जो तथ्य है वे इस प्रकार हैं-

1. जनतंत्रीय कल्याणकारी राज्य में जनता सर्वोच्च होती है और सार्वजनिक व्यय का अर्थ है जनता के कल्याण पर व्यय।
2. वित्तीय नियंत्रण का उद्देश्य है संसद द्वारा स्वीकृत धन या, अनुदानों को तर्कशीलता, बुद्धिमत्ता, निष्ठा तथा मितव्ययता के साथ उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यय करना जिसके लिए वह स्वीकृत हुआ है।
3. अनेक दशकों से नौकरशाही मजबूत हुई है और राजनीति का अपराधीकरण हुआ है। दोनों संस्थाओं ने मिलकर जन-कल्याण को नुकसान पहुँचाया है। सार्वजनिक व्यय का दुरुपयोग हुआ है।
4. इसलिए सार्वजनिक व्यय पर तथा वे अभिकरण जो इस व्यय का दुरुपयोग करते हैं, नियंत्रण करना जरूरी हो जाता है।
5. सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण के तीन अभिकरण हैं- कार्यपालिका, संसद तथा न्याय पालिका।
6. नियंत्रण की यह प्रक्रिया बजट प्रक्रिया से आरम्भ होकर बजट के पारित होने तथा स्वीकृति तक चलती है।
7. बजट अर्थात आय, व्यय या अनुदानों की स्वीकृति के बाद अनुदानों को व्यय के लिए सम्बन्धित विभागों को प्रदान किया जाता है।
8. यहाँ नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की भूमिका आरम्भ होती है जो अनुदानों के तार्किक और उद्देश्यपूर्ण व्यय की संविक्षा करता है तथा अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट का अध्ययन करके इसे संसद को सौंप देते हैं।
9. संसद (लोक सभा) अपनी वित्तीय समितियों के माध्यम से विधिक बिन्दुओं का परीक्षण करती है। समितियाँ अपनी रिपोर्ट से संसद को अवगत कराती है। ऐसा प्रत्येक वर्ष होता है।
10. कार्यकारिणी नियंत्रण, आन्तरिक भी होता है और बाहरी भी। बजटरी नियंत्रण का सम्बन्ध वित्त मंत्रालय से है और यह आन्तरिक नियंत्रक का माध्यम है।

11. कार्यकारिणी सम्बन्धी नियंत्रण दो माध्यमों के द्वारा होता है- व्यय पर विभागीय नियंत्रण तथा व्यय पर वित्त मंत्रालय द्वारा नियंत्रण।
12. न्यायपालिका, वित्त अथवा व्यय पर नियंत्रण आरोपियों को दण्ड देकर, वंचित करके या प्रताड़ना करके करती है। लेकिन वह ऐसा तब करती है जब सक्षम एजेन्सी या व्यक्ति द्वारा आरोपियों के विरूद्ध सबूतों के साथ केस दायर किया जाता है।
13. सच यह है कि व्यय पर नियंत्रण व्यक्तियों, प्रशासकों, अधिकारियों, नौकरशाहों, और राजनेताओं की नियत के इर्द-गिर्द घूमता नजर आता है। यदि नियत कुण्ठित है तो सारी शासकीय मशीनरी निष्क्रय होगी।

अभ्यास प्रश्न-

1. नियंत्रक महालेखा परीक्षक अपनी रिपोर्ट सर्वप्रथम किसे प्रस्तुत करता है?
2. सार्वजनिक लेखा समिति के कुल कितने सदस्य हैं?
3. बजट का क्या अर्थ है?
4. सर्वोच्च न्यायालय का 8 मई 2017 का फैसला किस घोटाले से सम्बन्धित है?
5. बोफोर्स तोप सौदे का पर्दाफाश किस नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने किया?
6. कोयला घोटाला किस के शासन काल में हुआ?

5.13 शब्दावली

बजट- आय-व्यय का वार्षिक ब्यौरा, कैग(CAG)- कम्पट्रोलर एवं आडिटर जनरल अथवा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, कोल गेट- मीडिया द्वारा कोयले घोटाले को दिया गया नाम। इसे 'मदर ऑफ स्कैम्स' भी कहा गया, डिस्क्रिप्शन(Discretion)- अधिकारियों को प्रदान की गई वे शक्तियां जहाँ वे अपने विवेक का प्रयोग करते हैं, विवेक प्रयोग की छूट, एस्टीमेट(Estimate)- आकलन करना, अनुमान लगाना।

5.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. राष्ट्रपति को, **2.** 22 सदस्य, **3.** आय-व्यय का ब्योरा, **4.** चारा घोटाले से, **5.** टी0एन0 चतुर्वेदी, **6.** एन0डी0ए0 और यू0पी0ए0 दोनों के शासन काल में

5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5. D. Sharan : Indian National Movement, Agra.

6. Awasthi & Awasthi : Indian Administration, Agra.

7. Sharma, M.P. : Public Administration in Theory and Practice, Allahabad.

8. The Administrative Reforms Commission Report on Finance Accounts and Audit, New Delhi, Govt. of Indian, 1968.

9. Banerjee, A.C. Constitutional History of India, vol. 1.2, 1858-1919, Calcutta.

5.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5. White, L.D. : Introduction to the Study of Public Administration, New York, 1955.

6. Asok Chanda : Indian Administration, London.

7. News-Paper Reporting on Fodder Scame, 9 May 2017.

8. Coal is Gold : The coalgate Scam : A Research Paper by Dr. Pooja Das Gupta and Puskar Kumarawat, Commerce & Management Perspective, March-April, 2016. see also on www.gifre.org.

5.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्तीय नियंत्रण को स्पष्ट करते हुए नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की भूमिका पर चर्चा करें।

2. सार्वजनिक लेखा समिति और आकलन समिति के कार्य क्या हैं?

3. सार्वजनिक व्यय पर विभागीय नियंत्रण कैसे होता है?

4. सार्वजनिक व्यय पर वित्त मंत्रालय द्वारा नियंत्रण कैसे होता है?

5. न्यायपालिका की वित्तीय नियंत्रण पर क्या भूमिका है?

इकाई- 6 लोक लेखा समिति, अनुमान समिति, लोक उपक्रम समिति, विभागीय समितियाँ, नियंत्रक महालेखा परीक्षक

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 लोक लेखा समिति

6.2.1 लोक लेखा समिति के कार्य

6.2.2 लोक लेखा समिति के नियन्त्रण का स्वरूप

6.2.3 लोक लेखा समिति का मूल्यांकन

6.3 अनुमान समिति

6.3.1 अनुमान समिति के कार्य

6.3.2 अनुमान समिति के द्वारा मंत्रालयों से मांगी जाने वाली सूचनाऐं

6.3.3 अनुमान समिति की कमियां

6.4 लोक उपक्रम समिति

6.5 विभागीय समितियाँ

6.6 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक

6.6.1 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति

6.6.2 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कर्तव्य

6.6.3 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की पद एंव स्थिति का मूल्यांकन

6.7 सांराश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

भारत में लोक प्रशासन के वित्तीय प्रबन्ध व बजट निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित यह इकाई है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय प्रशासन क्या है? संघीय शासन एवं राज्य शासन क्या है?

'वित्त' प्रशासन का जीवन रक्त है, प्रशासन के प्रबन्ध में वित्त शरीर और उसकी छाया के रूप में जुड़े है। किसी भी संगठन, उद्योग, कार्यालय और उद्यम के क्रियान्वयन हेतु कर्मचारी और पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, जिसे केवल वित्त के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रशासकीय इंजन का ईधन वित्त है। प्रशासन का प्रबन्ध बिना उसके असम्भव है। भारत में लोककल्याणकारी और विकासात्मक राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के सामाजिक और विकासात्मक कार्यों में अप्रत्याशित वृद्धि बनी हुई है। जिस हेतु राजस्व एकत्रण, क्रियान्वयन एवं विधायी नियत्रंण की महत्ती आवश्यकता है, जो उपलब्ध वित्तीय स्रोतों के इष्टतम प्रयोग को बनाए रखे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में वित्तीय प्रबन्ध के आशय, तत्व, सिद्धान्त एवं बजट के माध्यम से उसके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र का विवेचन करेंगे। हम इसके साथ ही भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया का भी चरणबद्ध उल्लेख करेंगे।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वित्त पर संसदीय नियंत्रण को जान सकेंगे।
- बजट के क्रियान्वयन पर प्रशासनिक नियन्त्रण के पश्चात संसद द्वारा नियन्त्रण के औचित्य का वर्णन कर सकेंगे।
- लोकलेखा समिति के महत्व को समझ सकेंगे।
- अनुमान समिति निर्माण की प्रक्रिया और कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

6.2 लोक लेखा समिति

बजट के क्रियान्वयन पर कार्यपालिका और प्रशासनिक नियन्त्रण के पश्चात संसद द्वारा नियन्त्रण का औचित्य इस बात में निहित है कि संसद ही विनियोग विधेयक द्वारा कार्यपालिका को विभिन्न प्रयोजनों के लिए व्यय करने के लिए अनुमोदन प्रदान करती है। संसद उस शक्ति को सम्पन्न करने के लिए प्रश्न काल, काम रोको प्रस्ताव आदि संसदीय तकनीक का प्रयोग कर सकती है, परन्तु इस कार्य को अधिक सूक्ष्मता तथा कुशलता द्वारा लोकलेखा समिति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। जोकि लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन पर विचार करती है। संसद सदस्य वित्तीय स्वरूप के उतने जानकार नहीं होते, परन्तु नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक वित्तीय स्वरूप का विशेषज्ञ होता है, इस कारण इसके प्रतिवेदन का महत्व बढ़ जाता है। अतः एक लोकतन्त्रात्मक शासन पद्धति में उसके प्रतिवेदन के तदन्तर लोक-लेखा समिति द्वारा समीक्षा, विशिष्ट नियन्त्रण के साथ-साथ राजनीतिक नियन्त्रण को साकार करती है। संसद द्वारा नियन्त्रण के लिए समिति को अपनाने के निम्नलिखित कारण हैं- 1. संसद का विशाल आकार और सदस्यों की सामान्य पृष्ठभूमि के साथ वित्तीय मामलों में सुक्ष्मताओं की जानकारी का ना होना पाया जाना। अतः बड़े संसदीय स्वरूप में प्रतिवेदन पर चुने हुए सदस्यों की समिति द्वारा ही सूक्ष्मता एवं गहनता से जानकार सदस्यों द्वारा, जो वित्त मामलों के सम्बन्ध में ज्ञान एवं रूचि रखते हैं, परीक्षण किया जा सकता है। 2. राजनीति दल आधारित संसदीय व्यवस्था ऐसे कार्यों के लिए अकार्यकारी है, क्योंकि संसद में प्रत्येक विचार-विमर्श दलीय भावना को प्रकट करते हैं। अतः वित्तीय मामलों पर विचार-विमर्श स्वतन्त्र और निपक्ष हो जो कि समिति द्वारा बेहतर रूप से पूर्ण किया जाता है।

लोकलेखा समिति की अवधारणा ब्रिटिश संसदीय पद्धति की देन है। ब्रिटेन में यह सन् 1861 में अस्तित्व में आयी। इसके परिणाम स्वरूप सार्वजनिक विनियोजनों में नियोजित धन पर संसदीय नियन्त्रण ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि संसदीय नियन्त्रण में वृद्धि हुई। भारत में लोक लेखा समिति संसद की सबसे पुरानी और बहुत ही महत्वपूर्ण समिति है। सर्वप्रथम 1919 के भारत सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार 1921 में प्रथम लोकलेखा समिति की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य सरकारी लेखा की छानबीन करना तथा उसमें की गयी अनियमितता को सामने लाना था। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात ब्रिटिश प्रणाली से प्रभावित होकर अप्रैल, 1950 में लोकलेखा समिति की स्थापना की गयी। मोटे तौर पर स्वतन्त्र भारत में भी इस कमेटी का स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र वही है, जो ब्रिटिश भारत में गठित समिति के लिए प्रचलन में था। तथापि बदले परिप्रेक्ष्य में इसके स्वरूप में आवश्यक परिर्वतन भी किए गये हैं।

लोकलेखा समिति में सदस्यों की संख्या 22 होती है, जिसमें 15 लोक सभा से तथा 7 राज्य सभा से होते है। समिति में सदस्यों का निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत-पद्धति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है, जिसके द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों को संसद में अपनी दलीय शक्ति के अनुपात में ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है और जिसके द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों को संसद में अपनी दलीय संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। समिति का अध्यक्ष लोक सभा अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है। शुरूआत में सत्तादल के सदस्य की नियुक्ति लोकलेखा समिति में अध्यक्ष पद पर होती थी। परन्तु 1967 से विरोधी दल से अध्यक्ष बनाया जाने लगा है। यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष समिति का सदस्य चुना जाता है, तो वह ही समिति का अध्यक्ष होता है। एम0 आर0 मसानी विरोधी दल के प्रथम सदस्य थे, जो इस समिति के अध्यक्ष मनोनीत किए गये । समिति का कार्यकाल मई से अप्रैल तक एक वर्ष का होता है। अध्यक्ष एवं सदस्य का कार्यकाल एक वर्ष का होता है, जिनका पुर्ननिर्वाचन किया जा सकता है। भारत की लोक-लेखा समिति ब्रिटेन से दो तरह से भिन्न है, पहली- इसमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व दिया गया है, जबकि ब्रिटेन में लार्ड सभा (उच्च सदन) के सदस्य इसके सदस्य नहीं होते हैं। दूसरा- लोक लेखा के प्रतिवेदन लार्ड सभा में पटल नहीं रखे जाते, जबकि भारत में दोनों सदनों में प्रतिवेदन रखे जाते हैं।

6.2.1 लोकलेखा समिति के कार्य

लोकलेखा समिति का मुख्य कार्य सदन में प्रस्तुत किये गये नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का परीक्षण करने यह देखना है कि संसद द्वारा विनियोजित धन का कार्यपालिका के प्राधिकारियों द्वारा "माँगों के क्षेत्र के भीतर" व्यय हुआ है अथवा नहीं। इस वाक्यांश का भाव है-

- व्यय, संसद के विनियोजित धन से अधिक नहीं बढ़ना चाहिए।
- व्यय, उसी उद्देश्य के लिए किया गया हो, जिस उद्देश्य के लिए संसद ने उस पर मतदान किया है।
- व्यय, उन्हीं अधिकारियों द्वारा किया गया हो, जो वैधानिक रूप से व्यय के लिए सक्षम थे।
- कार्यपालिका ने एक अनुदान में बची हुई राशि दूसरी मद के लिए व्यय करके संसद की अवहेलना तो नहीं की है।
- अनुमोदित नीतियों तथा कार्यक्रमों तथा पुनर्विनियोजित अधिकृत व सक्षम अधिकारियों के द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार हुआ है या नहीं।
- सभी वित्तीय मामलों में नैतिकता के उच्चस्तरीय मानदण्डों को बनाये रखना।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त लोकलेखा समिति प्रत्येक ऐसे विषय की जाँच करती है, जिसमें वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि से अधिक व्यय किया गया है। ऐसे अतिव्ययों का आगामी वित्तीय वर्षों में नियमन किया जाए, उपरोक्त सिफारिशों को प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत करती है। जैसा कि कौल और शकधर कहते हैं, कि "समिति का कार्य व्यय की औपचारिकताओं के बाहर व्यय सम्बन्धी, विवके, वफादारी और मितव्ययिता सम्मत हो।" यह वित्तीय अनुशासन और सिद्धान्तों पर भी विचार-विमर्श करती है। समिति उन अनियमितताओं का भी परीक्षण कर सकती है, जो कि सार्वजनिक रूप से प्रकट हो जाए या जिनके सम्बन्ध में सरकार को अवगत कराया जाता है, चाहे ऐसे विषयों पर औपचारिक लेखा प्रतिवेदन प्रस्तुत न भी किया गया हो। लोक लेखा समिति वित्त के नियन्त्रण के कार्य को पूर्ण अवैयक्तिक रूप से सम्पन्न करती है। यह देखती है कि व्यवस्था कहाँ भंग हुई है, या नियन्त्रण उपायों को सुझाना जिससे भविष्य में अपव्यय और हानियों को रोका जा

सके। लोकलेखा समिति अपने कार्य को व्यक्ति विशेष पर टिप्पणी किए बगैर पूर्ण करती है, परन्तु समिति अपनी अनुषंशा के अनुरूप मंत्रालय और विभागों से कार्यवाही की अपेक्षा रखती है।

6.2.2 लोक लेखा समिति के नियन्त्रण का स्वरूप

लोक लेखा समिति द्वारा कार्यपालिका पर वित्तीय क्षेत्र में किए जाने वाले नियन्त्रण का स्वरूप निम्नवत है-

1. लोक लेखा समिति द्वारा कार्यपालिका के ऊपर नियन्त्रण, विशेषज्ञ नियन्त्रण के समान होता है। यह समिति विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञों की राय लेती है। इसके सदस्यों को संसदीय वित्तीय प्रक्रिया का अच्छा ज्ञान होता है। अतः ये सम्मिलित आधार पर सिफारिशें करते हैं और आवश्यक होने पर उपसमिति की नियुक्ति भी करते हैं।
2. लोकलेखा समिति का मुख्य उद्देश्य बजट के विनियोजन पर नियंत्रण करना है। यह धन के खर्च में की गयी अनियमितताओं को उद्-घाटित करती है और खर्च करने वाले को अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग करती है।
3. वित्त विभाग एवं नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के मध्य या अन्य विभागों एवं नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के मध्य विवाद होने पर समिति न्यायाधीश की भूमिका निभाती है, इसके उपरान्त समिति द्वारा लिए गये निर्णय भविष्य में सरकारी लेन-देन के सम्बन्ध में कानून की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।
4. समिति का गठन यद्यपि दलीय आधार पर दलों के अनुभवी एवं वरिष्ठ सदस्यों के रूप में किया जाता है, जो बाद मे गैर-दलीय स्वरूप धारण कर लेते हैं और मतऐक्य भाव से कार्य करते हैं।
5. समिति वित्तीय नियंत्रण के माध्यम से प्रशासनिक मंत्रालयों की प्रक्रियाओं व कार्यविधियों पर नियन्त्रण रखती है, जो भ्रष्ट अधिकारियों तथा कर्मचारियों के स्थानान्तरण, प्रतिनियुक्ति, पदच्युति तथा समय पूर्व सेवानिवृत्ति के विषयों को प्रभावित करता है। समिति का कार्य यद्यपि बाद में शुरू होता है, परन्तु इसकी छानबीन की प्रभावशीलता का डर अधिकारियों में बना रहता है।

लोक लेखा समिति की कार्यवाही का पूर्णरूपेण अभिलेख रखा जाता है। लेखों और लेखा प्रतिवेदनों के परीक्षण और समिति द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर समिति का सचिवालय प्रतिवेदन का प्रारूप बनाता है, जिसकी एक प्रति समिति के अध्यक्ष के अनुमोदन हेतु एवं एक नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के पास भेजी जाती है। अध्यक्ष की सहमति उपरान्त नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के साथ समिति की बैठक की जाती है, ताकि तथ्यों और अंको में

आवश्यक संशोधनों को किया जा सके। यद्यपि समिति दलीय भावना से परे कार्य करता है, परन्तु मतऐक्य न होने पर बहुमत से निर्णय लिया जाता है। मतों की संख्या बराबर हो जाए तो निर्णय के लिए समिति का अध्यक्ष निर्णायक मत देने का अधिकार रखता है। लोकलेखा समिति के प्रतिवेदन को उसके अध्यक्ष द्वारा लोक सभा में एवं अधिकृत सदस्य द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत किया जाता है। समिति के प्रतिवेदन को दोनों सदन बिना वाद-विवाद के स्वीकार कर लेते हैं। किसी मतभेद की स्थिति में सरकार समिति को कारणों सहित सूचित करती है।

6.2.3 लोक लेखा समिति का मूल्यांकन

लोकलेखा समिति की सिफारिशों को मानना सरकार के लिए अनिवार्य नहीं है, किन्तु सरकार समिति की अधिकांश सिफारिशों को लागू करने का प्रयास करती है। इस सन्दर्भ में आन्तरिक कार्य नियम 27 में कहा गया है कि "लोक सभा सचिवालय की लोकलेखा समिति शाखा में लोकलेखा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए विभिन्न मन्त्रालयों द्वारा उठाए गये अथवा सम्भावित कदमों का ब्यौरा हो.....तथा समिति की अगली बैठक के कम से कम सात दिन पूर्व सभी सदस्यों को वितरित करने की व्यवस्था करें।" समिति की कमियाँ या दुर्बलता निम्न रूप में प्रतिबिम्बित होती हैं-

1. समिति किसी व्यय के वाद को अस्वीकार नहीं कर सकती है, नीति के व्यापक प्रश्नों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता है।
2. समिति के विचार-विमर्श का क्षेत्र नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन है। अतः इसकी पूर्ण निर्भरता उसके प्रतिवेदन पर हो जाती है।
3. समिति की कार्यकुशलता में कमी का महत्वपूर्ण कारण वित्तीय लेन-देन के बहुत देर बाद उसके सम्बन्ध में प्रतिवेदन देना है। जो 'शव परीक्षा' के रूप में गड़े मुर्दे उखाड़ने की कोशिश करती है। कई बार उसके प्रतिवेदनों पर संसद में विस्तृत विचार नहीं किया जाता है और इसकी सिफारिशों को गंभीरता से न लेकर इन्हें केवल औपचारिकता मात्र मान लिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि लोक-लेखा समिति का कार्य तब शुरू होता है, जब सरकार बजट संबंधी धनराशि को वित्तीय वर्ष में पूरी तरह खर्च कर लेती है। अतः धन के खर्च होने के पश्चात लोक लेखासमिति द्वारा नियन्त्रण की उपयोगिता के प्रति सन्देह प्रकट किया जाता है। इसी कारण आलोचक कहते हैं कि यह व्यय-सम्मत त्रुटियों को

रोकने के बजाय की गयी त्रुटियों पर पुर्नविचार करके समय को नष्ट करना है। प्रो0 हीरेन मुकर्जी के शब्दों में, "समिति के प्रतिवेदनों का समाचार-पत्रों द्वारा व्यापक प्रचार किया जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि सरकार समिति के सुझावों व टिप्पणियों की उपेक्षा नहीं कर सकती। इसका यह प्रभाव होता है कि प्रशासन कोई गलत कार्य करने से घबराता है।" तथापि लोकलेखा समिति की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. जिन मामलों में धन का दुरूपयोग तथा दुर्विनियोजन किया गया है, उन मानलों को संसद तथा लोकलेखा समिति के ध्यान में लाना चाहिए।
2. वित्तीय लेन-देन की परीक्षा साथ-साथ कर लेना चाहिए एवं आवश्यक निर्देश दें, ताकि आगामी वर्षों में गलतियों की पुनरावृत्ति न हो।
3. समिति में सदस्यों की संख्या बढ़ानी चाहिए एवं वित्तीय क्षेत्र के अनुभव को वरीयता देनी चाहिए, साथ ही संसद को उसके प्रतिवेदनों पर गहन विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार हम कह सकते है कि लोकलेखा समिति ने संसदीय लोकतन्त्र बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसकी महत्ती भूमिका के सम्बन्ध में समिति की स्वर्ण जयन्ती पर तत्कालीन राष्ट्रपति ने ये वक्तव्य व्यक्त किया कि, "लोकलेखा समिति हमारे संसदीय जीवन के जीवंतकाल में अस्तित्व में आई। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर हमारी संसद और राज्य विधान सभाऐं, कार्यपालिका शक्ति और प्रक्रिया की संरक्षिका बन गयी है। लोकलेखा समिति को नागरिक सेवकों को बुलाने की शक्ति है, ताकि इस बात का आश्वासन प्राप्त हो सके कि सार्वजनिक धन का उचित प्रयोग हो रहा है। इस प्रक्रिया में पूछताछ के दौरान रहस्य के प्रकट होने का भय ही गलत कार्यों के सम्बन्ध में एक आश्वस्त निरोधक के रूप में कार्य करता है। इस कार्य के लिए समिति को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सांवैधानिक अभिकर्त्ता-नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक को सहायता एवं परामर्श मिलता रहता है। अतः निःसन्देह इस पृष्ठभूमि में हमारी संसद की लोकलेखा समिति का ऐसा इतिहास है, जिसके बारे में यह गौरवान्वित अनुभव कर सकती है।"

6.3 अनुमान (प्राक्कलन) समिति

संसद को यह शक्ति प्राप्त है, कि वह किसी माँग को स्वीकार करे या स्वीकार न करे या उसमें निश्चित रकम की कटौती कर दें। उसे संचित निधि पर भारित खर्चों के अनुमान का भी अधिकार है। यद्यपि अनुमानों पर वह दीर्घकालीन विचार-विमर्श करती है, परन्तु उसे एक व्यापक वित्तीय नियन्त्रण के लिए यह देखना भी आवश्यक है कि संसद में प्रस्तुत किए गये कार्यक्रमों व परियोजनाओं के लिए निर्धारित अनुदानों की मितव्ययता की दृष्टि से छानबीन की जाए। संसद के पास अनुमानों के तकनीकी पक्षों के रूप में छानबीन का ना तो समय है और ना ही शक्ति होती है। अतः इसके लिए संसद की एक ऐसी समिति का गठन किया जाता है, जो संसद के समक्ष प्रस्तुत अनुदान माँगों की विषयवार समीक्षा करती है तथा व्यय करने से पहले ही खर्च में मितव्ययिता लाने के सुझाव देती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विधायिका ने एक अन्य समिति का निमार्ण किया है, जिसे प्राक्कलन या अनुमान समिति कहते है। अनुमान समिति एक स्थायी वित्तीय समिति है। भारत में यद्यपि सन् 1937 में ही अनुमान समिति के गठन का माँग की गयी, परन्तु समिति के गठन को उस समय स्वीकार नहीं किया गया। उस समय वित्त विभाग के अर्न्तगत एक स्थायी वित्तीय समिति (1921) कार्य कर रही थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सन् 1950 में अनुमान समिति का गठन किया गया। समिति का गठन प्रतिवर्ष किया जाता है, प्रारम्भ में इसके 25 सदस्य रहते थे, अब इनकी संख्या 30 कर दी गयी है। जो सभी लोक सभा के सदस्य होते हैं। समिति के सदस्यों को राजनीतिक दलों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके, इसके लिए सदस्यों का चुनाव एकल संक्रमणीय मत से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा होता है। इसके अध्यक्ष की नियुक्ति लोक सभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष इसका सदस्य होता है, तो वह स्वतः ही इसका अध्यक्ष बन जाता है। मन्त्रीगण अनुमान समिति के सदस्य नहीं होते। सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है। अभिसमय के अनुसार उन्हें दो और कार्यवधियों के लिए चुना जाता है, ताकि समिति के कार्य में निरन्तरता और उनका अनुभव लिया जा सके। समिति का गठन मई माह में होता है, जो जुलाई माह से अपना कार्य शुरू कर देती है। समिति के सहायतार्थ उसका एक कार्यालय भी होता है।

अनुमान समिति सरकार की नीतियों से सम्बन्धित विषयों से सरोकार नहीं रखती है। इसका मुख्य उद्देश्य तो इस बात से संतुष्ट रहना होता है, कि निर्धारित नीति के अर्न्तगत अधिकतम मितव्ययिता के साथ न्यूनतम व्यय किया

जाए। यह सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं व परियोजनाओं को कार्यान्वित करते हुए व्यय में मितव्ययिता लाने के लिए रचनात्मक सुझाव देने वाली संस्था है। संसद के कार्य संचालन के लिए अपनाए गये प्रक्रिया नियमों के अनुसार अनुमान समिति के कार्यों में अक्टूबर 1956 में संशोधन कर काफी व्यापक कर दिया गया है। नवीन प्रावधानों के अनुसार समिति को यह प्रतिवेदन देना है कि, "सरकारी नीति संगतता के आधार पर तैयार किए गये अनुमानों में क्या मितव्ययिताएं, संगठनात्मक सुधार, कुशलता या प्रशासनिक सुधार लागू किए जा सकते हैं। प्रशासन में मितव्ययिता तथा कुशलता त्यागने के लिए क्या नीति विकल्प हो सकते हैं तथा यह जाँच करना कि किस हद तक नीति के अनुरूप तैयार किए गये अनुमानों के लिए मौद्रिक प्रावधान सही ढंग से किए गये हैं।"

6.3.1 अनुमान समिति के कार्य

अनुमान समिति के कार्यों को सार रूप में निम्नलिखित शीर्षों में व्यक्त कर सकते हैं-

1. सरकारी नीति के अनुरूप तैयार किए गये अनुमानों में मितव्ययिता लाने के लिए प्रशासनिक व संगठनात्मक सलाह देना।
2. प्रशासन में कार्यकुशलता व मितव्ययता लाने के लिए वैकल्पिक नियमों की सलाह देना।
3. अनुमानों में सन्निहित नीति के अनुरूप मौद्रिक प्रावधानों का औचित्य की परख करना।
4. संसद के सम्मुख बजट अनुमानों के प्रस्तुतीकरण का बेहतर ढंग विकसित करने के लिए सलाह देना।
5. सरकारी अधिकारियों की सुनवाई कर सकती है और एक ऐसी प्रश्नावली बना सकती है, जिनके प्रश्नों का उत्तर सम्बन्धी विभाग के प्रमुख को देना होता है।

समिति का गठन मई में किसी समय कर दिया जाता है। प्रतिवर्ष कुछ मन्त्रालयों को अपने विशिष्ट अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है और वह जुलाई से कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। मंत्रालयों के चुनाव के सन्दर्भ में 1958 में लोक सभा के अध्यक्ष का वक्तव्य है, कि "प्रत्येक लोक सभा के जीवन-काल में जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक मन्त्रालय के महत्वपूर्ण बजट अनुमानों की जाँच का एक दौर पूरा किया जाना चाहिए।" वह सालभर के लिए अनुमानों का चयन करके अपने कार्यों की योजना तैयार करती है। समिति अपने जाँच एवं अध्ययन हेतु प्रशासनिक स्रोत, प्रकाशित सामग्री, निजी संस्थाऐं, अध्ययन दल, मौखिक जानकारी और सरकारी तथा गैर-सरकारी गवाही के द्वारा सामग्री एकत्रित करती है। इस हेतु वह उप-समितियों का गठन करती है। जाँच के सन्दर्भ में समिति सरकारी

अधिकारियों को स्पष्टीकरण के लिए बुला सकती है। उन्हें प्रश्नावली भेजकर सूचना एकत्र कर सकती है। आवश्यक होने पर आँकड़े, चार्ट और अभिलेख माँग सकती है।

6.3.2 अनुमान समिति द्वारा मंत्रालयों से मांगी जाने वाली सूचनाऐं

अनुमान समिति एक परिपत्र के द्वारा मन्त्रालयों के लिए तैयार किए गये अनुमानों के सन्दर्भ में मुख्यतया निम्न सूचनाएँ माँगती हैं-

1. मन्त्रालय एवं उससे जुड़े अधीनस्थ कार्यालय का गठन तथा कार्य।
2. मन्त्रालय व इसके अधीनस्थ कार्यालयों के उन आधार का विस्तृत ब्यौरा, जिन पर अनुमान तैयारी निर्भर करती है।
3. मन्त्रालय के पिछले तीन वर्षों के उन कार्यों का विवरण जो वर्तमान अनुमानों की अवधि में पूरी की जानी है।
4. योजनायें व परियोजनायें जो मन्त्रालय शुरू कर रहा है या चल रहा है।
5. पिछले तीन वर्षों में वर्तमान अनुमानों में उप-शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया व्यय।
6. वर्तमान वर्ष तथा पिछले वर्ष के अनुमानों के खर्च में अन्तर के कारण।
7. अन्य किसी भी प्रकार के अनुमान के सन्दर्भ में सूचना जो मन्त्रालय देना चाहता है।

उक्त समस्त सूचनाओं का समिति के सचिवालय द्वारा विश्लेषण करके, सदस्यों के विचार-विमर्श के बाद प्रतिवेदन अध्यक्ष की स्वीकृति से सदस्यों में वितरण कर दिया जाता है एवं तथ्यात्मक पुष्टि हेतु सम्बन्धित विभाग या मन्त्रालय को गोपनीयता बनाये रखते हुए भेजा जाता है। तदोपरान्त मन्त्रालय की अनुदान मांगों पर बहस पूर्व प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिवेदन में प्रमुखतया तीन प्रकार की सिफारिशें होती हैं, पहला- संगठनात्मक तथा कार्यात्मक सुधार सम्बन्धी, दूसरा- मितव्ययिता सम्बन्धी जो अर्थव्यवस्था के सुनिश्चित अनुमान व्यक्त करने वाले हो और तीसरा- मार्गदर्शन सम्बन्धी अन्य सुझाव।

प्रतिवेदन पर अनुमान समिति अपने सचिवालय की सहायता से सिफारिशों को लागू करने के लिए की गयी कार्यवाही की सूचना प्राप्त करता है। भारत में अनुमान समिति का कार्य बहुत व्यापक है। यह सरकारी भूलचूक के अनेक कार्यों को प्रकाश में लाया। इस समिति ने वित्तीय एवं प्रशासकीय दोनों ही क्षेत्रों में सुधार के महत्वपूर्ण

सुझाव दिये हैं। दूसरे प्रतिवेदन के माध्यम से केन्द्रीय सचिवालय एवं विभागों के पुर्नगठन के लिये सिफारिश प्रस्तुत किया। दूसरी तरफ दामोदर घाटी योजना, हीराकुण्ड परियोजना, भाखड़ा नागल योजना तथा काकरापारा योजना जैसी बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं के कार्य संचालन की प्रशासकीय कमियों को उजागर कर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया। इसके प्रतिवेदन प्रकाशित होते हैं और जनमत में प्रचारित भी किये जा रहे हैं। इसकी अधिकांश सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकृति प्राप्त होती है, जिसकी क्रियान्वयन प्रतिवेदन से पुष्टि होती है। फिर भी समिति की अन्तिम सफलता सरकार पर दीर्घकालीन चिन्तन तथा योजना के सम्बन्ध में पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करता है।

6.3.3 अनुमान समिति की कमियां

इसमे निम्नवत कमियां या दुर्बलताऐं दृष्टिगोचर होती हैं-

1. समिति जिस मन्त्रालय या विभाग की एक बार समीक्षा कर लेती है, दूसरी बार की समीक्षा में बहुत अधिक समय होता है।
2. समिति सामान्य व्यक्तियों का एक समूह है, उसके पास लोकलेखा समिति की तरह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक जैसा कोई परामर्श विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं रहता है।
3. समिति सरकारी नीति के मूल्यांकन एवं विभागीय पुर्नगठन पर अधिक मात्रा में अपनी शक्ति खर्च कर रही है, जबकि अपने मूल कार्य अनुमानों की जाँच करना गौण होता जा रहा है।
4. समिति का कार्य तथ्यों के खोजने की मंशा रूप में नहीं है। वह संयुक्त राज्य अमेरीका की कांग्रेस समितियों के रूप में तथ्यान्वेषी तंत्र के स्थान पर छिद्रान्वेशी तंत्र बनाती जा रही है।
5. समिति स्वंय को लोक सभा के सापेक्ष भूमिका में ले जा रही है।
6. समिति संगठनात्मक सुधार तथा कार्यों के पुर्नवितरण संबंधित सुझाव देती है, जो प्रचार महत्तायुक्त होते हैं। अतः सरकार इस तरह की सिफारिशें अस्वीकृत कर देती है।

अनुमान समिति वित्तीय नियंत्रण की दिशा में उपयोगी कार्य कर रही है, जो भारत में प्रशासन की योग्यता तथा उसके स्तर को उन्नत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इस पर दोषारोपण करते हुए कहा जाता है कि बहुत बार यह नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करके उन कार्यों को करने लगती है, जो वास्तव में उसके नहीं है, लेकिन

इस बात से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता है। यह समिति सदन का कार्य नहीं करती, बल्कि सदन के अपने कार्य को अच्छी तरह करने में सहायता करती है। इसके कार्य सुझावपरक हैं, जिनका अनुपालन करना सदन पर निर्भर करता है।

6.4 लोक उपक्रम समिति

लोक निगमों/लोक उद्यमों के कार्य संचालन के निरीक्षण, परीक्षण और समय-समय पर उनके विषय में संसद में प्रतिवेदन देने के लिए एक संसदीय समिति के गठन की माँग उठती रही। इस तथ्य के पीछे मूल भावना यह थी कि संसद अपने प्रति उत्तर दायी उद्यमों को प्रभावशाली तथा न्याय संगत रूप में नियंत्रण रखने में सफल नहीं रही है। इस प्रकार की समिति के गठन का उद्-भव सर्वप्रथम 1953 के अन्त में लोक सभा में लंका सुन्दरम् ने की थी। वर्ष 1956 में जीवन बीमा निगम विधेयक पर चर्चा के दौरान श्री अशोक मेहता ने एक ऐसी स्थायी समिति के गठन के पक्ष में मत रखा था जो राष्ट्रीयकृत उद्योग के कार्य-संचालन की पूरी जाँच-पड़ताल करने के लिए आवश्यक उपकरण तथा अधिकारी हो। प्रथम लोक सभा अध्यक्ष जी0वी0 मावलंकर ने प्रधानमन्त्री को पत्र के माध्यम से स्वायत्त लोक निगमों के कार्य संचालन की जाँच हेतु एक स्थायी संसदीय समिति के गठन की बात रखी थी। योजना आयोग ने भी लोक उपक्रमों पर एक संसदीय समिति के गठन की सिफारिश की थी। परिणतः स्वरूप 01 मई 1964 को लोक उपक्रम समिति की स्थापना की गयी। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं, जिसमें 15 लोक सभा तथा 07 राज्य सभा के सदस्य होते हैं। सदस्यों का चुनाव एकल संक्रमणीय तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर होता है। मई माह के आरम्भ में समिति का गठन कर दिया जाता है, जो अगले वर्ष 30 अप्रैल तक रहता है। लोक सभा अध्यक्ष द्वारा समिति के सभापति को नियुक्त किया जाता है, जिसका कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। समिति के बीस प्रतिशत सदस्य चक्रानुक्रम में प्रत्येक वर्ष सेवानिवृत कर दिए जाते हैं।

लोक उपक्रम समिति का कार्य उपक्रमों के कार्य संपादन के सभी पक्षों का मूल्यांकन करना है। इसको जिन लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा लेखों की जाँच करने का कार्य समिति को दिया गया है, उनकी उस सन्दर्भ में जाँच करना होता है। लोक उपक्रमों पर नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का परीक्षण करना, लोक उपक्रमों की स्वायत्तता एवं कार्यकुशलता का परीक्षण करना, कि लोक उपक्रम के कार्यों का प्रबन्ध स्वस्थ्य व्यावसायिक

सिद्धान्तों के अनुरूप किया जा रहा है कि नहीं। इसके साथ ही अध्यक्ष की सलाह से लोकलेखा समिति एवं अनुमान समिति के सन्दर्भित कार्यों को करना होता है।

डॉ0 सुभाष कश्यप के अनुसार "समिति द्वारा जाँच सामान्य रूप से उपक्रम के मुल्यांकन के स्वरूप की होती है, जिसमें सभी पहलू आ जाते हैं। जैसे- उत्पादन, सामान्य अर्थव्यवस्था में अंशदान, रोजगार के अवसर पैदा करना, सहायक उद्योगों का विकास, उपभोक्ता के हितों का संरक्षण, इत्यादि।"

लोक उपक्रम समिति के उपरोक्त कार्यों एवं कार्यवाहियों को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह समिति बहुत उपयोगी कार्य कर रही है। लोक उपक्रमों के सन्दर्भ में यह लोक लेखा समिति एवं अनुमान समिति के कार्यों को अकेले पूर्ण कर रही है। समिति द्वारा किए गये अध्ययनों के फलस्वरूप ये तथ्य संसद एवं जनता के ध्यान में लाया गया है कि लोक उपक्रमों द्वारा किस प्रकार कार्यालय के भवनों पर, अतिथि गृहों पर, जलपान पर और अधिकारियों के विदेशी दौरों पर भारी धनराशियां व्यय की गयी।

6.5 विभागीय समितियाँ

विभागीय समितियाँ स्थायी प्रकृति की समितियाँ होती हैं। इस प्रकार की समितियों की स्थापना का मूल ध्येय विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों की समीक्षा संसद में विचार तथा मतदान किए जाने से पूर्व करने के सन्दर्भ में है। दीर्घकालीन संसदीय अनुभव ने प्रकट किया कि विद्यमान संसदीय कार्यप्रणाली में समय की कमी के कारण बजट के अधिकांश भाग को बिना विस्तृत-चर्चा के ही स्वीकार कर लिया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में सन् 1993 में विभाग सम्बन्धी स्थायी संसदीय समितियों के गठन का निर्णय किया। आरम्भ में सत्रह स्थायी समितियों की स्थापना की गयी। अब इनकी संख्या बढ़कर 25 हो गयी है। प्रत्येक समिति में अधिकतम सदस्य संख्या 31 है, जिसमें 10 राज्य सभा से और 21 लोक सभा से नियुक्त होते हैं। समितियाँ में परीक्षण के उपरान्त अनुदान माँगों पर प्रतिवेदन विचार-विमर्श के लिए संसद में प्रस्तुत किया जाता है।

6.6 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक

कार्यपालिका अपने समस्त कार्यों के लिए विधान-मण्डल के प्रति उत्तर दायी होती है। कार्यपालिका दायित्वों का अनुपालन विधान-मण्डल द्वारा तभी करवाया जा सकता है, जब वह उनकी जाँच कर उन पर अपना निर्णय दे

सकता हो। कार्यपालिका के सामान्य कृत्यों की जाँच सरलता से की जा सकती है, परन्तु कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनकी जाँच सामान्य लोग नहीं कर सकते है। लेखांकन एवं लेखा परीक्षण और कार्यपालिका के वित्तीय लेन-देन का औचित्य अथवा अनौचित्य निर्धारण करना एक तकनीकी कार्य है और इसके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। जबकि संसद सामान्य जन द्वारा निर्वाचित होने के कारण जाँच करने की क्षमता तथा योग्यता नहीं रखती, संसद का प्रमुख औचित्य है कि वह सरकार के वित्तीय व्यवहारों का परीक्षण करें कि करदाताओं के धन का सदुपयोग अथवा दुरूपयोग हो रहा है। इस सन्दर्भ में एक वित्तीय विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है, इसलिए स्वतन्त्र नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का प्रावधान भारतीय संविधान के अर्न्तगत किया गया है। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक स्वतन्त्र और निष्पक्ष रूप से कार्य करता है, इसकी स्वतन्त्रता और निष्पक्षता को संविधान के विभिन्न प्रावधानों और इस पद की शक्तियों, कर्तव्यों और सेवा शर्तों से सम्बन्धित कानून द्वारा आश्वस्त किया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 148 से 151 तक नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति तथा कार्यों के संबंध में प्रावधान किए गये हैं। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का पद बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसका प्रमुख दायित्व भारत की संचित निधि में से व्यय किये जाने वाले सभी सार्वजनिक धन-राशियों का लेखा परीक्षण करना है। वैसे भारत में लेखा परीक्षण विभाग की स्थापना सन 1853 में ही हो चुकी थी, किन्तु सन् 1919 के अधिनियम द्वारा इसकी स्वतन्त्र निकाय के रूप में स्थापना की गयी। सन् 1950 के संविधान में महालेखा परीक्षक का नाम बदल कर ‘‘नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक’’ रखा गया तथा उसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों की भांति एक संवैधानिक अधिकारी बनाया गया।

संसद ने 1953 के अधिनियम और 1971 के अधिनियम द्वारा क्रमशः नियंत्रक एंव महालेखा परीक्षक के कार्यकाल तथा सेवा शर्तों एंव कर्तव्यों तथा अधिकारों को परिभाषित किया है। सन् 1976 के बाद लेखांकन सम्बन्धी दायित्व से वह मुक्त कर दिया गया है। अब नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक का कार्य लेखा-परीक्षण ही रह गया है। सन् 1984 के अधिनियम द्वारा जहाँ एक तरफ पेंशन सुविधाओं में वृद्धि का लाभ दिया गया है, वहीं उसकी शक्तियों में और वृद्धि कर दी गयी है।

6.6.1 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति

संविधान में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को एक उच्च स्वतन्त्र वैधानिक अधिकारी माना गया है। संविधान में निहित उसके पद की शपथ में यह कहा गया है कि उसे संविधान और विधि की मर्यादा को बनाये रखना है तथा कर्तव्यों को भय, पक्षपात, प्रेम तथा बुरी भावना के बिना सम्पादित करना है। प्रशासन की वित्तीय एकता के सर्वश्रेष्ठ स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य एवं कर देने वालों के हितों की रक्षा तथा विधायी नियन्त्रण के उद्देश्य के लिए भी संविधान में नियत्रंक महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता व निष्पक्षता को निम्न विधियों से बनाये रखता है-

1. संविधान के अनुच्छेद- 148 के अनुसार भारत के नियत्रंक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति अधिपत्र द्वारा राष्ट्रपति मत्री-परिषद की सलाह से अपने ही हाथों एवं मुहर से करेगा। अपने पद पर वह 06 वर्ष तक या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक जो भी पहले हो वह रहता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की भाँति तथा उसी रीति तथा उन्हीं आधारों पर उसे पदमुक्त किया जा सकता है।
2. संविधान के अनुच्छेद- 148(3) के अनुसार नियंत्रक महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तें विधि द्वारा निश्चित होगी तथा नियुक्ति के पश्चात इसमें किसी प्रकार परिर्वतन नहीं किया जा सकता, जिससे उसकी हानि हो।
3. संविधान के अनुच्छेद- 148 (4) के अनुसार नियंत्रक महालेखा परीक्षक अपने पद से सेवानिवृत्ति के बाद भारत सरकार या राज्य सरकार के किसी पद पर कार्य नहीं कर सकता।
4. संविधान के अनुच्छेद- 148(6) के अनुसार उसका वेतन-भत्ते एवं पेशन भारत की संचित निधि से देय होंगे।

6.6.2 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कर्तव्य

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक प्रथम नियन्त्रक के रूप में यह देखता है कि भारत की संचित निधि से संसद द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार ही समस्त धनराशि निकाली जाए। दूसरा, समस्त सरकारी धन का व्यय संसद द्वारा पास किये गये कानून एंव नियमों के अनुसार किया जाय। इस सम्बन्ध में उसके कर्तव्य निम्नवत् हैं-

1. संघ, राज्य और राज्य संघ-क्षेत्र की संचित निधि से किये गये व्यय का परीक्षण करना और उन पर प्रतिवेदन देना कि व्यय विधि के अनुसार हैं, या नहीं।

2. संघ और राज्य की आकस्मिक निधि से किये गये व्यय की जाँच और उन पर प्रतिवेदन देना।
3. संघ या राज्य के विभाग द्वारा किये गये सभी व्यापार और विनिर्माण के लाभ-हानि लेखाओं की जाँच और उन पर प्रतिवेदन देना।
4. संघ अथवा राज्य के अनुरोध पर किसी भी सरकारी विभाग की आय की जाँच करना।
5. संघ और राज्य से वित्त-पोषित सभी स्थानीय संस्थाओं, निकायों, प्राधिकारों और सरकारी कम्पनियों, निगमों की प्राप्ति और व्यय की जाँच और उस पर प्रतिवेदन देना।

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक संघ तथा राज्य सरकारों के लेखों की जाँच के बाद महालेखाकार द्वारा संघ तथा राज्य सरकार के लिए अलग-अलग जाँच प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं। संघ के लेखाओं से सम्बन्धित प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष और राज्य से सम्बन्धित प्रतिवेदनों को राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत करता है। जिन्हें वे संसद एंव राज्य विधान-मण्डलों में उनके अनुमोदन के बाद प्रस्तुत किया जाता है। संसद में प्रस्तुत प्रतिवेदन के साथ लोकलेखा समिति, नियंत्रक महालेखा परीक्षक की सहायता आगे की जाँच-पड़ताल में लेती है। इसी सन्दर्भ में कहा जाता है कि ''नियन्त्रक महालेखा परीक्षक, लोकलेखा समिति का मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक होता हैं''

6.6.3 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की पद एंव स्थिति का मूल्यांकन

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कार्य एंव दायित्व अतिमहत्वपूर्ण हैं, इसलिए संविधान में उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान स्थिति और अधिकार दिये गये हैं। संघ के स्तर पर जहाँ वह मात्र लेखा परीक्षण का कार्य देखता है, वहीं राज्यों में वह लेखा परीक्षण के साथ-साथ लेखा का कार्य भी पूर्ण करता है। भारतीय संसदीय प्रजातंत्र का वह एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है। संसद द्वारा स्वीकृत धन के सही उपयोग करने की दिशा में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संघ और राज्य सरकारों के लेखों और आय-व्यय की देख-रेख करके, धन का दुरूपयोग, धोखा, लूट एंव हेरा-फेरी के मामलों को संसद एंव विधान-मण्डलों में जानकारी देकर यह सार्वजनिक द्रव्य(धन) का सजग प्रहरी और रखवाले की भूमिका निभाता है। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक वित्त मत्रांलय से अलग सार्वजनिक व्यय का नियंत्रण नहीं करता। वह तो उद्देश्यपरक यंत्र प्रदान करता है, जो सार्वजनिक वित्त के नियंत्रण की स्थिति को अनुकूल बनाते हैं। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक ने समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे बोफोर्स घोटाला, ताबूत घोटाला, टू-जी स्पेक्ट्रम आबंटन घोटाला आदि को सामने लाकर जहाँ अपने पद की

स्थिति एंव गरिमा का परिचय दिया है, वहीं भारतीय राजनीति में तूफान ला दिया। लेकिन इसके बावजूद यह पद आलोचना की निगाह से बच नहीं सका है।

कतिपय आलोचकों ने उसे जागरूक पहरेदार के स्थान पर ऐसा ''रक्त पिपासु शिकारी कुत्ता'' कह डाला है, जो सरकारी अधिकारियों की टांग पकड़ लेता है, उन्हें आगे बढ़ने नहीं देता और प्रशासन के कार्य में कठिनाइयॉं उत्पन्न करता है। बोफोर्स तोप सौदे के सन्दर्भ में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को देखते हुए एन0के0पी0 साल्वे ने तत्कालीन नियन्त्रक महालेखा परीक्षक श्री टी0 एन0 चतुर्वेदी को मसवरा तक दे डाला और महाअभियोग की धमकी दी गयी। लोक प्रशासन के अमरीकी विद्वान पाल एपलवी ने भारत में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के पद एंव स्थिति तथा भारतीय लेखा परीक्षण पद्धति की आलोचना करते हुए इसे औपनिवेशक शासन की विरासत कहा, उनके अनुसार ''भारत में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया, जिसने प्रशासनिक अधिकारियों को कार्य के प्रति निष्क्रिय बना दिया।'' ए0के0 राय के अनुसार "नियन्त्रक महालेखा परीक्षक न तो अनाधिकार हस्तक्षेप करने वाला दस्तदाज और न ही गन्दी नालियों का निरीक्षक है, किन्तु अपनी लेखा परीक्षण के समय वह गन्दगी अवश्य देखता है, उसका कर्तव्य है कि वह इस तरफ संसद एंव विधान-मण्डल का ध्यान खींचे और उसे यह जाँच सौंप दे।'' उपरोक्त तथ्यों के आधार पर ही कहा जाता है कि भारत में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक वित्तीय प्रशासन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसे प्रशासन को समझने की निश्चयात्मक रीति से व्यवहार करना चाहिए, इसके कार्यों को और अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है। तथापि कुछ सुझावों को कार्यन्वित करने से इसके कामकाज को आधुनिक समय की आर्थिक तथा औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करके इसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोकलेखा समिति में सदस्यों की संख्या कितनी होती है?
2. लोकलेखा समिति का अध्यक्ष लोक सभा अध्यक्ष द्वारा किस दल से बनाया जाता है?
3. लोकलेखा समिति का मुख्य कार्य सदन में प्रस्तुत किये गये ..... के प्रतिवेदन का परीक्षण करना है।

6.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हमें यह जानने और समझाने का अवसर प्राप्त हुआ है कि संसदीय शासन प्रणाली में वित्त पर नियंत्रण करने के लिए किस प्रकार के उपबंध हमारे संविधान निर्माताओं ने दिए हैं, जिसके तहत संसदीय समितियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जिनमें हमने लोक लेखा समिति के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है। जिसमें यह देखा कि इसका न केवल संगठन संसदीय परम्पराओं के अनुरूप किया गया है, वरन यह वित्त पर नियंत्रण रखने वाली महत्वपूर्ण समिति है।

इसके साथ ही साथ हमने अनुमान समिति, विभागीय समितियों और लोक उपक्रम समिति के विभिन्न पक्षों का भी अध्ययन किया है। अन्ततः हमने वित्त पर नियंत्रण रखने वाले प्रमुख पक्ष, नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति और उसके कार्यों का अध्ययन करते हुए उसके पद और स्थिति का मूल्यांकन किया है। जिसमें हमने देखा कि नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कार्य एंव दायित्व अति महत्वपूर्ण हैं, इसलिए संविधान में उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान स्थिति और अधिकार दिये गये हैं। संघ के स्तर पर जहाँ वह मात्र लेखा परीक्षण का कार्य देखता है, वहीं राज्यों में वह लेखा परीक्षण के साथ लेखा का कार्य भी पूर्ण करता है ।

6.8 शब्दावली

लोकलेखा समिति- नियत्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर संसद जिस समिति द्वारा गहन परीक्षण करती है, उसे लोकलेखा समिति कहते है।

अनुमान समिति- यह संसद द्वारा अनुमोदित विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों के अनुमानों का तथा उन अनुमानों की आधारभूत नीति से संबंधित कार्यक्रमों तथा योजना के निष्पादन में आवश्यक रियायत को ध्यान में रखते हुए विस्तृत परिक्षण करती है और अपना सुझाव प्रतिवेदन के रूप में संसद को सौंपती है।

लोक उपक्रम समिति- लोक उपक्रमों की कार्यप्रणाली के अध्ययन हेतु संसदीय नियमों के अर्न्तगत गठित समिति होती है।

कार्यपालिका- प्रशासन का वह तंत्र, वह अभिकरण जो संबंधित नीतियों के निर्माण करवाने और अनुमोदन होने के बाद उनका निष्पादित करता है।

बजट का क्रियान्वयन- वित्त विधेयक तथा विनियोग विधेयक के पारित होते ही राजस्व वसूली तथा अधिकृत मदों पर व्यय के लिए सरकार को वैधानिक अधिकार मिल जाता है। वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग राजस्व वसूली के लिए उत्तर दायी होता है। जिसके दो उप-विभाग हैं- केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पाद और सीमा शुल्क बोर्ड।

सरप्लस बजट- ऐसा बजट, जिसमें सरकार की आय उसके व्यय से अधिक होती है।

पूँजी बजट- पूँजी बजट के अन्तर्गत पूँजी प्राप्ति और पूँजी भुगतान का विवरण हेाता है।

भारत का संचित कोष- सरकार की सम्पूर्ण राजस्व आय, ऋण प्राप्ति तथा उसके द्वारा दिये गये ऋण की अदाएगी से प्राप्त आय को संचित निधि कहते हैं। सरकार के समस्त व्यय इसी कोष से संसद की अनुमति से किया जाता है।

आयोजन व्यय- ऐसे व्यय जिनकी व्यवस्था केन्द्रीय योजना में रहती है, आयोजन व्यय कहलाता है।

आकस्मिकता निधि- भारतीय संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत एक ऐसी निधि का गठन सरकार करती है, जिसका उपयोग आकस्मिक घटनाओं का सामना करने के लिए किया जाता है और इस निधि से राष्ट्रपति की अनुमति से अग्रिम निकाले जा सकते है।

गैर-योजना व्यय- इसमें सरकार के उन सभी खर्चों को शामिल किया जाता है, जो योजना के अन्तर्गत नहीं आते। इसमें ब्याज, पेन्शन, राज्यों को वैधानिक अन्तरण, रक्षा, आन्तरिक सुरक्षा और विदेशों से सम्बन्ध सन्दर्भित व्यय है।

गैर-कर राजस्व- सरकार की ब्याज प्राप्ति, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि सेवाओं के प्रशासनिक प्राप्तियाँ गैर-कर राजस्व के अन्तर्गत आती है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 22, **2.** विरोधी दल, **3.** नियन्त्रक महालेखा परीक्षक

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुन्दरम, के0पी0, (1990), भारतीय लोक वित्त एवं वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।

2. कौर, इन्द्रजीत, (2000), लोक प्रशासन, एस बी पीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा।

3. अवस्थी, ए0 पी0, (2000), वित्त प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

4. लाल, एस0 एन0, (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, शिवम पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

5. दुबे, रमेश, शर्मा, हरिश्चन्द्र, (1998), भारत में लोक प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भार्गव, आर0 एन0, (1980), भारतीय लोक वित्त , बी0 डी0 भार्गव एंड सन्स, चंदौसी।

2. लाल, जी0 एस0, (1982), भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच0 पी0 कपूर, नई दिल्ली।

3. थावराज, एम0जे0के0, (1982), भारत का वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।

4. शर्मा, के0 के0, (2000), फाइनेन्सियल एड मिनिस्ट्रेशन इन गर्वनमेन्ट, विकास पब्लिशिंग हाउस।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्त पर नियत्रंण में वित्तीय समितियों की भूमिका की विवेचना कीजिए।

2. अनुमान समिति के प्रमुख कार्यों एवं भूमिका को बताइए।

3. लोक उपक्रम समिति की कार्यप्रणाली का मूल्याकंन कीजिए।

इकाई- 7 लेखांकन, लेखा परीक्षण

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 लेखांकन

7.2.1 लेखांकन का अर्थ और परिभाषा

7.2.2 लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियाँ

7.2.2.1 नकद लेखा पद्धति

7.2.2.2 सम्भूत(Accrual) लेखा पद्धति

7.2.2.3 लागत लेखा पद्धति

7.2.3 भारतीय लोक लेखा व्यवस्था एवं लेखा पद्धति के चरण

7.3 लेखा परीक्षण

7.3.1 लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व

7.3.2 लेखा परीक्षक की विधियाँ एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया

7.3.2.1 वित्तीय लेखा परीक्षण

7.3.2.2 नियमितता लेखा परीक्षण

7.3.2.3 राजस्व आय वसूली लेखा परीक्षण

7.3.2.3 निष्पादन लेखा परीक्षण

7.3.3 लेखा परीक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

7.4 लेखांकन एवं लेखा परीक्षण का पृथक्करण

7.4.1 लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के पक्ष में तर्क

7.4.2 लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के विपक्ष में तर्क

7.5 सांराश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

प्रशासन में वित्तीय क्षेत्र के अध्ययन के लिए मुख्यतया सार्वजनिक कोषों के एकत्रीकरण और उन्हें सही तरीके से खर्च करने संबंधी प्रशासनिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। सार्वजनिक धन को सही तौर पर खर्च किये जाने की जानकारी देश की जनता को और चुने हुए प्रतिनिधियों को नियमित तौर पर प्राप्त होनी आवश्यक है, जिसके लिए सरकार लोक लेखा की व्यवस्था करती है। साथ ही यह बात भी महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक कोषों में से जो भी धनराशि खर्च की जाये वह कुछ सिद्धान्तों के अनुरूप हो ताकि धन का दुरूपयोग ना हो और प्रशासन में भ्रष्टाचार ना पनपे। अस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बिना लेखांकन के वित्तीय नियंत्रण की व्यवस्था अप्रभावी बनी रहती है, क्योंकि लेखों के अभाव में यह जानना कठिन होता है कि सरकारी कोषों में कितनी धनराशि एकत्र हुई, कितनी खर्च की गयी तथा किन-किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसे खर्च किया गया? अत: लेख स्थाई दस्तावेज होते हैं। सरकारी लेखों का सवरूप वयवसायिक लेखों से भिन्न होता है क्योंकि दोनों के आधारभूत उद्देश्य एक नहीं होते। लोक प्रशासन में लेखांकन का रखरखाव और उसका लेखा परीक्षण(Auditing)

एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। कितना धन कहाँ और कैसे खर्च किया इसकी जानकारी आम जनता और जन प्रतिनिधियों को होनी आवश्यक है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लेखांकन क्या है, इस बारे में जान सकेंगे।
- लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियों का वर्णन कर सकेंगे।
- लेखांकन से होने वाले लाभ एवं हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता को समझ पायेंगे।
- भारतीय लोकलेखा व्यवस्था को जान सकेंगे।
- लेखा परीक्षण क्या है, इसे जान पायेंगे एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।
- लेखांकन एवं लेखा परीक्षण में अन्तर, उसके लाभ-हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

7.2 लेखांकन

किसी देश के कुशल और सुदृढ़ वित्तीय प्रशासन के लिए तथा सार्वजनिक धन के दुरूपयोग को दूर करने हेतु लेखांकन का होना अनिवार्य है, क्योंकि इसी आधार पर वह उनका लेखा परीक्षण करता है। वित्तीय प्रशासन के अध्ययन-क्षेत्र में सार्वजनिक कोषों के एकत्रीकरण से लेकर उन्हें सुनिश्चित नीतियों के अर्न्तगत व्यय करने सम्बन्धी प्रशासनिक क्रियाओं को शामिल किया जाता है। लोक व्यय को सुनिश्चित नीतियों के अर्न्तगत व्यय करने की जानकारी जनता को तथा उनके चुने प्रतिनिधियों को नियमित रूप से प्राप्त होते रहना जरूरी है। इसी कारण हर देश की सरकार को लोक लेखा की व्यवस्था करनी पड़ती है और साथ ही इस बात का ध्यान रखा जाता है कि लोक कोषों में जो भी धनराशि खर्च की जाए, वह कुछ मान्य सिद्धान्तों के अनुरूप हो, ताकि काषों का दुरूपयोग न हो। लेखा एक कार्यकारी प्रकृति कार्य है, जो कि कार्यपालिका के द्वारा रखा जाता है।

7.2.1 लेखांकन का अर्थ और परिभाषा

लेखांकन का अभिप्राय है, सभी प्रकार के वित्तीय लेन-देन का सुव्यवस्थित एवं लिखित रूप से हिसाब रखना तथा यह देखना कि लोक धन का उपयोग संसद या विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत बजट के अनुसार हुआ है या नहीं।

प्रो0 के0 एस0 लाल के शब्दों में "पूर्णतया एवं आंशिक रूप से वित्तीय प्रकृति के लेन-देन अथवा सौदों का वित्त के आधार पर विवरण रखना, वर्गीकरण करना और संक्षेपीकरण करना तथा उनके परिणामों की व्याख्या करना ही लेखांकन है।"

प्रो0 एम0 पी0 शर्मा के अनुसार "वित्तीय लेन-देन की नियमित लिखित सूची या प्रपत्र को ही लेखा कहते हैं, चाहे ये लेन-देन सरकारी हो अथवा निजी।''

इस प्रकार सार रूप में कहें तो लेखांकन में वित्तीय प्रकृति के लेन-देन का संग्रहण, अभिलेखन, वर्गीकरण तथा संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया को अपनाया जाता है, जिससे कोषों पर लेन-देन करने वाले लोगों की विश्वसनीयता सुनिश्चित हो सके। नीति-निमार्ण तथा प्रशासनिक उद्देश्यों से वित्तीय हालातों तथा परिचालन से सम्बन्धित सूचनाऐं प्रदान हो सके, जिसके आधार पर बजटीय प्रावधानों के अनुरूप व्यय की सीमाऐं निर्धारित की जा सकें।

लेखांकन की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से है-

1. बजट निर्माण की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने हेतु एक व्यवस्थित लेखा का होना जरूरी है।
2. लेखांकन के द्वारा प्राप्त आंकड़ों व सूचनाओं के आधार पर देश के लिए नीतियों का निर्धारण करना सरल हो जाता है, साथ ही उनका क्रियान्वयन आसान हो जाता है।
3. राष्ट्र के वित्तीय मानचित्र का वर्णन संकलित आँकड़ों द्वारा होता है, जिसकी स्पष्ट जानकारी लोक लेखे के द्वारा ही प्राप्त होती है।
4. लेखांकन के द्वारा उत्तरादायित्वों का निष्पादन सरल हो जाता है और इस बात की जानकारी आसान हो जाती है कि किस कार्य के लिए कौन अधिकारी उत्तर दायी है?
5. लेखांकन के द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर विभिन्न प्रकार की नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं का मूल्यांकन सरलता से किया जाता है।

6. लेखांकन इस बात की जानकारी उपलब्ध करता है कि सार्वजनिक धन का उपयोग संसद विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत प्रावधान के अनुसार हुआ कि नहीं। इस सन्दर्भ में बजट में जो प्रावधान हुआ उसका उल्लंघन तो नहीं किया गया।
7. लेखांकन सरकार के आन्तरिक नियंत्रण का प्रमुख साधन है, जिसके माध्यम से सरकार अपने व्यय का अपनी सीमा के अन्दर स्वतः समायोजन करती है।

7.2.2 लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियाँ

लेखा अभिकरण का प्रमुख कर्तव्य होता है कि लोक लेखों में बजट प्रावधानों के अनुरूप खर्च की जानकारी तथा वित्त विधेयक के प्रावधानों के अनुसार आय एकत्रीकरण की प्रक्रिया की जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए। इसलिए लोक लेखों को उन्हीं शीर्षों तथा उप-शीर्षों में तैयार किया जाता है, जो बजट में शामिल किए जाते हैं। लोक-लेखों का प्रारूप नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा स्वीकृत प्रारूप के अनुरूप होता है। लोक लोखों में समाज के अलग-अलग वर्गों की भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से रूचि बनी रहती है। अतः एक अच्छे सशक्त लोक लेखांकन में निम्नांकित आवश्यक तत्व या विशेषताऐं होनी चाहिए-

1. लेखों की केन्द्रीकृत प्रणाली होनी चाहिए और सभी प्रकार के वित्तीय लेखों को तैयार करने और उनका पर्यवेक्षण करने का अन्तिम उत्तर दायित्व किसी एक व्यक्ति या संस्था के पास होना चाहिए, ताकि ठीक समय पर लेखा को तैयार होना सुनिश्चित रहे।
2. सरकारी कोषों को वर्गीकृत रूप में दिखाया जाना चाहिए। इसमें पूँजीगत लेखा तथा राजस्व लेखा, आर्थिक लेखा तथा कार्यात्मक लेखा आदि को आवश्यकतानुसार निरूपित किया जाना चाहिए, ताकि अर्थव्यवस्था की स्थिति के बारे में वास्तविक जानकारी विभिन्न आयामों से प्राप्त की जा सके।
3. लेखांकन कार्य दोहरा लेखा प्रणाली पर आधारित होना चाहिए, ताकि त्रुटि की सम्भावना को टाला जा सके और जान कर की कई त्रुटियों को प्रकाश में लाया जा सके।
4. लोक लेखों की तैयारी बजट नियन्त्रण के उपागमों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इसमें सरकारी प्राप्तियों, ऋणों, विनियोजनों से सम्बन्धित प्रविष्ट्रियाँ व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए।

5. निष्पादन बजट प्रणाली की आवश्यकताओं को देखते हुए सरकारी व्यय को कार्यक्रमों, उद्देश्यों तथा कार्यों के आधार पर विभक्त करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
6. सभी गैर-राजस्व वाली मदों को राजस्व मदों से बाहर रखना चाहिए। राजस्वों के स्रोत तथा निधि के माध्यम से वर्गीकृत करना चाहिए और ऐसा मानकीकृत वर्गीकरण के अनुसार होना चाहिए।
7. लेखांकन नियमित एवं वार्षिक आधार पर होना चाहिए।

उपरोक्त बातों के ध्यान में रखकर तैयार किए जाने वाले लेखांकन मात्र राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रतीक मात्र नहीं होते, बल्कि इनकी कार्यात्मक उपयोगिता होती है और ये सरकार के सभी विभागों की वित्तीय तस्वीर स्पष्ट करते हैं।

लोक लेखों को लेखा पद्धतियों के आधार पर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है-

7.2.2.1 नगद लेखा पद्धति

इस पद्धति में लेखा आय-व्यय का विवरण तब ही लिखा जाता है, जब नकदी प्राप्त हुई हो अथवा दी गयी हो। यह लेखा पद्धति लागत अधारित बजट व्यवस्था के अनुरूप है, क्योंकि इससे किसी वित्तीय वर्ष के सन्दर्भ में ही वास्तविक सेवा लागतों का आकलन करना सम्भव होता है। इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी यह है कि सरकार की आर्थिक स्थिति के बारे में सिर्फ उतनी ही जानकारी देती है, जितना कि एक व्यक्ति का बैंक कोष उसकी क्षमता का प्रतिबम्ब करता है।

7.2.2.2 सम्भूत(Accrual) लेखा पद्धति

सम्भूत या कमाई गई लेखा पद्धति लागत आधारित बजट व्यवस्था के अनुरूप है, क्योंकि इससे किसी वित्तीय वर्ष के सन्दर्भ में ही वास्तविक सेवा लागतों का आकलन करना सम्भव हो पाता है। लेकिन सरलता की दृष्टि से नगद लेखा पद्धति अधिक उपयोगी है,क्यों कि इसके द्वारा लोगों को आवश्यक जानकारियां देने में काई परेशानी नहीं आती।

7.2.2.3 लागत लेखा पद्धति

यह लेखा की वह पद्धति है, जिसमें लागतों को विभिन्न गतिविधियों में विभागानुसार आबंटित किया जाता है। सरकार के विविध क्रियाकलापों को चलाने एवं उन्हें चालू हालत में रखने की लागतों का पता देती है। यह सरकार

के उत्पादक अंगों के सन्दर्भ में अधिक उपयोगी होती है। भारत में केन्द्र और राज्य सरकारों के लेखा उन्हीं शीर्षकों और उप-शीर्षकों के अन्तर्गत रखे जाते हैं, जिसके अन्तर्गत बजट के विविध मद सरकारी लेखा को प्राप्तियों एवं परिव्यय के आधार पर बनाया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति का प्रयोग, बजट प्रावधानों में समाहित व्यावसायिक आधार पर सरकार द्वारा संचालित व्यक्तिगत इकाईयों की उपादेयता की जाँच तक ही सीमित रहता है। परन्तु सरकार द्वारा लेखे ऐसे तैयार कराए जाते हैं कि वह देखने में स्पष्ट हो तथा समझने में सरल हो। इस रूप में यह तीन प्रकार के होते हैं-

1. **नियन्त्रण लेखे-** यह लेखे प्रशासनिक अधिकारियों की विश्वसनीयता की जाँच के लिए तैयार होते हैं। जो सार्वजनिक राजस्व के एकीकरण व सुरक्षित भण्डारण का कार्यकरते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा राजस्व लेखे, विनियोजन लेखे तथा निधि लेखे तैयार करवाये जातेहैं। राजस्व लेखे में आय की विभिन्न मदों को दिखाते हैं। विनियोजन लेखे में सरकारी व्यय को शीर्षों तथा उप-शीर्षों में दिखाते हैं। जबकि निधि लेखे में सामान्य निधि, विशिष्ट राजस्व तथा व्यय कोष, ऋण निधि, स्थायी अनुदान निधि, परिवर्तनीय निधि, लोक न्याय निधि और अस्थायी निधि शीर्षों के अन्तर्गत सूचनाऐं एकत्रित की जाती हैं।
2. **प्रशासनिक आन्तरित सुविधा लेखे-** इन्हें प्रोप्राइटरी(मालिकाना) लेखे(Proprietary Accounts) कहते हैं, जो सरकार की सुविधा के लिए उसकी आमद तथा व्यय की सतत जानकारी को प्राप्त करने के लिए तैयार होते हैं।
3. **विस्तृत पूरक लेखे-** आम जनता को सरकार के दायित्वों तथा परिसम्पतियों एवं आय-व्यय की नियमित एवं स्पष्ट जानकारी देने हेतु पूरक रूप में सरकार द्वारा यह लेखे प्रतिवर्ष या दो वर्ष के अन्तराल पर जारी किये जाते हैं।

7.3.2 भारतीय लोक लेखा व्यवस्था एवं लेखा पद्धति के चरण

भारत, राज्यों का संघ होने के कारण राज्य एवं संघ दोनों स्तरों पर लोक लेखों की प्रबन्ध व्यवस्था का संवैधानिक प्रावधान किया गया है। यहाँ कार्यपालिका को लेखांकन कार्य से अलग रख कर नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को एक स्वतन्त्र संवैधानिक इकाई के रूप में इस कार्य की जिम्मेदारी सौंपी गयी है। प्रत्येक राज्य में नियुक्त महालेखाकार लेखों को तैयार करने में नियत्रंक महालेखा परीक्षक को सहायता प्रदान करते हैं। जहाँ केन्द्र एवं राज्य

दानों सरकारों के आय-व्यय का हिसाब रखा जाता है। केवल रेलवे के लेखों का प्रबन्ध इसका वित्त आयुक्त एवं रक्षा मंत्रालय के लेखों का कार्य सेना के महालेखाकार या वित मन्त्रालय द्वारा प्रतिनियुक्त वित्तीय सलाहकार द्वारा सम्पादित किया जाता है।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक भारत के राजस्व और पूँजी खाते को राष्ट्रपति के निर्देशानुसार तैयार करता है। वह सरकार के किसी भी अधिकारी से इन खातों को तैयार करने में जरूरी किसी सूचना के लिए जानकारी ले सकता है। महालेखा परीक्षक को यह पूर्ण अधिकार है कि वह लेखा परीक्षक कार्यालय में रखे जाने वाले खातों के रूप के सन्दर्भ में निर्देश जारी करे। लेकिन इसके बारे में राष्ट्रपति की मंजूरी आवश्यक है, जो पूँजी और राजस्व खाते के रूप को प्रभावित करें। यदि किसी बड़े मद के अन्तर्गत किसी छोटे मद को शामिल किये जाने के विषय में कोई विवाद अथवा शंका उठती है, तो नियत्रंक महालेखा परीक्षक का निर्णय अन्तिम होगा। महालेखा परीक्षक का यह अधिकार होता है कि वह उस रूप को निर्धारित करे, जिसके अनुसार लेखा-परीक्षा विभाग के समक्ष खाता प्रस्तुत करने वाले अधिकारी अपना कार्य सम्पादित करे। महालेखा परीक्षक को इस कार्य के सम्पादन हेतु अपने अधिनस्थ ऐसे अधिकारियों की व्यवस्था करनी पड़ती है, जो सरकार अथवा राष्ट्रपति को अपेक्षित जानकारी दे सकें और इन सूचनाओं की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि महालेखा परीक्षक के नियत्रंण के अर्न्तगत रखे गये खातों में से उन्हें प्राप्त किया जा सके।

भारत में प्रारम्भिक लेखा का कार्य जिला स्तर पर स्थापित राज्य कोष द्वारा किया जाता है, जहाँ विजिय लेन-देन का प्रारम्भिक कार्य होता है। जिला राजकोष द्वारा प्रत्येक माह में दो बार अपने प्राप्तियों तथा भुगतान के लेखे प्रमाणकों के साथ महालेखाकार के दफ्तर में पहुँचाये जाते हैं। भारत में लेखा पद्धति की प्रक्रिया निम्न चरणों में होती है-

- जिला राजकोष में वित्तीय लेन-देन का लेखा,
- महालेखाकार कार्यालय में लेखा एवं वर्गीकृत करना,
- अंकेक्षकों द्वारा लेखों का अंकेक्षण,
- महालेखा परीक्षक द्वारा वार्षिक आधार पर लेखों को तैयार करना,

- लेखों को अंकेक्षण प्रतिवेदन के साथ राष्ट्रपति/राज्यपाल को सौंपना,
- राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा बजट अधिवेशन के समय प्रस्तुत करवाना,

महालेखाकार के कार्यालय में राज्य के विभिन्न राजकोषों, भारतीय रिजर्व बैंक की तथा स्टेट बैंक अथवा उनकी शाखाओं से प्राप्त लेखों का संकलन तथा वर्गीकरण किया जाता है। सभी प्रकार की आमदनियों तथा भुगतानों को निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है- 1. राजस्व लेखे, 2. पूँजी लेखे, 3. ऋण लेखे और 4. अवशिष्ट लेखे।

ये सूचना प्रति माह पूर्व माह के सन्दर्भ में तैयार कर ली जाती है। ससंद द्वारा स्वीकृत विनियोजन तथा वित्त विधेयक के मदों के अनुकुल अन्तिम रूप से लोक लेखे तैयार हो, इस परिप्रेक्ष्य में लेखा तैयार करते समय सम्बन्धित प्राप्तियों तथा व्ययों को मुख्य शीर्षों, सूक्ष्म शीर्षों तथा उप-शीर्षों में विभाजित करके दिखाते हैं। राजस्व मदों को रोमन लिपि I, II, III, IV आदि में तथा व्यय मदों को अरबी लिपि 1, 2, 3, 4 आदि में दर्शाया जाता है। वार्षिक आधार पर महालेखाकार लेखा एकीकरण करता है और एकीकरण के बाद महालेखाकार द्वारा लेखों को नियंत्रक महालेखा परीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करता है, जहाँ नियंत्रक महालेखा परीक्षक लेखा लेखाधिकारियों की सहायता से इसका परीक्षण करता है जो लेखा को तीन शीर्षकों- 1. विनियोजन, 2. वित्त लेखे तथा 3. सम्मिलित वित्तीय लेखा के अन्तर्गत तैयार करवाता है।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक, लेखा का परीक्षण करके अपने प्रतिवेदन तैयार करता है और राष्ट्रपति/राज्यपाल को प्रत्येक वर्ष के जनवरी-फरवरी माह में पेश करता है। राष्ट्रपति/राज्यपाल इसे बजट अधिवेशन के दौरान संसद और विधान सभाओं में प्रस्तुत करने के वैधानिक दायित्व का निर्वाह करते है।

7.3 लेखा परीक्षण

ब्रिटेन ही ऐसा सर्वप्रथम देश था, जिसने सार्वजनिक लेखाओं के लेखा-परीक्षण की विधि का विकास किया था। यह लोक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण का अपरिहार्य अंग है।

7.3.1 लेखा परीक्षण अर्थ एवं महत्व

लेन-देन के पूर्ण होने के पश्चात लेखाओं की जाँच तथा परीक्षण ही लेखा परीक्षण कहलाता है। इस जाँच का उद्देश्य किसी भी अनाधिकृत, अवैध या अनियमित व्ययों, दोषपूर्ण वित्तीय कार्य विधियों की खोज तथा विधान-मण्डल को तत्सम्बन्धी सूचना देना एवं पता लगाना होता है, कि प्रशासन ने अपने उत्तर दायित्व को सच्चाई के साथ पूरा किया है या नहीं। लेखा परीक्षण अधिकारी कार्यपालिका से स्वतन्त्र, परन्तु व्यवस्थापिका के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। इसका कार्य एक जासूस के समान सम्पन्न किये गये वित्तीय लेन-देन एवं यह खोजना है कि कहाँ तक प्रशासन ने अपने उत्तर दायित्व को निष्ठा और सच्चाई के साथ परिपूर्ण किया है।

लेखा परीक्षण, लेखा प्रतिवेदन की ऐसी जाँच-पड़ताल है, जो यह सुनिश्चित करने के लिए की जाती है कि प्रतिवेदन पूर्णतया एवं सत्य रूप से उन सभी सौदों को प्रतिबिंबित करता है, जिससे वह सम्बन्धित है। इसका मुख्य उद्देश्य यह जाँचना होता है कि किए गये व्यय के लिए सम्बन्धित अधिकारी से स्वीकृति ले ली गयी है या नहीं और धन उन्हीं कार्यों पर व्यय किया गया या नहीं, जिस सन्दर्भ में स्वीकृति प्रदान की गयी थी। इसी परिप्रेक्ष्य में लेखा परीक्षण को लोकतन्त्र का पाँचवा स्तम्भ कहा जाने लगा है। ये सतम्भ हैं- कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका, प्रेस, तथा लेखा परीक्षण। पहला स्तम्भ कार्यपालिका, लोकतन्त्र का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है, जो जनता द्वारा चुने प्रतिनिधियों द्वारा गठित होती है। वहीं व्यवस्थापिका (संसद) में सभी प्रकार के कानूनों को बनाती है और प्रशासन चलाने के लिए राजस्व के एकत्रीकरण एवं विनियोजन के नियम स्वीकृत करती है। व्यवस्थापिका इसके एकत्रीकरण एवं विनियोजन को मूर्त रूप प्रदान करती है। न्यायपलिका और प्रेस एक स्वस्थ्य लोकतंत्र के संचालन के लिए आवश्यक है। लेखा परीक्षण संसद की वरिष्ठता को सुनिश्चित करता है कि निर्धारित राशि का व्यय उन्हीं उद्देश्यों एवं उसी अधिकारी की सहमति से व्यय करें, जिसकी सहमति एवं उद्देश्य के लिए संसद ने स्वीकृति दी है।

लेखा परीक्षण, प्रशासन को मूल्य प्रदान करता है। सभी देशों में लेखा परीक्षण को एक आवश्यक बुराई न मानकर एक अच्छे साथी के रूप में कार्यविधि विषयक एवं तकनीकी अनियमिताओं तथा व्यक्तियों के दोषों को सामने लाता है, चाहे वे मूल्यांकन से जुड़ी त्रुटियाँ हों या असावधानियाँ अथवा कपट के इरादे से किए गये कार्य। अन्तिम विश्लेषण के रूप में कहें तो लेखा-परीक्षण की निम्न महत्ता सार्वभौमिक है-

- इसके द्वारा यह पता लगाया जाता है कि व्यय निर्धारण सीमा से अधिक तो नहीं हुआ है।

- धन का व्यय नियमानुसार हुआ है या नहीं।
- धनराशि के व्यय करने के पूर्व समस्त कानूनी एवं वित्तीय नियमों का पालन किया गया है या नहीं।
- धन के व्यय करने के प्रावधान को ध्यान रखना चाहिए।
- इसका उदेश्य फिजूलखर्ची एवं अपव्यय को रोकना तथा नियंत्रित करना है।

7.3.2 लेखा परीक्षक की विधियाँ एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया

लोक लेखों की सत्यता तथा राजकीय लेन-देनों की वैधानिकता की जाँच के लिए लेखा परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रक्रिया से यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि क्या लोक व्यय स्थापित विधियों तथा नियन्त्रक के अनुरूप हुआ है, व्यवस्थापिका द्वारा पारित विनियोजक विधेयक के अनुसार किया है। इस हेतु आवश्यक प्रशासनिक स्वीकृति ली गयी और वित्तीय विवेक की मान्य धारणाओं का अनुपालप हुआ है। इस व्यापक कार्य को पूरा करने में अलग-अलग मंत्रालयों में स्थित लेखा अधिकारी तथा अलग-अलग राज्यों में कार्य कर रहे मुख्य लेख अधिकारी नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की सहायता करते हैं। इस हेतु उपयोगी विभिन्न लेखा परीक्षण की विधियाँ निम्न है-

7.3.2.1 वित्तीय लेखा परीक्षण

वित्तीय लेखा परीक्षण वह लेखा परीक्षण है, जिसमें भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा कार्य विभाग यह सुनिश्चित करता है कि प्रशासनिक कार्य केवल निर्धारित कानूनों, वित्तीय नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुरूप ही नहीं हों, बल्कि विधि सम्मत हों और कोई अपव्यय न हो। जब किसी प्रशासनिक कार्य का परिणाम क्षय, अपव्यय अथवा अनुचित व्यय होता है, तो लेखा परीक्षक का यह कर्तव्य होता है कि इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान दे तथा संसद के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। जैसे किसी सिंचाई परियोजना में लेखा परीक्षण का वास्तविक निर्माण के प्रशासनिक ढ़ाँचे से कोई सम्बन्ध नहीं होता और ना ही इसके क्षेत्र से गुजरने से जो प्रशासनिक मामले हैं, लेखा परीक्षक प्रशासनिक तथ्यों की जाँच नहीं करता। वह देखता है कि परियोजना का रेखांकन अपर्याप्त आँकड़ों के आधार पर किया गया, जिसके कारण परियोजना में परिर्वतन करने पड़े और अतिरिक्त व्यय करना पड़ा तथा वित्तीय परिणाम आशा के अनुरूप नहीं मिला। लेखा परीक्षक गलत रेखांकन के कारण राजस्व क्षय को संसद के सम्मुख ला कर

करदाताओं के हितों की रक्षा करता है। गम्भीर वित्तीय अनियमित और निर्धारित कानून एवं वित्तीय व्यवस्था तथा नियमों के अनुरूप कार्य पूर्ण न होने पर लेखा परीक्षक हस्तक्षेप करता है। इस लेखा परीक्षण में परम्परागत वित्तीय नियमों के व्यापक सिद्धान्तों का लेखा परीक्षण भी शामिल है।

7.3.1.2 नियमितता लेखा परीक्षण

नियमितता लेखा परीक्षण का मुख्य ध्येय यह सुनिश्चित करना है कि सभी व्यय संविधान में दिए गये प्रसंगोचित प्रशानिक वित्तीय बजट सम्बन्धी एवं लेखा पद्धति सम्बन्धी व्यवस्थाओं एवं नियमों तथा संसद द्वारा बनाऐ गऐ कानूनों के अनुरूप हैं। नियमितता लेखा परीक्षण यह सुनिश्चित करता है कि लोक व्यय के लिए निधि का प्रावधान है, जो सन्दर्भित अधिकारी द्वारा अधिकृत है। लोक व्यय विधिक प्रावधानों द्वारा व्यय के लिए अधिकृत अधिकारी के अनुमति से किया गया। इस सन्दर्भ में भुगतान की माँग नियमों के अनुसार तथा उचित रूप में की गयी है। लोक व्यय हेतु आवश्यक सभी प्रारम्भिक आवश्यकता अनुमान, स्वीकृति आदि को पूरा करके ही व्यय किया गया। व्यय जिस अवधि में व्यय के लिए स्वीकृति प्राप्त हो, उसके पश्चात बिना नई स्वीकृति के न किया जाए। भुगतान करने वाले अधिकारी को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए की इस सन्दर्भ में नियमों का पालन किया जा रहा है। भुगतान की प्रमाणिकता को देखना चाहिए। दोहरापन न हो ऐसी व्यवस्था बने। समस्त भुगतानों का मूल लेख पत्र सही-सही नामांकित होना चाहिए। समस्त व्यय उन्हीं कार्यों में हो, जिसके लिए निर्धारित है एवं व्यय विनियोजित धनराशि से अधिक न हो। इस प्रकार लोक व्यय का नियमितता लेखा परीक्षण का एक अर्द्धन्यायिक प्रकृति का कार्य है, जो लेखा परीक्षण अधिकारी द्वारा किया जाता है। इसमें नियमों, आदेशों तथा संविधान की व्याख्या करना सम्मिलित है।

7.3.2.3 राजस्व आय वसूली लेखा परीक्षण

राजस्व आय वसूली लेखा परीक्षण, केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर आगम (उत्पाद कर, निगम कर, आय कर, बिक्री कर आदि) की वसूली के लिए होता है। इस लेखा परीक्षण में लेखा परीक्षक का कार्य यह सुनिश्चि करता है कि इन आगमों की वसूली के लिए पर्याप्त नियमों एवं प्रक्रियाओं का गठन कर लिया गया है तथा राजस्व विभाग उनका

पालन कर रहा है। यह कार्य कर निर्धारण, कर वसूली तथा राजस्व के आबंटन पर प्रभावशाली नियंत्रक रखने के लिए आवश्यक है।

7.3.2.4 निष्पादन लेखा परीक्षण

किसी भी व्यय के सन्दर्भ में लेखा परीक्षण की पूर्णतया, बिना उसके निष्पादन के मुल्यांकन के अपर्याप्त है। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास एवं सामाजिक उन्नति के लिए भारी पूँजी निवेश किया है। जिसका लाभ आशा के अनुरूप है या नहीं, यह जनता को जानने का अधिकार है। इसी परिप्रेक्ष्य में निष्पादन बजट की व्यवस्था आरम्भ की गयी। तद्अनुरूप पिछले कुछ समय से व्यय को वास्तविक परिणामों से जोड़ने की आवश्यकता ने सरकार को लेखा परीक्षण के कार्यों के बारे में पुनः सोचने पर बाध्य किया है कि नियमितता लेखा परीक्षण, वित्तीय लेखा परीक्षण एवं आय लेखा परीक्षण व्यय पर संसदीय नियंत्रण के लिए आवश्यक है। वहीं इन परियोजनाओं, कार्यक्रमों तथा योजनाओं की उपलब्धियों का निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिए कि इनके परिणाम अनुकूलता से नीचे क्यों जा रहे हैं? फलस्वरूप निष्पादन अनुष्ठान या दक्षता लेखा परीक्षण का आवश्यकता उत्पन्न हो रही है।

निष्पादन लेखा परिक्षण यह बतता है कि साधनों का अनुकूलतम तरीके से विनियोजन कर उसका दक्षतापूर्ण उपयोग हुआ या नहीं। यह परियोजना के परिभाषित लाभों एवं साधनों के प्रयोग उत्पादक उद्देश्य के किस सीमा तक प्रयोग हुआ है इसकी जानकारी प्रदान करता है। इस लेखा परीक्षण का विषय क्षेत्र सीमित है। वर्तमान में सार्वजनिक उद्यमों में निष्पादन लेखा परीक्षण का उपयोग किया जा रहा है।

भारतीय लेखा परीक्षण और लेखा विभाग की स्थापना 1753 में हो गयी थी, परन्तु स्वतन्त्र भारत में लेखा परीक्षण का प्रारम्भ 1919 में हुआ था। महालेखापरीक्षक भारत-सरकार के नियन्त्रण से मुक्त था। जिसकी नियुक्ति भारत सचिव द्वारा होती थी, जो स्रमाट की इच्छा पर्यन्त अपने पद पर रहता था। गर्वनर जनरल की सपरिषद् के माध्यम से भारत सचिव को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता था। भारतीय शासन अधिनियम-1935 के द्वारा उसके स्तर एवं महत्व में वृद्धि की गयी, जिसे संघीय न्यायालय के न्यायाधीश के समान पदच्युत करने की प्रक्रिया द्वारा उठाया जा सकता था। कार्यपालिका से उसकी स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के सन्दर्भ में यह व्यवस्था की गयी की सेवानिवृत्ति के बाद वह ब्रिटिश क्राउन के अधीन अन्य कोई पद ग्रहण नहीं करेगा।

1950 में संविधान लागू होने के साथ ही भारत के महालेखा परीक्षक के पद का नाम बदलकर भारत का लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक कर दिया गया। सार्वजनिक कोषागार से धनराशि निकालने पर उसका नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया है, जो भारत के वित्तीय प्रशासन को लेखा नियंत्रक तथा महापरीक्षक की अविभाज्य सत्ता के अधीन कर दिया गया है। सामान्य रूप में भारत का लेखा नियन्त्रक तथा महापरीक्षक निम्न कार्यों को पूर्ण करता है-

- राजकोष तथा निगमों पर नियन्त्रण रखता है।
- सरकार के विरूद्ध उत्पन्न होने वाले मालिकाना अधिकारों को निपटाना तथा समायोजित करना।
- वह संघीय तथा राज्य सरकारों के उन समस्त आय-व्यय का लेखा परीक्षण करता है, जिनका सम्बन्ध आकस्मिकता निधि और सार्वजनिक लेखाओं से होता है।
- वह सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त उपक्रमों, कम्पनियों एवं सांविधिक निगमों के लेखाओं का परीक्षण करता है।
- संघीय एवं राज्यों के वार्षिक लेखाओं का संकलन करता है और अंकेक्षण प्रतिवेदन तैयार कर प्रस्तुत करता है।
- पूरे वित्तीय प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण की एक इकाई के रूप में काम करता है।

इस प्रकार लेखा नियन्त्रक तथा महापरीक्षक, कार्यपालिका के वित्तीय मामलों का लेखा परीक्षण कर संघीय व्यवस्था का प्रतिवेदन राष्ट्रपति के माध्यम से संसद में और राज्यों का प्रतिवेदन राज्यपाल कें माध्यम से विधान-मण्डल के समक्ष रखता है।

7.3.3 लेखा परीक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारतीय लेखा परीक्षण व्यवस्था एक प्रशासनिक कार्य के रूप में चलायमान है। नियंत्रक महालेखा परीक्षक संघ एवं राज्य के सन्दर्भ में अपना प्रतिवेदन संविधान की व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को सौंपता है, जो इसे संसद एवं विधान-मण्डल में प्रस्तुत करते हैं। इसी सन्दर्भ में पाल एच0 ऐपल्बी, लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के पद को समाप्त करने सम्बन्धी सिफारिश अपने भारतीय प्रशासन सम्बन्धी दूसरे प्रतिवेदन में

करते हैं। उनके अनुसार लेखा नियंत्रक तथा महापरीक्षक का कार्य उपनिवेशिक शासन की विरासत है। भारतीय प्रशासन में निर्णय करने तथा कार्य करने के प्रति जो व्यापक एवं घातक अनिच्छा हमें दिखाई पड़ती है, इसका मुख्य कारण लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक है।

भारतीय संविधान नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को यह आदेश देता है कि वह "यह सुनिश्चित करे कि लेखों में दिखायी गयी धनराशि वैधानिक रूप से जिस उद्देश्य के लिए निर्धारित की गयी थी, उसी में उपयोग हुई तथा सही समय पर विनियोजन के लिए स्वीकृति ली गयी" उक्त कथन भारत में लेखा परीक्षक के कार्य को कानूनी औपचारिकता तक ही सीमित कर देते हैं। व्यय के औचित्य के बारे में महालेखा परीक्षक को अपनी राय देने का काई वैधानिक अधिकार नहीं देते। जिस कारण महालेखा परीक्षक सार्वजनिक व्यय में अपव्यय, अविवेक अथवा दुरूपयोग पर साफ-साफ परिलक्षित होने पर भी प्रतिवेदन में इस प्रकार कोई टिप्पणियाँ अपवादस्वरूप व्यक्त करता है।

भारत में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के कार्यों को राज्यों एवं संघीय लेखा एवं लेखा परीक्षण विभाग, पेन्शन से सम्बधित और केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए पृथकता न पाया जाना हमारी व्यवस्था की एक बड़ी कमजोरी को दर्शाता है।

भारतीय लेखा परीक्षण की आलोचना की जाती है कि यह ब्रिटिश प्रशासन प्रणाली पर आधारित है, जिसमें महालेखा परीक्षक को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान है। लेखा परीक्षक देश के वित्त का प्रहरी होता है। साविधिक लेखा परीक्षण हमारे संविधान के प्रमुख लक्षणों में है और यह सरकार के उद्देश्यों में बांधक नहीं अपितु लोकतान्त्रिक सरकार के मूल आवश्यकताओं में से है। लेखा परीक्षक व्यय की दिशा में प्रवाहित होने वाले सार्वजनिक धन को स्वस्थ्य अभिकरण प्रदान करता है, अतः इसे समाप्त या शिथिल नहीं किया जा सकता। अशोक चन्द्रा का कथन इस स्थान पर उद्धत करना उचित ही होगा कि "सभी मान्य प्रजातन्त्रों में लेखा-परीक्षण किसी आवश्यक बुराई के रूप में सहन नहीं किया जाता बल्कि एक मूल्यवान मित्र समझा जाता है। एक ऐसा मित्र जो व्यक्तियों की प्रक्रिया सम्बन्धी गलतियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करता है, भले ही वे गलतियाँ निर्णय सम्बन्धी त्रुटियों, लापरवाही या बेईमानी के कार्यों अथवा अभिप्रायों से सम्बन्धित हो। दुर्भाग्य से भारत में पूरक सम्बन्धी इस अवधारणा का अभी विकसित होना शेष है। यहाँ तो लेखा परीक्षण को बाहरी कुछ असंगत तथा कुछ अवरोधक

क्रिया समझा जाता है। इस प्रकार प्रशासकीय प्रणाली में लेखा परीक्षक के सुझावों को मानने में स्वाभाविक विरोध विकसित होने लगा है। यह प्रवृत्ति अभी हाल के वर्षों में अधिक विकसित हो गयी है। वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारण स्वीकार किए जाने के साथ ही उद्देश्य प्रयत्न तथा सफलता की आवश्यकता का विकास होना आवश्यक है। इस प्रकार लेखा-परीक्षण तथा प्रशासन के मध्य दृष्टिकोण के पुनर्रावलोकन तथा सम्बन्धों के पुर्नसंयोजन की आवश्यकता का सर्वाधिक महत्व बढ़ गया है।''

7.4 लेखांकन एवं लेखा परीक्षण का पृथक्करण

भारत में 1976 तक लेखांकन तथा लेखा परीक्षण का कार्य एक ही संस्था नियत्रक तथा महालेखाकार कार्यालय के अधिकार में था तथा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक दोनों कार्यों के लिए उत्तर दायी था, लेकिन अन्य देशों में ये कार्य पृथक-पृथक पाये जाते हैं। भारत में प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित अनेक समितियों- मुडीमैन समिति (1924), इंचकेप समिति (1923), साइमन समिति (1926) आदि ने लेखांकन और लेखा परीक्षण के पृथक्करण की सिफारिश की थी। स्वतन्त्र भारत के प्रथम नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक नरहरि राव ने इस संयुक्त प्रणाली की कटु आलोचना की थी। उत्तर प्रदेश विधान-मण्डल के प्रथम अध्यक्ष श्री राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन ने 1952 में नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय में गबन की घटना का उल्लेख करते हुए निम्न विचार व्यक्त किया कि, ''जब एक ही कार्यालय हिसाब तैयार करता है और हिसाब की जाँच करने का कार्य भी करता है तो बेईमानी की काफी सम्भावना रहती है, क्योंकि ऐसा काम करने वाला व्यक्ति यह जानता है कि वह यदि किसी प्रकार गड़बड़ करेगा तो भी वह पकड़ा नहीं जायेगा क्योंकि अंत में उसे ही लेखा परीक्षण करना है।'' लोक लेखा समिति तथा लोक सेवा समिति ने भी दोनों के प्रथक्करण की सिफारिश की। अतः उपरोक्त सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए 1976 में केन्द्र सरकार ने लेखांकन एवं लेखा परीक्षण को पृथक कर दिया तथा केन्द्र सरकार के स्तर पर नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक को लेखांकन के दायित्व से मुक्त कर दिया गया।

वस्तुतः लेखांकन एवं लेखा परीक्षण को पृथक करना वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में एक तार्किक सुधार माना जाता है। इसके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक तर्क दिए जाते हैं।

7.4.1 लेखांकन एवं लेखा परीक्षण से पृथक्करण के पक्ष में तर्क

1. लेखा के कार्यों की प्रकृति कार्यकारी है। जबकि लेखा परिक्षण के कार्यों की प्रकृति अर्द्ध-विधायकीय है। इन दोनों कार्यों की प्रकृति में अन्तर होने के कारण इनको पृथक किया जाना उचित है।
2. वित्तीय प्रशासन के अनुशासन के लिए भी उचित नहीं दिखता, कि जो अधिकारी लेखा के लिए उत्तर दायी हो, स्वयं उसी के द्वारा लेखा परीक्षण किया जाए। अतः निष्पक्ष लेखा परीक्षण की प्रणाली को विकसित करने हेतु दोनों कार्यों को एक-दूसरे से पृथक किया जाना चाहिए।
3. अगर दोनों कार्यों को एक ही अधिकारी के क्षेत्राधिकार में शामिल किया जाता है, तो उसका कार्यभार अत्यधिक होता है। परिणामस्वरूप वह लेखा परीक्षण जैसे गम्भीर अध्ययन एवं विश्लेषण-उन्मुखी कार्य की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाता। अतः पृथककरण के आधार पर नियंत्रक व महालेखा परीक्षक अपना अधिकतम ध्यान लेखा परीक्षण पर दे सकता है।
4. नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के पास कार्यभार अधिक होने के कारण लेखा को अंतिम रूप देने में अधिक समय लगता है, जिससे लेखा परीक्षण के कार्य में भी अनावश्यक विलम्ब होता है।
5. नियंत्रक व महालेखा परीक्षण के द्वारा लेखा के कार्य सम्पन्न किये जाने के कारण संबंधित मंत्रालयों एवं विभागों को समय पर अपने वित्तीय लेन-देन की तात्कालिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में व्यय पर नियंत्रण रखना मंत्रालय के लिए कठिन हो जाता है। अतः अत्यधिक व्यय की सम्भावना को देखते हुए लेखांकन एवं लेखा परीक्षण का पृथक्करण किया जाना चाहिए और लेखांकन का कार्य संबंधित विभाग को सौंपा जाना चाहिए।
6. दोनों कार्यों का पृथक्करण होने के उपरान्त इनमें विशेषीकरण को प्राप्त करना अधिक संभव है।

7.4.2 लेखांकन एवं लेखा परीक्षण से पृथक्करण के विपक्ष में तर्क

1. इंग्लैण्ड में लेखा एवं लेखा परीक्षण के कार्यों को अलग रखा गया है, लेकिन वहाँ से भी अत्यधिक व्यय होने की सूचनाऐं समय-समय पर प्राप्त होती रहती हैं। अर्थात् यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, कि पृथक्करण के माध्यम से अत्यधिक व्यय रोका जा सकता है। भारत में भी केन्द्र सरकार के स्तर पर पृथक्करण के उपरान्त भी अत्यधिक व्यय की शिकायतें मिलती रही हैं।

2. मंत्रालय के कार्यभार को उनके मौलिक उद्देश्यों तक सीमित रखने हेतु भी यह आवश्यक है कि लेखा एवं लेखा परीक्षण का पृथक्करण किया जाये।
3. लेखा एवं लेखा परीक्षण के पृथक्करण की प्रक्रिया में अधिक वित्तीय एवं मानवीय संसाधनों की आवश्यकता होगी अर्थात् पृथक्करण से व्यय में वृद्धि एवं मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग नहीं होगा।
4. पृथक्करण के पश्चात लेखा कर्मचारी राज्य सरकारों के नियंत्रण के अन्तर्गत आ जायेंगे। ऐसी अवस्था में वे कार्यपालिका की आलोचना करने तथा अति व्यय को रोकने में कम स्वतंत्र होंगे।
5. अलग-अलग विभागों द्वारा लेखांकन कार्य सम्पन्न होने से लेखाओं के संकलन में अत्यधिक विलम्ब होगा। वर्तमान प्रणाली में नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के कार्यालय में संकलन अविलम्ब किया जा सकता है।
6. इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि दोनों को पृथक कर देने से बेहतर परिणाम आयेंगे, क्योंकि प्रतिरक्षा एवं रेलवे विभागों में काफी दिनों से लेखांकन का उत्तर दायित्व विभागों को सौंपा गया है, लेकिन न तो अधिक कार्यकुशलता का कोई संकेत मिला है और न ही बजट पर प्रभावशाली नियंत्रण कायम हुआ है।
7. लेखा परीक्षण की वास्तविकता को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि नियंत्रक व महालेखा परीक्षक का नियंत्रण लेखा पर भी होना चाहिए, क्योंकि अंततः ये दोनों कार्य भिन्न होते हुए भी परस्पर निर्भर हैं।
8. वर्तमान प्रणाली ने राज्य सरकार के स्तर पर समय की माँग को पूरा किया है। अतः इसमें कोई मौलिक परिर्वतन करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भारत में लेखा एवं लेखा परीक्षण के कार्य को पृथक करने का सुझाव दिया। केन्द्र सरकार के स्तर पर इस सुझाव को व्यवहारिक रूप भी दिया गया एवं राज्य सरकारों से यह अपेक्षा की गयी कि वे अपनी सुविधानुसार पृथक्करण की दिशा में प्रयास कर सकते हैं, लेकिन अत्यधिक व्यय की संभावना के कारण राज्य सरकारें इस दिशा में कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठा पा रही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नकद लेखा पद्धति क्या है?
2. लोकलेखा की प्रमुख विशेषताओं को समझाइए।

3. नियंत्रक महालेखा परीक्षक किन शीर्षकों के अन्तर्गत लेखा तैयार करता है?
4. भारतीय लेखा परीक्षण और लेखा विभाग की स्थापना किस सन् में की गयी?
5. केन्द्र सरकार के लेखांकन के कार्य से नियन्त्रक और महालेखा पीरक्षक को कब अलग किया गया?

7.5 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हमें लेखांकन के अर्थ, महत्व एवं इसकी विशेषताओं को जानने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके अध्ययन के साथ ही साथ लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियों का भी अध्ययन कर सका और लेखांकन से होने वाले लाभ एवं हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता के बारे में जानने और समझाने को मिला है। यही नहीं इस इकाई में हमने भारतीय लोक लेखा व्यवस्था का भी अध्ययन किया और जिसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की है।

यहाँ हम यह भी बताना चाहते हैं कि हमने इस इकाई में लेखा परीक्षण के अर्थ, महत्व, विधियों एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया का भी विस्तृत अध्ययन किया है, जिसमें इसके विभिन्न पक्षों को जानने को मिला है। अंततः हमने लेखांकन एवं लेखा परीक्षण में अन्तर करते हुए उसके लाभ, हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में अध्ययन किया है, जिसमें हमने देखा कि लेखा के कार्यों की प्रकृति कार्यकारी है, जबकि लेखा परीक्षण के कार्यों की प्रकृति अर्द्ध-विधायकीय है।

7.6 शब्दावली

लेखा अनुदान- संसद द्वारा अनुमानित व्यय के सम्बन्ध में दिए गये अग्रिम स्वीकृति को लेखा अनुदान कहते हैं, जो बजट की प्रक्रिया पूरी किए बिना आगामी वित्तीय वर्ष के लिए संसद द्वारा स्वीकृत होती है।

लेखा- 'लेखा' का आशय है, संगठन के वित्तीय लेन-देन का समुचित विवरण तैयार करना। लेखा के द्वारा यह सुनिश्चित करना होता है कि धन का इस्तेमाल वैधानिक रीति से उन्हीं उद्देश्यों के लिए किया गया है, जिनके लिए संसद से उसकी मंजूरी प्रदान की थी। लेखा के अन्दर वित्तीय कामकाज के बारे में सच्चे आँकड़ें होने चाहिए। व्यय करने वाले अधिकारियों द्वारा खर्च किए गये एक-एक पैसे का हिसाब उसमें अंकित होना चाहिए।

पूर्व लेखा परीक्षण- किसी लेन-देन के तत्वों के पूर्ण होने एवं अंतिम लेखा विवरण के रूप में दर्ज किए जाने से पहले का परीक्षण है। यह प्रबन्ध का एक साधन है तथा किसी विभाग में जारी लेन-देन की परिशुद्धता एवं वैधानिकता के ऊपर प्रशासनिक नियंत्रण रखने का काम करता है।

उत्तर लेखा परीक्षण- यह लेखा परीक्षण लेन-देन के पूर्ण हो जाने तथा उनको विवरण के रूप में अन्तिम रूप से दर्ज कर लेने के बाद इनके परीक्षण से है। उत्तर लेखा परीक्षण तब किया जाता है, जब धन वास्तविक रूप से खर्च कर दिया जाता है। वास्तविक रूप से इसी को लेखा परीक्षण कहते हैं।

आन्तरिक लेखा परीक्षण- इसे विभागीय या प्रशासकीय लेखा परीक्षण कहते हैं। विभागीय अंकेक्षकों द्वारा विभाग के व्यय की राशि का अभिलेख बनाकर लेखा परीक्षण करते हैं, तो इसे आन्तरिक लेखा परीक्षण कहते हैं।

बाहरी लेखा परीक्षण- जब विभाग द्वारा व्यय की राशि एवं वित्तीय अभिलेख का बाहर के लेखा परीक्षकों द्वारा परीक्षण किया जाता है, तो उसे बाहरी लेखा परीक्षण कहते हैं।

लेखा परीक्षण प्रतिवेदन- लेखा परीक्षण के परिणामों के अनुसार व्यय की नियमितता एवं औचित्य पर आवश्यक एवं उचित/न्यायसंगत टिप्पणियों का प्रपत्र लेखा परीक्षण प्रतिवेदन कहलाता है।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 19.2.2.1 शीर्षक का अध्ययन करें, **2.** इस प्रश्न के उत्तर के लिए 19.2.2 शीर्षक का अध्ययन करें, **3.** इस प्रश्न के उत्तर के लिए 19.3.2 शीर्षक का अध्ययन करें, **4.** 1753, **5.** 1976

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुन्दरम, के0पी0, (1990), भारतीय लोक वित्त एवं वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।
2. भट्टाचार्य, माहित, (2000), लोक प्रशासन के नए आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3. कौर, इन्द्रजीत, (2000), लोक प्रशासन, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
4. अवस्थी, ए0 पी0,(2000), वित्त प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

5. देशमुख, नीलिमा, (1998), आर्थिक नीति और प्रशासन, कालेज बुक डिपो, जयपुर।

6. दुबे, रमेश, शर्मा, हरिश्चन्द्र, (1998), भारत में लोक प्रशासन, कालेज बुक डिपो, जयपुर।

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. थावराज, एम0 जे0 के0, (1982), भारत का वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस नई दिल्ली।

2. भार्गव, आर0 एन0, (1980), भारतीय लोक वित्त , बी0 डी0 भार्गव एंड सन्स, चंदौसी।

3. लाल, जी0 एस0, (1982), भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच0 पी0 कपूर, नई दिल्ली।

4. सिन्हा, आर0 के0, (1992), भारत में राजकोषीय संघवाद, स्टर्लिग, नई दिल्ली।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकतंत्र में लेखा परीक्षण के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

2. लेखा परीक्षण प्रतिवेदन के महत्व एवं प्रशासनिक उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

3. लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के औचित्य को समझाइए।

इकाई- 8 पंचायती राज और तिहत्तरवां(73वां) संविधान संशोधन अधिनियम

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 पंचायती राज

8.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायती राज

8.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज

8.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

8.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ

- 8.6.1 बलवंत राय मेहता समिति
- 8.6.2 अशोक मेहता समिति
- 8.6.3 जी0वी0के0 समिति
- 8.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति
- 8.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

8.7 तिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम

- 8.7.1 तिहत्तरवें संविधान संशोधन के पिछे सोच
- 8.7.2 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की मुख्य बातें
- 8.7.3 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताऐं

8.8 स्थानीय स्वशासन और पंचायतें

8.9 सारांश

8.10 शब्दावली

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

शासन प्रणालियों के विकास क्रम में मनुष्य ने अनेक प्रकार की शासन प्रणालियों को अपनाया। शासन प्रणालियों का कोई भी स्वरूप चाहे वह तानाशाही शासन हो, राजशाही शासन, सैनिक शासन, साम्यवादी शासन या लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, ये सभी शासन प्रणालियाँ भौगोलिक परिस्थितियों के परिणाम ना होकर व्यक्ति के विचारों और सिद्धान्तों का परिणाम हैं। शासन प्रणालियों के विकास क्रम में ज्यादातर समय राजशाही व तानाशाही शासन प्रणाली का रहा, किन्तु एक बेहतर जीवन की खोज में व्यक्ति का संघर्ष लगातार जारी रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति ने अपने ऊपर शासन के लिए स्वयं को शासक बनाने का निश्चय किया और लोकतंत्र या प्रजातंत्र शासन प्रणाली का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्र में भी सबसे निचले स्तर तक के व्यक्ति के हाथों में सत्ता की पहुँच हो और वो शासन के कार्यों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके इसके लिए शासन-सत्ता का एक जगह केन्द्रीकरण ना करके इसके विकेन्द्रीकरण को अपनाया गया। सत्ता विकेन्द्रीकरण की सोच ने स्थानीय स्वशासन को जन्म दिया और सबसे निचले स्तर पर पंचायती और नगरीय शासन का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में ही सत्ता का विकेन्द्रीकरण संभव है। आज हम सभी भारत में पंचायती राज और नगरीय शासन से अच्छी तरह परिचित हैं।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्रता के बाद भारत में पंचायतों की स्थिति के संबंध में जान पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन के बारे में जान पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन को वैधानिक रुप देने के लिए संविधान में 73वें संविधान संशोधन के विषय में जान पायेंगे।
- 73वें संविधान संशोधन के पिछे सोच के कारणों का ज्ञान होगा।
- 73वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में मौजुद मुख्य बिन्दुओं की जानकारी मिलेगी।

8.2 पंचायती राज

पंचायती राज का इतिहास कोई नया नहीं अपितु यह आदिकाल से हमारी पुरातन धरोहर है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में सामुदायिकता की भावना प्राचीन काल से विद्यमान रही है। इसी सामुदायिकता व परम्परागत संगठन के आधार पर पंचायत व्यवस्था का जन्म हुआ। इसीलिए हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था भी सदियों से चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के विकास के साथ-साथ पंचायती व्यवस्था का जन्म और विकास हुआ। पंचायत शब्द पंच+आयत से बना है। 'पंच' का अर्थ है, समुदाय या संस्था तथा 'आयत' का अर्थ है विकास या विस्तार। अतः सामूहिक रूप से गाँव का विकास ही पंचायत का वास्तविक अर्थ है। ये संस्थाऐं हमारे समाज की बुनियादी संस्थाऐं हैं और किसी न किसी रूप में ये संस्थाऐं हमारी संस्कृति व शासन-प्रणाली का अभिन्न हिस्सा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास, प्रशासन व न्याय की जिम्मेदारी इन्हीं संस्थाओं की थी। राजा, महाराजा भी स्थानीय स्तर पर काम-काज के संचालन हेतु इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर रहते थे। स्थानीय स्तर पर सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में न रह कर सामूहिक रहती थी। इसीलिए इन्हें गणतन्त्र की स्थानीय इकाईयों के रूप में मान-सम्मान दिया जाता था। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबन्ध, शान्ति और सुरक्षा की एकमात्र संस्थाऐं रही हैं। डॉ0 राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि ये समस्त जनता की सामान्य सभा के रूप में अपने सदस्यों के समान अधिकारों, स्वतंत्रताओं के लिए निर्मित होती हैं, ताकि सब में समानता, स्वतंत्रता तथा बुधुत्व का विचार दृढ़ रहे। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में पंचायती राज का गौरवशाली अतीत रहा है।

प्राचीन काल में पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। यद्यपि इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा नहीं प्राप्त था लेकिन गांवों से जुड़े विकास व न्याय सम्बन्धित निर्णयों के लिए ये संस्थाऐं पूर्ण रूप से जिम्मेदार थीं। प्राचीन काल में गाँवों में पंच परमेश्वर की प्रणाली मौजूद थी। गाँव में सर्वसहमति से चुने गये पाँच गणमान्य व बुद्धिमान व्यक्तियों को गाँव में न्याय व्यवस्था बनाये रखने व गाँव के विकास हेतु निर्णय लेने का अधिकार था और उन्हें तो पंच परमेश्वर तक कहा जाता था। पंच परमेश्वर द्वारा न्याय को सरल और सुलभ बनाने की प्रथा काफी मजबूत थी। उस समय ये पंच एक संस्था के रूप में कार्य करते थे। गाँव के झगड़े, गाँव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे मुख्य कार्य पंच परमेश्वर संस्था किया करती थी। उसके कायदे-कानून लिखित नहीं होते थे फिर भी उनका प्रभाव समाज पर ज्यादा होता था। पंचों के फैसले के खिलाफ जाने की कोई सोच भी नहीं सकता था। पंचों का सम्मान बहुत था व उनके पास समाज का भरोसा और ताकत भी थी। लोग पंचों के प्रति बड़ा विश्वास रखते थे और उनका निर्णय सहज स्वीकार कर लेते थे। पंच परमेश्वर भी बिना किसी पक्षपात के निर्णय किया करती थी। मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानी पंच परमेश्वर द्वारा प्राचीन काल में स्थापित इस पंच प्रणाली को काफी सरल तरीके से समझाया है। प्राचीन काल में जातिगत व कबाइली पंचायतों का भी जिक्र भी मिलता है। इन पंचायतों के प्रमुख गाँव के विद्वान व कबीले के मुखिया हुआ करते थे। इन पंचायतों में कोई भी निर्णय लेने हेतु तब तक विचार-विमर्श किया जाता था जब तक कि सर्वसहमति से निर्णय न हो जाये।

8.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायत व्यवस्था

राजा-महाराजा काल में स्थानीय स्वशासन को काफी महत्व दिया गया। उनके द्वारा भी जनता को सत्ता सौंपने की प्रथा को अपनाया गया। भारत जैसे विशाल देश को एक केन्द्र से शासित करना राजाओं व सम्राटों के लिए सम्भव नहीं था। अतः राज्य को सूबों, जनपदों, ग्राम समितियों अथवा ग्राम सभाओं में बांटा गया। वेदों, बौद्ध ग्रन्थों, जातक कथाओं, उपनिषदों आदि में इस व्यवस्था के रूप में पंचायतों के आस्तित्व के पूर्ण साक्ष्य मिलते हैं। मनुस्मृति तथा महाभारत के 'शांति-पर्व' में ग्राम सभाओं का उल्लेख है। रामायण में इसका वर्णन जनपदों के नाम से आता है। महाभारत काल में भी इन संस्थानों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वैदिक कालीन तथा उत्तर -वैदिक कालीन इतिहास के अवलोकन में यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा सा स्वायत्त राज्य था। इस प्रकार के कई छोटे-छोटे गाँवों और छोटे-छोटे प्रादेशिक संघ मिलकर बड़े संघ बन जाते थे। संघ,

पूर्णतः स्वावलम्बी थे तथा एक-दूसरे से बड़ी अच्छी तरह जुड़े हुए तथा सम्बन्धित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी गाँवों के छोटे-छोटे गणराज्यों की बात कही गई है। सर चार्ल्स मेटकाफ ने तो पंचायतों को गाँव के छोटे-छोटे गणतन्त्र कहा था जो स्वयं में आत्मनिर्भर थे। बौद्ध व मौर्य काल के समय पंचायतों के आस्तित्व की बात कही गई है। बौद्ध काल के संघों की कार्य-पद्धति ग्राम राज्य की प्रथा को दर्शाती है। बौद्ध संघों के शासन की प्रणाली वस्तुतः भारत की ग्राम पंचायतों तथा ग्राम संघों से ही ली गई थी। गुप्त काल में भी ग्राम समितियां, पंचायतों के रूप में कार्य करती थीं। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के वृतान्त से उसके बारे में काफी सामग्री मिलती है। मैगस्थनीज के वृतान्त से उस समय के नगर प्रशासन तथा ग्राम प्रशासन पर खासा प्रकाश पड़ता है। नगरों का प्रशासन भी पंचायत-प्रणाली से ही होता था और पाटलिपुत्र का प्रशासन उसकी सफलता का सूचक है। मैगस्थनीज के अनुसार नगर प्रशासन भी ग्राम प्रशासन की भांति ही होता था। नगर का शासन एक निर्वाचित संस्था के हाथ में होता था, जिसमें 30 सदस्य होते थे। सदस्य 06 समितियों में विभक्त होते थे। प्रत्येक समिति अलग-अलग विषयों का प्रबन्धन करती थी। कुछ विषय अवश्य ऐसे थे जो सीधे राजकीय नियंत्रण में होते थे।

प्राचीन काल में राजा लोग महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय इन पंचायतों से पूर्ण विचार-विमर्श करते थे। स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाऐं, स्थानीय स्तर पर अपना शासन खुद चलाती थीं। लोग अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्याऐं स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। यह कह सकते हैं कि हमारे गाँव का काम गाँव में और गाँव का राज गाँव में था। पंचायतें हमारे गाँव समाज की ताकत थी।

ग्रामों के इस संगठनों की सफलता का रहस्य केवल यह था कि ग्रामीण अपने अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की अधिक चिंता करते थे। इस तरह भारत के ग्रामों के संगठन की परम्परा उत्पन्न हुई, पनपी और इसमें दीर्घकाल तक की सफलता से देश के ग्रामीणों को समृद्ध, सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर बनाया। पंचायतों के कारण ही काफी समय तक विदेशी अपना आर्थिक प्रभुत्व जमाने में असमर्थ रहे।

मध्य काल में पंचायतों के विकास पर खास ध्यान नहीं दिया गया। इस दौरान समय-समय पर विदेशियों के आक्रमण भारत में हुए। मुगलों के भारत में आधिपत्य के साथ ही शासन प्रणाली में नकारात्मक बदलाव आये। लोगों की अपनी बनाई हुई व्यवस्थाऐं चरमराकर धराशायी हो गई। समस्त सत्ता व शक्ति बादशाह व उसके खास

कर्मचारियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। यद्यापि मुगल बादशाह अकबर द्वारा स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया गया और उस समय ग्राम स्तरीय समस्त कार्य पंचायतों द्वारा ही किया जाता था। लेकिन अन्य शासकों के शासनकाल में पंचायत व्यवस्था का धीरे-धीरे विघटन का दौर शुरू हुआ जो ब्रिटिश काल के दौरान भी अंग्रेजों की केन्द्रीकरण की नीति के कारण चलता रहा। पंच-परमेश्वर प्रथा की अवहेलना से पंचायतों व स्थानीय स्वशासन को गहरा झटका लगा, जिसके परिणाम स्वरूप जो छोटे-छोटे विवाद पहले गाँव में ही सुलझ जाया करते थे, अब वह दबाये जाने लगे व सदियों से चली आ रही स्थानीय स्तर पर विवाद निपटाने की प्रथा का स्थान कोर्ट-कचहरी ने लेना शुरू किया। जिन प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा व उपयोग गाँव वाले स्वयं करते थे वे सब अंग्रेजी शासन के अर्न्तगत आ गये और उनका प्रबन्धन भी सरकार के हाथों चला गया। स्थानीय लोगों के अधिकार समाप्त हो गये। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासन की परम्परा प्राचीन काल में काफी मजबूत थी। स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं जन-समुदाय की आवाज हुआ करती थी। वर्तमान की पंचायत व्यवस्था का मूल आधार हमारी पुरानी सामुदायिक व्यवस्था ही है। यद्यपि मध्यकाल व ब्रिटिश काल में पंचायती राज व्यवस्था लडखड़ा गई थी, लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के लिए पुनः प्रयास शुरू हुए और पंचायती राज व्यवस्था भारत मे पुनः स्थापित की गई। जिसके बारे में आप आगे विस्तार से अध्याय करेंगे।

8.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुधार हेतु विशेष प्रयास नहीं हुए जिस कारण पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं का मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये, परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गये। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ कार्यशील बनी। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।

ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रजों शासन काल मे सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोटे-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं कमजोर बना दी गयी या पूरी तरह समाप्त कर दी गयी। धीरे-धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गयी और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहाँ प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्त-प्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गयी। 1919 में ''मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार'' के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई, जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही गई और दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक बनाने तक का अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों का पूरा कामकाज पंचायतें ही चलाती थीं। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का 73वॉ संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

8.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गाँधी जी ने कहा था- ''सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गाँव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।'' गाँधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद- 40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रुप में देख गया और गाँववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

8.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ

पंचायतों के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समितियां गठित की गयी-

8.6.1 बलवंत राय मेहता समिति

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी-

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।
2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाऐं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।
4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास सम्बन्धी कार्यक्रम व योजनाऐं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 02 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे-धीरे गाँवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयी। कई राज्यों में वर्षों तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाऐं निष्क्रीय हो गयी।

8.6.2 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री "अशोक मेहता" की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं मे आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये-

1. समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे- जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।
2. जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।
3. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।
4. पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।
5. कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक हैं।
6. पंचायती राज संस्थाऐं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।
7. राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।
8. देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी शिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज चड्डा ने इस

विषय पर लिखा कि ‘‘मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।’’

8.6.3 जी0वी0के0 समिति

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण(विकास) की प्रक्रिया में सन् 1985 में ‘जी0वी0के0 राव समिति’ गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण और उसके संचालन करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

8.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति

1986 में डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी सामिति ने ‘गाँव पंचायत’ (ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही, जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

8.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया, जो मुख्य रुप से केन्द्र व राज्यों के संबंधों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिक शक्तियाँ देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की शिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व0 राजीव गाँधी की सरकार ने गाँवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गाँधी का विचार था कि जब तक गाँव के लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गाँव वालों के खासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। लोक सभा ने 10

अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगर राज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 2 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाऐं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल से लागू हो गया।

8.7 तिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चात देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीन जब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गयी। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गयी। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहाँ स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गयी है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गाँधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। 'पंचायती राज' स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

8.7.1 तिहत्तरवें संविधान संशोधन के पिछे सोच

पंचायतों को मजबूत करने, अधिकार सम्पन्न बनाने और स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

1. निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रकिया शुरू करना।
2. स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
3. ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गाँव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।
4. लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।
5. स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

8.7.2 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। महात्मा गाँधी जी का कहना था कि, ''देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गाँवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गाँव के लिये नियोजन की प्राथमिकता का चयन लोग स्वयं करेंगे। ग्रामीण अपने गाँव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्राम विकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी देगी।'' गाँधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है-

1. 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाऐं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाऐं हैं।
2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गाँवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गाँव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।
7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायत 06 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 06 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।

12. उक्त संशोधन के अन्तर्गत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गयी है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

8.7.3 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताऐं

73वां संविधान संशोधन अधिनियम पंचायती राज से संबंधित है, जिसमें पंचायतों से संबंधित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्नलिखित विशेषताऐं हैं-

1. संविधान में ''ग्राम सभा'' को पंचायती राज की आधारभूत इकाई के रुप में स्थान मिला है।
2. पंचायतों की त्रीस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
3. प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की वयवस्था है।
4. 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।

5. अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पांच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 06 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।
6. अधिनियम के द्वारा पंचायतों से संबंधित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तर दायी बनाया गया है।
7. अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतों के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो। जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सकें।

8.8 स्थानीय स्वशासन और पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थाऐं हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूँकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं, और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाऐं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाऐं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगी व उसे लागू करेंगी। गाँव के लिये कौन सी योजना बननी है? कैसे क्रियान्वित करनी है? क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा? ये सभी कार्य पंचायतें गाँव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी, जब लोग मिलजुल कर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों से अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत

और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें, ताकि ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक बन सकें।

गाँवों का विकास तभी सम्भव है, जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गाँव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गाँव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी, तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

अभ्यास प्रश्न-

1. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया?
2. पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए संविधान में..... संविधान संशोधन किया गया।
3. भारत में किस सन् में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये?
4. बलवंत राय समिति का गठन कब किया गया?
5. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्री-स्तरीय पंचायती राज की बात कही?
6. राजस्थान वह पहला राज्य है, जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी। सत्य/असत्य
7. राजस्थान के किस जिले में 02 अक्टूबर 1958 को पंचायती राज की शुरूआत की गयी?
8. किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?
9. के0जी0वी0 राव समिति कब गठित की गयी?
10. किस समिति ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?

8.9 सारांश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गाँधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति, जी0के0वी0 राव समिति, एल0एम0 सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय समिति की जाँच के बाद पारित हुआ। 73वें संविधान संशोधन से गाँधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गाँधी जी हमेशा से गाँव

की आत्मनिर्भता पर जोर देते रहे। गाँव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें सविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है।

8.10 शब्दावली

सुदृढ़िकरण- सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया, प्रबलतम- मजबूत, स्वावलम्बन- आत्मनिर्भरता, नगण्य- नहीं के बराबर (अनुपस्थित), हस्तांतरण- एक स्थान से दुसरे स्थान पर, त्रीस्तरीय - तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार, **2.** 73वां संविधान संशोधन, **3.** 1952, **4.** 1960, **5.** बलवंत राय मेहता समिति, **6.** सत्य, **7.** पंडित जवाहर लाल नेहरू, नागौर जिला, **8.** अशोक मेहता समिति, **9.** 1985, **10.** सिंघवी समिति

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम।
2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर।

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के0के0 शर्मा।
2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू।
3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी।
4. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंचायती राज से आप क्या समझते हैं? इसके इतिहास और संवैधानिक पहलुओं की व्याख्या करें।
2. 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की उपयोगिता पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 9 चौहतरवां(74वां) संविधान संशोधन और नगरीय स्थानीय सरकार

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 चौहतरवां संविधान संशोधन

9.2.1 चौहतरवें संविधान संशोधन के पीछे सोच

9.2.2 चौहतरवें संविधान संशोधन का उद्देश्य

9.2.3 चौहतरवें संविधान संशोधन की आवश्यकता

9.2.4 चौहतरवें संविधान संशोधन की विशेषताऐं

9.3 नगरीय स्थानीय सरकार

9.3.1 नगरीय स्थानीय सरकार- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

9.3.2 नगरीय स्थानीय सरकार की कार्य एवं शक्तियाँ

9.4 नगरीय स्थानीय सरकार से संबंधित विषय

9.5 नगरीय स्थानीय सरकार के कार्य एवं शक्तियाँ

9.6 सांराश

9.7 शब्दावली

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान का 73वां और 74वां संविधान संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम हैं। 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इस अध्याय में हम 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करेंगे। भारत विश्व में सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोकतंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है, सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। अर्थात केन्द्र स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर गाँव इकाई तक सत्ता व शक्ति का बंटवारा ही विकेन्द्रीकरण कहलाता है। विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान थी। राजा/महाराजाओं के समय भी सभा, परिषद, समितियां, सूबे आदि के माध्यम से शासन चलाया जाता था। लोगों को उनकी जरुरतें पूरी करने के लिए निर्णयों में हमेशा महत्वपूर्ण सहभागी माना जाता था। लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, लोगों को शासन व लोक विकास में भागीदारी से अलग कर दिया गया तथा उनके अपने हित व विकास के लिए बनाई जाने वाले कार्यक्रम व नीतियों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का नियंत्रण होता गया।

परन्तु यह प्रक्रिया जनता की जरूरतों को पूरी नहीं कर पाती थी। विकास गतिविधियों को चलाने में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित नहीं करती थी और लोगों को भी यह नहीं लगता था कि लागू की जा रही योजना अथवा कार्यक्रम उनका अपना है। इसलिए यह महसूस किया गया कि लोगों को कार्य योजनाऐं स्वयं बनानी चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं का पता होता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं एवं वे अपने विकास में सहभागी बन सकते हैं? अतः यह महसूस किया गया कि लोगों के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से नीचे से उपर की ओर होनी चाहिये, क्योंकि लोगों को अपनी जरूरतों की पहचान होती है जिससे वे योजनाओं के वरीयता क्रमों को निर्धारित करते हुए योजना बना सकते हैं। कार्यक्रम क्रियान्वित करने वाले कार्मिक जनता/समुदाय की योजनाओं को समेकित कर सकते हैं। शासन के सबसे छोटे स्तर से लोगों की सहभागिता व शासन में सीधी भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए संविधान का 73वां व 74वां संविधान संशोधन एक प्रमुख कदम है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- चौहत्तरवें संविधान संशोधन के संबंध में जान पायेंगे।
- चौहत्तरवें संविधान संशोधन के अन्तर्गत नगर निकायों के विषय में दी गयी धाराओं के विषय में जान पायेंगे।
- नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध, गठन, कार्यकाल, उसकी बैठक और कार्यवाहियों को समझ पायेंगे।
- नगर निकायों से संबंधित विषय, उनके कार्य एवं शक्तियाँ के विषय में जान पायेंगे।

9.2 चौहतरवां संविधान संशोधन

भारत में स्थानीय स्तर पर शासन-सत्ता को संवैधानिक दर्जा देने और मजबूती प्रदान करने के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन किया गया। जहाँ 73वां संविधान संशोधन ग्राम स्तर पर पंचायतों के माध्यम से शासन-सत्ता संचालन की कानूनी मान्यता देता है, वहीं 74वां संविधान संशोधन शहरी स्तर पर नगर निकायों के माध्यम से शासन-सत्ता संचालन की कानूनी मान्यता देता है तथा अंतिम व्यक्ति को शासन-सत्ता में भागीदारी का मौका देता है।

9.2.1 चौहतरवें संविधान संशोधन के पीछे सोच

74वें संविधान संशोधन अधिनियम के पिछे निम्नलिखित सोच थी-

1. संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।
2. इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गयी है।
3. नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गयी है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुँच बढ़ाई गयी है।

4. समाज के कमजोर वर्गों, जैसे- महिलाओं, अनुसूचित जाति व जनजाति और पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।
5. 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।
6. इस संविधान संशोधन की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुँचाना सुनिश्चित करना है।

9.2.2 चौहतरवें संविधान संशोधन का उद्देश्य

चौहतरवें संविधान संशोधन के निम्न उद्देश्य हैं-

1. देश में नगर संस्थाओं, जैसे- नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।
2. नागरिक कार्यकलापों में जन-प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।
3. नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जन-प्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।
4. समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्रावधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।
5. प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो, जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करे, जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

6. सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

9.2.3 चौहतरवें संविधान संशोधन की आवश्यकता

पूर्व में नगरीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लोकतन्त्र की मंशा के अनुरूप नहीं थी। सबसे पहली कमी इसमें यह थी कि इसका वित्तीय आधार कमजोर था। वित्तीय संसाधनों की कमी होने के कारण नगर निकायों के कार्य संचालन पर राज्य सरकार का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण था, जिसके कारण धीरे-धीरे नगर निकायों के द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित कार्यों/या उन्हें सौंपे गये कार्यों में कमी होनी लगी। नगर निकायों के प्रतिनिधियों की बरखास्ती या नगर निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर भी समय पर चुनाव नहीं हो रहे थे। इन निकायों में कमजोर व उपेक्षित वर्गों (महिला, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति)का प्रतिनिधित्व न के बराबर था। अतः इन कमियों को देखते हुए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में स्थानीय नगर निकायों की संरचना, गठन, शक्तियों, और कार्यों में अनेक परिवर्तन का प्राविधान किया गया।

9.2.4 चौहतरवें संविधान संशोधन की विशेषताऐं

74वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा संविधान में एक नया भाग- 09 क जोड़ा गया जिसमें कुल 18 अनुच्छेद हैं और एक नयी अनुसूची 12वीं अनुसूची जोड़कर नगरीय क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।

1. 74वें संविधान संशोधन द्वारा नगर निकायों को संवैधानिक मान्यता और संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।
2. इस संविधान संशोधन द्वारा नगर निकायों की देश भर में त्री-स्तरीय व्यवस्था की गयी- नगर पंचायत, नगर परिषद और नगर निगम।
3. इस अधिनियम में प्रत्यक्ष चुनावों के द्वारा नगर निकायों के गठन की व्यवस्था की गयी है।
4. यह अधिनियम वार्ड समितियों के गठन की व्यवस्था करता है। जिसमें तीन लाख या अससे अधिक की जनसंख्या वाले नगर निकायों में एक या अधिक वार्डों के लिए वार्ड समितियों का गठन किया जायेगा।
5. इस अधिनियम के माध्यम से प्रत्येक नगर निकायों में अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए सीटों में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक क्षेत्र में सीटों का यह आरक्षण उस नगर निकाय के क्षेत्र में इन

वर्गों की जनसंख्या के अनुपात में होगा तथा आरक्षित की गयी सीटों पर बारी-बारी से आवर्तन किया जायेगा।

6. इस अधिनियम के द्वारा नगर निकायों का कार्यकाल 05 वर्ष का होगा। नगर निकायों का कार्यकाल उसकी पहली बैठक की तिथि से, यदि वह निर्धारित तिथि से पूर्व भंग नहीं कर दी जाती है, तो 05 वर्ष निर्धारित की गयी है। यदि निर्धारित तिथि से पूर्व नगर निकाय को भंग किया जाता है तो 06 माह के भीतर उसके चुनाव कराये जाने होंगे।

9.3 नगरीय स्थानीय सरकार

भारत में नगरीय स्थानीय सरकारों में नगर निगम' स्थानीय प्रशासन की शीर्षस्थ इकाई है। नगरपालिका नगर परिषद और नगर पंचायत इसकी अन्य इकाईयां हैं। औद्योगिकीकरण के विस्तार के साथ ही महानगरों का विस्तार भी तेजी के साथ हुआ और महानगरों की संख्या तीव्र गति से बढी। महानगरों के बढते आकार ने इनकी प्रशासनिक व्यवस्था में भी परिवर्तन ला दिये। नगर संस्थाओं को अधिक लोकतांत्रिक बनाने के प्रयास तीव्र होने लगे।

9.3.1 नगरीय स्थानीय सरकार- ऐतिहासिक विकास

भारत में नगरीय प्रशासन का विकास एवं अस्तित्व प्राचीन काल से मिलता है। 'मनुस्मृति' और 'महाभारत' में नगर प्रशासन का उल्लेख मिलता है। मैगेस्थनीज की पुस्तक 'इन्डिका' में मौर्य शासन की राजधानी पाटलीपुत्र के नगर प्रशासन के विकास का उल्लेख मिलता है। अबुल फजल द्वारा रचित पुस्तक जो 'आईने अकबरी' जो 'अकबरनामा' का तीसरा भाग है, में मुगल साम्राज्य के नगरों और कस्बों के संबंध में जानकारी देता है। मुस्लिम शासन काल में नगर प्रशासन को कोतवाल नामक अधिकारी द्वारा चलाया जाता था। कोतवाल के कार्य बहुत व्यापक थे, जिनमें नगर में कानून और व्यवस्था बनाये रखना, अपराधों और सामाजिक बुराईयों को रोकना, बाजारों पर नियंत्रण बनाये रखना, वार्डों के अनुसार आम जनता का पंजीकरण व गुप्तचर व्यवस्था आदि के कार्य उसके अधीन थे।

मुस्लिम शासकों के बाद अंग्रेजी शासन ने भारत में कई कारणों से शहरी क्षेत्रों के स्थानीय स्वशासन के बारे में सोचा। इसके लिए उन्होंने भारत में पहले से ही प्रचलित देशी संस्थाओं के ढ़ाँचे को ग्रहण किया। ब्रिटिश सरकार ने सबसे पहले 1687 बम्बई में और 1726 में कलकत्ता में नगर निगम स्थापित किये। वित्तीय विकेन्द्रीकरण की

दिशा में सन 1870 के लार्ड मेयो का प्रस्ताव ने स्थानीय स्वशासन को एक नई दिशा प्रदान की। इसके उपरान्त 1882 में लॉर्ड रिपन ने नगरपालिकाओं के गठन के लिए एक प्रस्ताव रखा जो नगरपालिका सरकार के इतिहास में एक प्रभावकारी परिवर्तन लाया। इसी प्रकार 1909 में विकेन्द्रीकरण पर रॉयल कमीशन ने की रिपोर्ट एक महत्वपूर्ण कदम था। इस रिपोर्ट ने स्वायत्त प्रशासन के विकास की सिफारिश प्रशासननिक हस्तांतरण के रूप में की और नगर अधिकारियों को अधिक स्वायत्त शक्तियां देने पर जोर दिया। 1919 का भारत सरकार अधिनियम के एक भाग भी स्वायत्त सरकार से संबंधित था। इस अधिनियम की महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्न थीं- गैर-सरकारी अध्यक्ष के साथ निर्वाचित बहुमत, मताधिकार को बढ़ाना, कर लगाने की स्वतंत्रता आदि। इन सिफारिशों के आधार पर 1920-30 के समय में नगर प्रशासन पर निर्वाचित अध्यक्ष का अधिकार रहा, किन्तु इस अवधि में नगरीय प्रशासन में भ्रष्टाचार भी रहा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नगर प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। नगरीय प्रशासन को संवैधानिक मान्यता देते हुए इसमें लोकतंत्रीय प्रावधान और वयस्क मताधिकार के ढ़ाँचे पर अनेक परिवर्तन किए गए। नगर संस्थाओं को लोकतांत्रिक बनाया गया और नगर प्रशासन चलाने के लिए निर्वाचित सदस्यों को पर्याप्त शक्तियां दी गयी।

9.3.2 नगरीय स्थानीय सरकार की इकाईयाँ

भारत में नगरीय स्थानीय सरकार की वर्तमान संस्थाऐं अंग्रेजी शासनकाल में विकसित हुई। भारत में शहरी क्षेत्रों के प्रशासन के लिए आठ प्रकार के नगरीय इकाईयों का गठन किया गया है। इनका विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **नगर निगम-** नगरीय स्थानीय सरकारों में नगर निगम सर्वोच्च इकाई है। नगर निगमों की स्थापना अधिक आबादी वाले महानगरीय क्षेत्रों में की जाती है। नगर निगमों का गठन एक लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में होता है। राज्यों में नगर निगमों की स्थापना राज्य विधान मण्डलों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों संसद द्वारा निर्मित अधिनियम द्वारा होती है। निगम एक वैधानिक संस्था है, जिसके अधिनियम में नगर निगम की संरचना, शक्तियों, निगम के अधिकारियों और कर्मचारियों का विवरण आदि का उल्लेख होता है। नगर निगम निम्नलिखित प्रमुख घटक होते हैं- परिषद, महापौर,समितियाँ और आयुक्त।

परिषद, निगम की शक्तिशाली संस्था है और एक प्रकार की स्थानीय विधानसभा है। यह स्वशासन के सम्बन्ध में जनता की इच्छा को प्रकट करती है। इसके चुने हुए सदस्य पार्षद कहलाते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुने जाते हैं। इनका कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। इसमें कुछ मनोनीत 'एल्डरमैन' भी सदस्य होते हैं। नगर निगमों में जनजाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं का भी प्रतिनिधित्व होता है।

नगर निगमों में महापौर का पद सम्मानजनक एवं महत्वपूर्ण होता है। महापौर नगर की जनता द्वारा पांच वर्ष के के लिए चुना जाता है। यह नगर का प्रथम नागरिक होता है जो निगम की परिषदों की अध्यक्षता करता है। महापौर के साथ उप-महापौर का भी चुनाव होता है।

निगम की प्रशासनिक शक्ति परिषद में निहित होती है और उन शक्तियों का उपयोग परिषद समितियों तथा मुख्य कार्यपालिका अधिकारी द्वारा करता है। परिषद की बैठकें महीने में प्रायः एक या दो बार से अधिक नहीं हो पाती। अतः कार्यों को उचित रूप से सम्पन्न करने के लिए परिषद कुछ समितियों का गठन करती है। ये समितियाँ दो प्रकार की होती हैं- संवैधानिक और गैर-संवैधनिक समितियाँ।

आयुक्त, नगर निगम का प्रमुख कार्यकारी अधिकारी होता है, जिसकी जिसकी नियुक्ति राज्य शासन द्वारा की जाती है। नगर आयुक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ सदस्य होता है, इसका वेतन निगम कोष से दिया जाता है। निगम के अन्तर्गत समस्त प्रशासनिक कार्य आयुक्त के नियन्त्रण में होते हैं तथा वह आवश्यक मार्गदर्शन और नियन्त्रण करता है। इसके कार्य अनेक प्रकार के होते हैं। यह अधिनियम में उल्लिखित समस्त कर्तव्यों का पालन करता है। निगम आयुक्त परिषद की बैठकों में भाग लेता है। वह सभी नगर-विवरणों का अभिरक्षक है। वह बजट तैयार कर निगम के समक्ष रखता है तथा प्रशासनिक तन्त का प्रमुख होने के नाते सभी सरकारी कार्यों को विभिन्न विभागों के बीच बाँटता है।

नगर निगम दो प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करना है- ऐच्छिक एवं अनिवार्य कार्य। अनिवार्य कार्यों में विद्युत-प्रबन्ध, जल की व्यवस्था, यातायात सेवाओं का प्रबन्ध, गन्दगी तथा कूड़े-कचरे की सफाई, गलियों मूत्रालयों आदि की सफाई आदि। ऐच्छिक कार्य वे हैं, जो आवश्यक नहीं हैं किन्तु वित्तीय सोतों के आधार पर इन्हें किया जाता है। अपने कार्यों को सम्पन्न करने के लिए नगर निगम को कर लगाने का

अधिकार प्राप्त है। निगम की आय के प्रमुख स्रोत हैं- कर लगाना, गैर-कर स्रोत, लाभकारी उद्यम और अनुदान आदि।

2. **नगरपालिकाएँ-** नगरपालिका का प्रारम्भ भारत में किसी न किसी रूप में ब्रिटिश शासनकाल में ही हो चुका था। नगरपालिका का गठन 50 हजार से 01 लाख तक की आआदी वाले क्षेत्रों में होता है। छोटे नगरों एवं शहरों में नगरपालिका स्थानीय स्थानय स्वशासन की महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली संस्था है। इनका शासन राज्यों के नगरपालिका अधिनियमों के अनुसार चलता है और केन्द्र शासित क्षेत्रों में संसद द्वारा पारित अधिनियम द्वारा। इस सम्बन्ध में दो बिन्दुओं का प्रकाश डालना आवश्यक है। प्रथम, देश में नगरपालिकाएँ अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं। जैसे- नगरपालिका, नगरपालिका समिति, नगरपालिका बोर्ड, आदि। द्वितीय, भारत में इन संस्थाओं के संगठन में समान्यतः एकरूपता है। नगरपालिकाओं और नगर निगमों में क्षेत्र, जनंसख्या, शक्तियों, कार्यों, वित्तीय शक्तियों और प्रशासनिक सम्बन्धों की असामनता है। साथ ही स्थानीय स्वशासन का विषय राज्य-सूची में होने के कारण भिन्न-भिन्न राज्यों की नगरपालिकाओं की रचना के नियम एकसमान नहीं हैं।

नगर निगम के समान ही नगरपालिकाओं के भी तीन प्रमुख अंग हैं- परिषद, नगरपालिका अध्यक्ष एवं नगरपालिका आयुक्त। नगरपालिका जिसे नगर परिषद् भी कहते हैं, जिसमें वयस्क मताधिकार द्वारा चुने हुए पार्षद होते हैं। इसमें तीन प्रकार के सदस्य होते हैं- पार्षद, पदेन अधिकारी तथा एल्डरमैन। परिषद के सदस्यों का चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। एक नगर को अनेक चुनाव- क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक चुनाव-क्षेत्र से एक सदस्य जनता द्वारा चुना जाता है। लगभग सभी नगरपालिकाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं। नगरपालिका के सदस्यों का कार्यकाल 05 वर्ष का होता है। सरकार समय के पूर्व नगरपालिका को भंग कर सकती है और उसके कार्यों को अपने हाथ में ले सकती है।

नगरपालिका के अध्यक्ष का पद प्रतिष्ठा का होता है। नगरपालिका के पार्षद अपने बीच से ही अध्यक्ष का चुनाव करते हैं। यह परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा मार्ग-दर्शन करता है। तथा नगरपालिका के वित्तीय तथा कार्यकालिका प्रशासन पर निगरानी रखता है।

नगरपालिका आयुक्त, नगरपालिका के कार्यकारी विभाग का प्रमुख होता है, जो राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। इसे नगरपालिका कोष से वेतन दिया जाता है। यह अनेक कार्य सम्पन्न करता है। यह समितियों तथा परिषद के सचिव के रूप में कार्य करता है। आयुक्त विभिन्न, प्रशासनिक विभागों को संगठित करता है तथा उनमें कार्यों का बँटवारा करता है। नगरपालिका कार्यालय का प्रभारी होने के नाते समस्त रिकार्ड इसी की निगरानी में रखे जाते हैं।

नगरपालिका के कार्य, नगर निगम के समान ही हैं और अधिनियम में नगरपालिका के कार्यों का उल्लेख है। यह ऐच्छिक और अनिवार्य दो प्रकार से कार्य करता है। इसके प्रमुख अनिवार्य कार्य हैं- जल की वयवस्था करना, प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और देखभाल, जन्म-मृत्यु का पंजीकरण, गलियों का नामकरण तथा घरों के नम्बर लगाना आदि। ऐच्छिक कार्य हैं- खतरनाक भवनों या स्थानों को कब्जे में लेना या ध्वस्त करना, सड़क के किनारे वृक्ष लगाना, सर्वेक्षण करना, सार्वजनिक अभिनन्दन, प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करना, नगरपालिका कर्मचारियों के कल्याण सम्बन्धी कार्य आदि।

नगरपालिका की आय के प्रमुख स्रोत हैं- कर लगाना, गैर-कर स्रोत, लाभकारी उद्यम और अनुदान। नगरपालिका सम्पत्ति कर, व्यवसाय कर, चुंगी कर, पशु व वाहन कर, मनोरंजन कर आदि कर लगाती है। इसके साथ-साथ गैर-कर स्रोतों में भवनों से सम्बन्धित फीस, लाइसेन्स फीस आदि के द्वारा आय प्राप्त करती है।

3. **अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ-** यदि राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि किसी स्थानीय क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है और जहाँ नगरपालिका की स्थापना सम्भव नहीं है, तो अधिसूचना द्वारा क्षेत्र समितियाँ स्थापित कर सकती हैं। इस प्रकार कम जनसंख्या के शहरी क्षेत्र में जनता की सुविधा के लिए नगर क्षेत्र समितियाँ स्थापित की जाती है। चूँकि इनकी स्थापना अधिसूचना द्वारा की जाती है, इसलिए इन्हें अधिसूचति क्षेत्र कहा जाता है। इसके सदस्य निर्वाचित और मनोनीत दोनों प्रकार के होते हैं। प्रायः राज्य सरकार ही इनके सदस्यों तथा अध्यक्ष को मनोनीत करती है। बिहार, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश व उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ हैं।

4. **नगर क्षेत्र समितियाँ-** नगर क्षेत्र समितियाँ एक प्रकार की लघु नगरपालिकाऐं हैं, जिनकी स्थापना छोटे नगरों के लिए की जाती है। इन समितियों का संचालन राज्य विधानसभा द्वारा पारित पृथक् अधिनियम के अन्तर्गत होता है। इनके सदस्य निर्वाचित और मनोनीत दोनों प्रकार के होते हैं। जिलाधीश को नगर क्षेत्र समिति के सम्बन्ध में नियन्त्रण की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। सदस्यों की संख्या कम होती है और कार्य अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। ऐसी समितियाँ असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आदि राज्यों में हैं।
5. **छावनी बोर्ड-** शहरी क्षेत्रों में जहाँ सैनिक रहते हैं, छावनी कहते हैं। ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को नागरिक सुविधाएँ और कल्याणकारी सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए छावनी बोर्ड की स्थापना की जाती है। छावनी बोर्ड स्वायत्त संस्थाएँ होती हैं, जिन पर सेना के मुख्य अधिकारी का नियन्त्रण रहता है। यही छावनी बोर्ड का प्रमुख होता है तथा छावनी क्षेत्र में स्थानीय विषयों का प्रबन्धन करता है। इसके आधे सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं तथा आधे सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं। बोर्ड को कर लगने की शक्ति प्राप्त है जो आय का प्रमुख स्रोत है। छावनी बोर्ड का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है। कार्यकारी अधिकारी बोर्ड का कार्यकारी प्रमुख होता है। इसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। छावनी बोर्ड तीन श्रेणियों में संगठित है- प्रथम श्रेणी की छावनियाँ जिनकी असैनिक जनसंख्या दस हजार से अधिक है, द्वितीय श्रेणी की छावनियाँ जिनकी असैनिक जनसंख्या ढाई हजार से दस हजार के बीच होती है और तृतीय श्रेणी की छावनियाँ जिनकी असैनिक जनसंख्या ढाई हजार से कम है।
6. **टाउनशिप-** इस प्रकार के नगरीय प्रशासन की स्थापना बड़े सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा स्थापित कारखानों में कार्य वाले सेवीवर्गों को नागरिक सेवाएँ उपलब्ध करने के लिए होती हैं। यह अपने आप एक छोटा शहर होता है, जिसमें समस्त प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध होती है। टाउनशिप के प्रशासन की देख-रेख के लिये एक टाउन प्रशासक की नियुक्ति की जाती है। उसकी सहायता के लिए तकनीकी और गैर-तकनीकी स्टाफ होता है। टाउनशिप में चुने हुए प्रतिनिधि नहीं होते हैं।
7. **पोर्ट ट्रस्ट-** समुद्र के किनारे जो पोर्ट होते हैं, वहाँ ट्रस्ट स्थापित किये जाते है। जैसे- मुम्बई, चेन्नई, आदि। पोर्ट ट्रस्ट की स्थापना के दो उदेश्य होते है- पोर्ट की व्यवस्था और सुरक्षा तथा नागरिक सुविधाएँ उपलब्ध

करना। पोर्ट ट्रस्ट की स्थापना संसद के द्वारा की जाती है। पोर्ट ट्रस्ट में निर्वाचित और मनोनीत दोनों प्रकार के सदस्य होते हैं। पोर्ट ट्रस्ट का अध्यक्ष एक अधिकारी होता है। इसके कार्य लगभग नगरपालिका के समान होते हैं।

8. **विशिष्ट उद्देश्य इकाईयाँ-** विशिष्ट उद्देश्य इकाई की स्थापना राज्य सरकार द्वारा किसी विशेष कार्य हेतु की जाती है। नगर निगम, नगर पालिका या अन्य नगरीय सरकार के कुछ कार्यों को करने के लिए राज्य सरकार इनकी स्थापना करती है। इन्हें एकल उद्देश्य, विशिष्ट उदेश्य या कार्यात्मक स्थानीय संस्था भी कहा जाता है। इस प्रकार की निम्नलिखित संस्थाएँ होती हैं। टाउन सुधार ट्रस्ट, शहरी विकास सत्ता, गृह निर्माण बोर्ड और प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड आदि।

9.4 नगरीय स्थानीय सरकार से संबंधित विषय

नगरीय स्थानीय सरकार से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख संविधान की 12वीं अनूसूची (अनुच्छेद, 243-ब) में किया गया है जो निम्नवत है-

1. नगर के नियोजन सहित शहरी नियोजन।
2. भू-उपयोग का विनियम और भवन-निर्माण।
3. आर्थिक व सामाजिक उन्नयन को ध्येय से नियोजन।
4. सड़क एवं पुल।
5. घरेलू उपयोग व औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए जलापूर्ति।
6. जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, जल-प्रबन्धन एवं कूड़ा-कचरा निस्तारण।
7. अग्निशमन सेवाऐं।
8. परिस्थितिकीय एवं पर्यावरण संरक्षण के ध्येय से शहरी वनीकरण।
9. शाररिक व मानसिक विकलांगों सहित समाज के कमजोर वर्गों का हित संरक्षण।
10. मलिन बस्ती सुधार एवं उन्नयन।
11. शहरी गरीबी निवारण।
12. नागरिक जन-सुविधाओं जैसे पार्क, उद्यान, और खेल के मैदानों की व्यवस्था करना।

13. सांस्कृतिक, शैक्षणिक व सौंदर्यपूर्ण विकास।

14. शव-गृह, कब्रिस्तान और विद्युत शव-दाह-गृह।

15. पशुओं के लिए पीने के पानी के तालाब और पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम।

16. जन्म-मृत्यु के आंकड़ों सहित महत्वपूर्ण सांख्यि की सूचना।

17. गलियों, पार्किंग स्थल और स्टापों के पथ-प्रकाश(लाईट) की सुविधाओं की व्यवस्था और जल-प्रबन्धन।

18. पशु वधशालाओं और चर्मशोधनालाओं का विनियमन।

9.5 नगरीय स्थानीय सरकार की कार्य एवं शक्तियाँ

प्रत्येक नगरीय प्रशासन का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित व्यवस्था करे-

1. सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर पीने का पानी।

2. सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर रोशनी।

3. नगरपालिका की सीमा का सर्वेक्षण करना और सीमा चिन्ह लगाना।

4. सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नालियों की सफाई करना, हानिकारक वनस्पति को हटाना।

5. संतापकारी, खतरनाक या आपत्तिजनक, व्यापार, आजीविका या प्रथा का विनियमन करना।

6. आवारा व खतरनाक पशुओं को हटाना या नष्ट करना।

7. लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा के आधार पर सड़कों या सार्वजनिक स्थानों में अवांछनीय और अवरोध प्रक्षेप हटाना।

8. खतरनाक भवनों या स्थानों को सुरक्षित बनाना या हटाना।

9. मृतकों के निस्तारण के लिये स्थान अर्जित, अनुरक्षित, परिवर्तित और विनियमित करना।

10. सार्वजनिक सड़कों, पुलियों, बाजारों व वधशालाओं, शोचालयों, संड़ासों, मुत्रालयों, नालियों, जलोत्सारण, निर्माणकार्यों तथा सीवर व्यवस्था सम्बन्धी निर्माण कार्यों का निर्माण, परिवर्तन और अनुरक्षण करना।

11. घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति उपलब्ध करना।

12. सड़क के किनारे तथा सार्वजनिक स्थानों में वृक्ष लगाना और उनका अनुरक्षण करना।

13. ऐसे स्थानों में जहाँ वर्तमान जल सम्भरण के अप्रर्याप्त या अस्वास्थ्यप्रद होने से वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य को संकट हो, शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद जल के पर्याप्त सम्भरण की व्यवस्था करना। व्यक्तियों के उपयोग के लिए प्रयुक्त होने वाले जल को प्रदुषित होने से बचाना और प्रदूषित जल के ऐसे उपयोग को रोकना।

14. जल सम्भरण हेतु सार्वजनिक कुंओं को ठीक हालत में रखना। उनके जल को प्रदूषित होने से बचाना तथा उसे मनुष्यों के उपयोग योग्य बनाये रखना।

15. जन्म और मृत्यु का पंजीकरण सुनिश्चित करना।

16. सार्वजनिक टीका लगाने की प्रणाली की स्थापना तथा उसका अनुरक्षण।

17. सार्वजनिक चिकित्सालयों और औषधालयों की स्थापना तथा उनका अनुरक्षण या उनकी सहायता करना और सार्वजनिक चिकित्सा सम्बन्धी सहायता की व्यवस्था करना।

18. प्रसूति केन्द्रों, शिशु कल्याण, और जन्म नियंत्रण क्लीनिकों की स्थापना, अनुरक्षण और सहायता करना और जनसंख्या नियन्त्रण, परिवार कल्याण और छोटे परिवार के मानकों को प्रोत्साहित करना।

19. पशु चिकित्सालयों का अनुरक्षण करना या अनुरक्षण हेतु उन्हें सहायता देना।

20. प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करना।

21. आग बुझाने में सहायता देना और आग लगने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना।

22. नगरपालिका में निहित या उसके प्रबंधन में सौंपी गयी सम्पत्ति की सुरक्षा करना, उसका अनुरक्षण तथा विकास करना।

23. शासकीय पत्रों पर तत्काल ध्यान देना और ऐसे विवरण और रिपोर्ट तैयार करना जिन्हें राज्य सरकार नगर पालिका से प्रस्तुत करने की अपेक्षा करे।

24. विधि द्वारा उस पर अधिरोपित किसी बाध्यता की पूर्ति करना।

25. चर्म-शोधनशालाओं को निनियमित करना।

26. पार्किंग स्थल, बस स्टाप और जन सुविधाओं का निर्माण और अनुरक्षण करना।

27. नगरीय वानिकी और परिस्थितिकी पहलुओं की अभिवृद्वि और पर्यावरण का संरक्षण करना।

28. समाज के दुर्बल वर्गों, जैसे- विकलांग और मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति हितों का संरक्षण करना।

29. सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्यपरक पहलुओं की अभिवृद्धि करना।

30. कांजी हाउस का निर्माण और अनुरक्षण करना और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करना।

31. मलिन बस्ती सुधार और उन्नयन।

32. नगरीय निर्धनता कम करना व नगरीय सुख-सुविधाओं, जैसे पार्क, उद्यान और खेल के मैदानों की व्यवस्था करना।

अभ्यास प्रश्न-

1. संविधान का 74वां संविधान संशोधन किससे संबंधित है?

2. एक लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर निगम गठित होंगे। सत्य/असत्य

3. पचास हजार से एक लाख तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों नगर पालिकाऐं गठित होंगी। सत्य/असत्य

4. पचास हजार तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर पंचायतों का गठन होगा। सत्य/असत्य

5. 74वें संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत शहरी स्थानीय निकायों को कितने कार्य/उत्तर दायित्व दिये गये हैं?

1. नगर निकायों के कार्यों से संबंधित विषयों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है। सत्य/असत्य

9.6 सांराश

74वें संविधान संशोधन के माध्मय से सरकार ने पुनः नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली सहभागिता बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान का 74वें संशोधन ने नगर पलिका, नगर निगम और नगर पंचायतों में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास सम्बन्धी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। अब नगरों व शहर के ऐसे लोग जो शहरी मुद्दों की स्पष्ट सोच रखते हैं व नगरों, कस्बों व उनमें निवास करने वाले लोगों की नागरिक सुविधाओं के प्रति संवेदनशील है, निर्णय लेने की स्थिति में आगे आ गये हैं। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था ने हमेशा से पीछे रहे व

हाशिये पर खड़े लोगों को भी बराबरी पर खड़े होने व निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर दिया है। 74वें संविधान संशोधन ने सरकार (लोगों का शासन) के माध्मय से आम लोगों की सहभागिता स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित की है। हर प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्थानीय लोगों को सम्मिलित करने से निणर्य प्रक्रिया प्रभावी, पारदर्शी व समुदाय के प्रति संवेदनशील हो जाती है। नगरीय स्थानीय सरकार की इकाईयों के माध्यम से इन इकाईयों में निवास करने वाले सरकार में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं और जन कल्याण से संबंधित योजनाओं के क्रियान्वयन में साझीदार होते हैं।

9.7 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- एक केन्द्र में न रहना, विस्तारित होना।

संक्रमणशील- ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने वाले क्षेत्र।

गणपूर्ति- किसी भी कार्यवाही की पूर्ति हेतु उपस्थित अनिवार्य सदस्यों की संख्या।

कांजी हाऊस- जहाँ आवारा पशुओं को पकड़ कर रखा जाता है।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नगर निकाय, **2.** सत्य, **3.** नगर पालिकाएं, **4.** सत्य, **5.** 5 साल, **6 .** 18, **7.** सत्य

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय प्रशासन, अवस्थी एवं अवस्थी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. लोक प्रशासन, बी0 एल0 फड़िया, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. हार्क संस्था, नगरीय स्वशासन प्रशिक्षण मार्गदर्शिका।

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के0के0 शर्मा।
2. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी।
3. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगर निकायों के गठन एंव संरचना को स्पष्ट करें।
2. नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियों को स्पष्ट करें।
3. नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध को विस्तार से बतलाइये।
4. नगर निकायों से संबंधित विषय बतलाइये।
5. नगर निकायों की कार्य एंव शक्तियाँ एवं स्वैछिक कार्य बताएं।

इकाई- 10 स्वतन्त्रता पश्चात भारत में जिला प्रशासन और जिलाधिकारी

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 भारत में जिला प्रशासन- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

10.3 भारत में जिला प्रशासन का ढ़ाँचा

10.4 स्वतन्त्रता पश्चात भारत में जिला प्रशासन

10.5 जिलाधिकारी के कर्तव्य एवं उत्तर दायित्व

10.5.1 समन्वयक कार्य

10.5.2 राजस्व एवं आबकारी कार्य

10.5.3 पुलिस कार्य

10.5.4 दंडाधिकारी के कार्य

10.5.5 चुनाव कार्य

10.5.6 विकास कार्य

10.5.7 आपदा प्रबंधन सम्बन्धी कार्य

10.5.8 जनगणना सम्बन्धी कार्य

10.6 जिलाधिकारी की बदलती भूमिका

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में हमने यह अध्ययन किया कि सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान के 74वां संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम हैं। 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इकाई 24 के अध्ययन का उद्देश्य, 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोकतंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है, सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण।

प्रस्तुत इकाई 25 में हम स्वतंत्रता के पश्चात जिला प्रशासन और जिलाधिकारी के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। जिसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से लोकतंत्र को अपनाने के कारण, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरुप और लक्ष्य में किस प्रकार से परिवर्तन आये हैं। वहीं जिला प्रशासन और जिलाधिकारी जो स्वतंत्रतापूर्वक जनता को दबाकार कार्य करते थे, जो सभी प्रकार की जबाबदेही से मुक्त थे। परन्तु स्वतंत्रता उपरान्त अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है, जो अपने सभी कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तर दायी है, क्योंकि वर्तमान समय में हमारे देश में लोकतंत्र प्रचलित है, जिसमें अंतिम सत्ता जनता में ही निहित होती है। इसलिए जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तर दायित्वों में अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इन सभी पक्षों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता पूर्व जिला प्रशासन का स्वरूप क्या था।

- यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता के पश्चात जिला प्रशासन के स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन आया है।
- यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता के पश्चात जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तर दायित्वों में किस प्रकार का परिवर्तन आया है।
- यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता के पश्चात जिलाधिकारी और जिला प्रशासन किस प्रकार जनता के दबाव में जनता के लिए कार्य करते हैं।

10.2 भारत में जिला प्रशासन- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अगर भारत में जिला प्रशासन के इतिहास पर नजर डालें तो इसका वर्णन मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों से लेकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मौर्य प्रशासन, मुगलकाल की प्रशासनिक व्यवस्था और ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में मिलता है। मौर्यकाल में जिला अधिकारी को 'रज्जुकाज' कहा जाता था। मुगल काल में जिले स्तर का प्रशासनिक अधिकारी प्रशासनकी सफलता का आधार स्तम्भ था। अकबर के समय में जिले को सरकार कहा जाता था तथा इसके प्रशासक को फौजदार कहा जाता था। ब्रिटिश शासकों ने भारत में अपने व्यापार के समय से लेकर भारत में सीधा प्रशासन करने तक एक निश्चित क्षेत्र को 'डिस्ट्रिक' कहते थे और 'कलक्टर' 'डिस्ट्रिक' की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में अपने दायित्वों की पूर्ति करता था। वारेन हेस्टिंगज ने राजस्व और कानून व्यवस्था को कलक्टर के पद के साथ जोड़ कर उसे और सशक्त बना दिया। सन् 1792 में जिला कलक्टर से न्यायिक शक्तियों अलग करके 'जिला न्यायाधीश' का पद बनाया गया और जिले स्तर के न्यायिक कार्यों का दायित्व सौंपा गया। लेकिन लॉर्ड विलियम बैंटिक ने अपने समय में जिला अधिकारी से दण्डाधिकारी के कार्यों को अलग कर जिला कलक्टर के पद में समाहित कर दिया। जिला कलक्टर की नियुक्ति पहले 'कवेनेन्टेड सिविल सर्विस' के माध्यम से की जाती थी जो बाद में आईसीएस(ICS) की परीक्षा के माध्यम से की जाने लगी।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में जिला ही क्षेत्रीय प्रशासन का मुख्य आधार बना। लेकिन भारतीय संविधान में कहीं पर भी जिले को प्रशासनिक इकाई बनाने की बात नहीं कही गयी है। स्वतंत्रता के बाद जिला प्रशासन के कार्यों और दायित्वों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। इसका कार्यक्षेत्र पहले से कहीं अधिक व्यापक और जिम्मेदारी वाला हुआ है।

10.3 भारत में जिला प्रशासन का ढ़ाँचा

भारत में जिला प्रशासन की ढ़ाँचे को एक पदसोपान युक्त व्यवस्था में देखा जा सकता है। जिला प्रशासन के इस प्रशासनिक ढ़ाँचे में पदसोपान व्यवस्था में दो, तीन या चार स्तर हो सकते हैं। भारत के अधिकांश राज्यों के जिलों में प्रशासन के तीन स्तर मिलते हैं, पहला- जिला, इसका मुख्यालय प्रमुख नगर में केन्द्र होता है। दूसरा- उपखण्ड का मुख्यालय, जिसका केन्द्र जिले के अन्य स्थानों पर होता है और तीसरा- तहसील कार्यालय। ये तीनों स्तर जिले में सामान्य प्रशासन की दृष्टि से बनाए जाते हैं, लेकिन विकास कार्यों के लिए राज्यों में प्रशासन के कई स्तर हैं।

जिले स्तर पर प्रशासन के तीन स्तरों पर अधिकारी वर्ग का भी उल्लेख है। पहले स्तर के अधिकारी का क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण जिला है, जिसमें जिला अधिकारी, जिला कृषि अधिकारी, जिला परिषद के अध्यक्ष, स्वास्थ्य अधिकारी आदि आते हैं। बड़े जिलों में दो मध्यवर्ती स्तर पाये जाते हैं, जबकि छोटे जिलों में यह स्तर एक ही होता है। इस स्तर पर उपखण्ड अधिकारी या उपखण्ड दंडनायक होता है। उपखण्ड अधिकारी सामान्य प्रशासक होता है। वह तहसीलदार और कलक्टर के मध्य राजस्व मामलों में तथा कलक्टर और स्थानीय पुलिस अधिकारी के बीच कानून और शांति के मामलों में एक कड़ी का कार्य करता है। उपखण्ड को तहसीलों में बांटा जाता है। इस स्तर के प्रमुख अधिकारी तहसीलदार, विकास अधिकारी आदि होते हैं। तहसीलदार तहसील का का मुख्य अधिकारी होता है, वह अधिनस्थ सेवा का सदस्य होता है। तहसीलदार को उसके कार्यों में नायब तहसीलदार, कानूनगो और पटवारी सहायता करते हैं। सरकार द्वारा सौंपे गये कार्यों और समस्त राजस्व कार्यों के लिए तहसीलदार कलक्टर के माध्यम से राज्य सरकार के प्रति उत्तर दायी होता है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत मुखिया, पटवारी व ग्राम सहायक आदि आते हैं। जिला प्रशासन का ढ़ाँचा पूर्णत: विकेन्द्रीकृत है, जिसके माध्यम से सरकारें लोक कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों को पूर्ण करती है।

10.4 स्वतन्त्रता पश्चात भारत में जिला प्रशासन

हमारे देश में प्रशासनिक सुविधा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की गयी है, क्योंकि किसी भी बहुत बड़े क्षेत्र को प्रत्यक्ष रूप से संचालित करना आसान नहीं होता है। इसलिए भारतीय प्रशासन को सुचारू

संचालन हेतु, प्रदेश को जिला में विभाजित किया गया है। जहाँ से सभी प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन किया जाता है। इस प्रकार 'जिला' क्षेत्रीय प्रशासन का आधार है, जिस पर भारतीय प्रशासन का सम्पूर्ण ढ़ाँचा खड़ा है। स्वतन्त्रता पूर्व देश का प्रशासन अंग्रेजों द्वारा संचालित किया जाता था। यह सर्वविदित है कि अंग्रेजों का उद्देश्य भारतीय जनमानस को सशक्त और सक्षम बनाना नहीं था, वरन् उनका प्रमुख उद्देश्य अपना हित साधना था, उनके इस हित साधन की प्रक्रिया में प्रशासन का मुख्य कार्य नियामकीय था, जिसमें निषेधात्मक कार्य ही संचालित किए जाते थे न कि सकारात्मक कार्य। इन नियामकीय कार्यों में कानून और व्यवस्था बनाए रखना प्रमुख था। परन्तु स्वतन्त्रता के उपरान्त शासन के स्वरूप में परिवर्तन आया है। हमने संसदीय लोकतन्त्र को अपनाया, जिसमें सरकार जनता के प्रति उत्तर दायी होती है और उसका अस्तित्व विधायिका के निम्न सदन (केन्द्र में लोक सभा, राज्य में विधान सभा) जिसे जन-प्रतिनिधि सदन भी कहते हैं, के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करता है। इस कारण से जिला प्रशासन के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है, क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर या राज्य स्तर पर बनाई गयी कोई भी नीति हो, उसका क्रियान्वयन, जिला प्रशासन के स्तर पर ही होता है। भारतीय संविधान के द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना को लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसलिए स्पष्ट है कि भारतीय प्रशासन के स्वरूप में जिला प्रशासन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय प्रशासन में जिला प्रशासन महत्वपूर्ण है, तो जिला प्रशासन में जिलाधिकारी के पद उसकी भूमिका भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह जिला प्रशासन का मुखिया होता है। इसलिए इस इकाई में हम जिलाधिकारी के पद और उसकी भूमिका का अध्ययन करेंगे।

10.5 जिलाधिकारी के कर्तव्य एवं उत्तर दायित्व

जैसा कि हम इस इकाई के प्रारम्भ में देख चुके हैं कि भारतीय प्रशासन में जिलाधिकारी का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि देश के सभी नीतियों का वास्तविक रूप से क्रियान्वयन जिला प्रशासन के स्तर पर ही जिलाधिकारी की देख-रेख में ही संचालित किए जाते हैं। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि स्वतन्त्रता के पूर्व जिलाधिकारी के अधिकार और शक्तियाँ ज्यादा थी, जबकि उनकी जिम्मेदारी कम होती हैं, क्योंकि ब्रिटिशकाल में प्रशासन के लक्ष्य बहुत ही सीमित और नियामकीय प्रकृति के थे, जिसका प्रमुख उद्देश्य कानून और व्यवस्था की स्थापना करना था। जबकि स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रशासन के लक्ष्य में परिवर्तन आया है। अब लक्ष्य

में परिवर्तन का कारण, शासन के संगठन में परिवर्तन है। अब देश में कोई विदेशी सरकार कार्य नहीं कर रहीं है, वरन् अब ऐसी सरकार कार्य कर रही है, जो जनता द्वारा निर्वाचित है और जनता के हित के लिए कार्य कर रही है। इस प्रकार अब सरकार जनता के दबाव में कार्य कर रही है। ऐसी बदली हुई परिस्थिति में प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

अब जिलाधिकारी के अधिकार में कमी आयी है व दायित्वों में वृद्धि हुई है और जो अधिकार हैं भी वे अंग्रेजी शासन के समान जनता को दबाव में रखकर कार्य करने हेतु नहीं, वरन् वे लोकतन्त्र की भावना के अनुरूप शासन की नीतियों को जनता के हित में क्रियान्वयन करने के लिए हैं।

चूँकि जिले में जिलाधिकारी शासन का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए सामान्य दिनों में जनकल्याणकारी नीतियों और कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करने से लेकर आकस्मिक रूप से उत्पन्न संकटकालीन स्थितियों का समाधान कर शान्तिपूर्ण सामाजिक वातावरण तैयार करने की चुनौतिपूर्ण जिम्मेदारी का निर्वहन अपने सूझ-बूझ से करता है।

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जिलाधिकारी को अनेकानेक चुनौतिपूर्ण दायित्वों का निर्वहन करना होता है, वे इस प्रकार हैं-

10.5.1 समन्वयक का कार्य

जैसा कि हम उपर देख चुके हैं कि जिलाधिकारी जिलों का प्रशासनिक मुखिया होता है, जो प्रमुख समन्वयक के रूप में कार्य करता है। समन्वयक के रूप में जिलाधिकारी जिले की विभिन्न समन्वय समितियों की बैठकें आहूत करता है और उन समितियों का अध्यक्ष भी वही होता है। जिले में जिलाधिकारी संयुक्त परिवार के मुखिया की तरह कार्य करता है, जिसमें वह जिले के विभिन्न विभागों के कार्यों पर निगरानी रखता है और आवश्यकतानुसार उन्हें निर्देश देता है, जिससे वे सुगमता पूर्वक अपने विभाग से सम्बन्धित दायित्वों का निर्वहन कर सकें। फलस्वरूप जिला प्रशासन के सफलतापूर्वक अपने दायित्वों के निर्वहन से लोकतन्त्र में हमारे संविधान द्वारा निर्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

10.5.2 राजस्व एवं आबकारी कार्य

जिलाधिकारी अपने दायित्वों के निर्वहन में सर्वप्रथम राजस्व अधिकारी के रूप में ही कार्य करता है। भू-राजस्व के संग्रह के साथ ही साथ आबकारी संग्रह हेतु जिलाधिकारी के पास अधिकारियों की लंबी फौज होती है, जिनकी सहायता से वह अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। जिनमें उप-जिलाधिकारी, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी आदि होते हैं। वह विभिन्न विभागों में बकाये की वसूली के लिए भी जिम्मेदार होता है। बकायों में भू-राजस्व बकाया, सिंचाई बकाया आदि। जिलाधिकारी राजस्व संग्रह के लिए मुख्य प्रेरक के रूप में कार्य करता है। वह कृषि ऋण आवंटन पर निगरानी रखता है और आपदा, अकाल आदि संकटकालीन स्थितियों में ऋण वसूली के स्थगन का आदेश भी जारी करता है।

10.5.3 पुलिस कार्य

सामान्यतया हमें यह दिखाई देता है कि पुलिस प्रशासन एक स्वतंत्र विभाग के रूप में कार्य करता है। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि जिलाधिकारी जिला प्रशासन के समन्वयक के रूप में विभिन्न विभागों की निगरानी और नियंत्रण करता है, जिसमें पुलिस भी शामिल है। पुलिस अधिनियम की धारा-4 में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि जिलाधिकारी को पुलिस पर नियंत्रण और उसे निर्देश देने का अधिकार प्राप्त है।

राष्टीय सुरक्षा कानून(रासुका) की धारा-144 का प्रयोग जिलाधिकारी करता है। आपातकालीन स्थितियों में उसे सेना तक को बुलाने का अधिकार प्राप्त है। वन्य जीव संरक्षण हेतु वन पुलिस और अग्निकांड से निजात पाने हेतु अग्निशमन दल को निर्देशित करता है कि वे आवश्यक कार्यवाही कर समस्या का निराकरण करें। इस प्रकार से स्पष्ट है कि जिले का कोई भी विभाग और उस विभाग का कोई भी मुखिया हो, किन्तु आवश्यकता महसूस होने पर जिलाधिकारी सभी को निर्देश दे सकता है, क्योंकि जिला प्रशासन की सफलता और असफलता के लिए अंतिम रूप से वही उत्तर दायी होती है।

10.5.4 दंडाधिकारी कार्य

जिलाधिकारी पर जिले के कानून और व्यवस्था को बनाए रखने की जिम्मेदारी होती है। इसके साथ-साथ दंडाधिकारी के रूप में प्रथम श्रेणी के मजिस्टेट की शक्तियाँ प्राप्त हैं। जिले में अस्त्र-शस्त्र के लाइसेंस उसके द्वारा ही

प्रदान किए जाते हैं। लाइसेंस जारी करना भी उनके अधिकार-क्षेत्र में आता है। अपराध नियंत्रण के लिए भी अंतिम रूप से जिम्मेदारी जिलाधिकारी की होती है, क्योंकि वह जिला प्रशासन का मुखिया होता है।

10.5.5 चुनाव कार्य

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया है। यह प्रणाली संघ और राज्य, दोनों स्तरों पर अपनायी गयी है, इसलिए संसद और विधानमंडल के चुनाव को सुचारु रूप से संचालित करने का जिम्मा इन पर होता है। ये ही नहीं हमारे देश में त्रि-स्तरीय पंचायती व्यवस्था को भी लागू किया गया है, इसलिए इन सभी के चुनाव के सुचारु संचालन की जिम्मेदारी भी इन्हीं की होती है। जिलाधिकारी अपने इस दायित्वों का निर्वहन जिला निर्वाचन अधिकारी की सहायता से करते हैं। चुनाव के पश्चात विजयी प्रत्याशियों को प्रमाण-पत्र भी जिलाधिकारी के द्वारा ही दिया जाता है।

10.5.6 विकास कार्य

जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात सरकार की प्राथमिकताऐं बदल गयी हैं। चूँकि लोकतंत्र जनता के प्रति उत्तर दायी शासन है, जो कि जनता की भलाई के लिए विभिन्न विकास योजनाओं को चलाता है और जिनका क्रियान्वयन जिला स्तर पर ही होता है। जिलाधिकारी जिला प्रशासन का मुख्य अधिकारी होता है, इसलिए वह विकास अधिकारी के रूप में इन विकास योजनाओं के सफल क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है। इसके साथ ही साथ जिला समाज कल्याण अधिकारी से परामर्श कर कल्याणकारी योजनाओं को लागू करता है। पंचायतीराज व्यवस्था में भी जिलाधिकारी महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि जिला पंचायत में वह पदेन सदस्य होता है।

10.5.7 आपदा प्रबंधन सम्बन्धी कार्य

आपदा दो प्रकार के होते हैं- प्राकृतिक आपदा और मानवजनित आपदा। प्राकृतिक आपदाओं में बाढ़, भूकंप, महामारी, अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि के समय घायलों का उपचार विस्थापितों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था तथा उनको पुनःस्थापित करने का कार्य महत्वपूर्ण है, जिसे जिलाअधिकारी के दिशा-निर्देश पर सम्पन्न कराया जाता है।

10.5.8 जनगणना सम्बन्धी कार्य

जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक दस वर्ष के अंतराल पर जनगणना होती है। इस जनगणना कार्य को संपन्न कराने की जिम्मेदारी जिलाधिकारी की होती है। इस कार्य का संपादन वह जिला जनगणना अधिकारी की सहायता से करता है। जनगणना उपरान्त इसकी सूचना केन्द्रीय सांख्यिकीय विभाग को देता है।

10.6 जिलाधिकारी की बदलती भूमिका

इसमें हम सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिलाधिकारी की बदलती भूमिका का अध्ययन करने के लिए हमें यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता पूर्व प्रशासन किस प्रकार से कार्य करता था और आजादी के बाद किस प्रकार से? साथ ही यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता के बाद समय-समय पर प्रशासन के पुनर्गठन के कारण और नित्य नवीन चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार से जिलाधिकारी की भूमिका में किस रूप में परिवर्तन आए हैं और वर्तमान में उनका स्वरूप क्या है?

यहाँ हम बताते चलें, जिसकी चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं कि आजादी से पूर्व प्रशासन, जनता के हित में और उनकी भलाई के लिए कार्य नहीं करता था, क्योंकि उस समय यहाँ पर लोकतंत्र नहीं था, वरन अंग्रजी शासन था जो अपने हित के लिए कार्य कर रहा था। इसलिए उस समय आम जनता के कोई अधिकार नहीं थे, वरन् केवल दायित्व थे। इसलिए प्रशासन का कार्य नियामकीय प्रकृति का था। जिसका प्रमुख उद्देश्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था, जिससे अंग्रेजी शासन को अपने हित की सिद्धि में किसी प्रकार के अवरोध का सामना न करना पड़े।

किन्तु स्वतन्त्रता के बाद लोकतन्त्र में प्रशासन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार करने के लिए काम करने लगा। प्रशासन अब जनता पर दबाव बनाकर अपने हित के लिए कार्य नहीं कर रहा है वरन् वह अब जनता के दबाव में, जनता के हित के लिए कार्य कर रहा है। प्रशासन की स्थिति में अब परिवर्तन हो गया है। अब वह स्वामी की स्थिति में न होकर जनता के सेवक के रूप में कार्य कर रहा है।

इसलिए अब सभी नीतियाँ जनता के हित को ध्यान में रखकर निर्मित हो रही हैं और उनका क्रियान्वयन हो रहा है। इन नीतियों का क्रियान्वयन जिला प्रशासन के स्तर पर ही हो रहा है, जिसका प्रमुख जिलाधिकारी होता है। इसलिए जिलाधिकारी की स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है।

परन्तु समय के साथ-साथ कार्यभार की वृद्धि के कारण जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के गठन के फलस्वरुप अब विकास कार्यों से, औपचारिक रुप से काफी हद तक जिलाधिकारी अलग हो गया है। किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि जैसा कि हम पूर्व में बता चुके हैं कि जिलाधिकारी जिला प्रशासन में समन्वयक की भूमिका में होता है और जिले के प्रशासन की सफलता और असफलता के लिए अन्तिम रुप से वही जिम्मेदार होता है। इन विकास कार्यों पर वह निगरानी रखता है।

भारतीय संविधान में 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायती राज व्यवस्था का उपबंध किया गया और उसे लागू किया गया। साथ ही 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा नगरीय स्थानीय स्वशासन का उपबंध कर उसे लागू किया गया, जिसके लिए क्रमशः 11वीं और 12वीं अनुसूची को भारतीय संविधान में शामिल किया गया। इसलिए पंचायतीराज और नगरीय निकाय के कार्यों में वृद्धि से जिलाधिकारी के दायित्वों में वृद्धि हुई, क्योंकि जिलाधिकारी जिला पंचायत का पदेन सदस्य होता है।

चूँकि बहुत से विभाग अब सीधे शासन से निर्देश प्राप्त करते हैं, इसलिए जिलाधिकारी की स्थिति में दिखाई देता है। परन्तु तेजी से हो रहे सामाजिक परिवर्तन के दौर में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का निराकरण करने में जिलाधिकारी का व्यक्तित्व उसके पद और भूमिका को और अधिक महत्ता प्रदान कर देता है।

उपरोक्त तथ्यों के बावजूद स्वतन्त्रता के बाद जिलाधिकारी के पद, स्थिति, सत्ता और प्रभाव में गिरावट आई है, क्योंकि लोकतन्त्र को अपनाने के कारण वह अब स्वामी की स्थिति के बजाय सेवक की स्थिति में है। यद्यपि इसमें परिवर्तन अभी पूरी तरह से नहीं हो पाया है। लोकतान्त्रिक शासन में मंत्री, अपने विभाग का अध्यक्ष होता है, इसलिए वह जिलाधिकारी पर पंचायती राजव्यवस्था लागू होने और स्थानीय नेताओं की सक्रियता से भी उस पर दबाव बना रहता है। एक अन्य प्रमुख कारण होता है, लगातार हो रहे स्थानान्तरण के कारण भी वह उतना प्रभावशाली तरीके से कार्य नहीं कर पाता है।

10.7 सारांश

राज्य में प्रशासन के कार्यों के लिए जिला एक महत्वपूर्ण इकाई रहा है। शासन के बदलते रूपों से उसकी भूमिका में भी बदलाव आता रहा है। प्राचीन काल में जिला प्रशासन के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। मुगलकाल में जिले स्तर का अधिकारी प्रशासन की सफलता का आधार माना जाता था। अंग्रेज शासकों ने जिला प्रशासन का अपने

हित में भरपूर प्रयोग किया तथा जिला प्रशासन के लिए नये कार्य और दायित्वों का निर्धारण भी किया। स्वतंत्रता से पहले जिला प्रशासन मात्र केन्द्र के कार्यों और लक्ष्यों को ध्यान में रखकर कार्य करता था। स्वतंत्रता पश्चात जिला प्रशासन की भूमिका सरकार के कार्यों के निष्पादन के साथ-साथ जन कल्याण के कार्यों के निर्वहन की भी हो गयी है। अब जिले स्तर के अधिकारी और विभाग स्वामी नहीं बल्कि जनता के सेवक के तौर पर कार्य करते हैं। वे जन भावनाओं को ध्यान में रखकर जिला प्रशासन के कार्यों का सम्पादन करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. 73वें वे संवैधानिक संशोधन का सम्बन्ध पंचायतीराज से है। सत्य/असत्य
2. स्वतंत्रता पूर्व जिला प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी। सत्य/असत्य
3. स्वतंत्रता के उपरान्त जिला प्रशासन जनता के दबाव में कार्य करता है। सत्य/असत्य
4. स्वतंत्रता के उपरान्त जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तर दायित्वों में परिवर्तन लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली अपनाने के कारण आई है। सत्य/असत्य

10.8 शब्दावली

नियामकीय कार्य- वे कार्य जो कानून और व्यवस्था की स्थापना से संबंधित होते हैं।

सकारात्मक कार्य- वे कार्य जो मानव जीवन को सरल और उन्हें सक्षम बनाने के लिए किए जाते हैं।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा।
2. भारतीय लोक प्रशासन- बी0एल0 फड़िया।
3. भारतीय लोक प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान- डी0डी0 बसु।

2. भारतीय लोक प्रशासन- एस0सी0 सिंहल।

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्रता के पश्चात जिला प्रशासन के स्वरुप में किस प्रकार का परिवर्तन आया है? इसको स्पष्ट करते हुए जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तर दायित्वों की विवेचना कीजिये।

2. जिला अधिकारी की बदलती भूमिका की विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 11 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 क्या हैं मानवाधिकार?

11.3 भारत में मानवाधिकारों की विकास-यात्रा

11.4 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

- 11.4.1 आयोग का उद्देश्य
- 11.4.2 आयोग का गठन
- 11.4.3 आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति
- 11.4.4 अध्यक्ष और सदस्यों का त्यागपत्र और हठाया जाना
- 11.4.5 अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि
- 11.4.6 आयोग के अधिकारी और कर्मचारी

11.5 आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ

- 11.5.1 आयोग की जाँच से संबंधित शक्तियाँ
- 11.5.2 आयोग की अन्वेशण शक्तियाँ
- 11.5.3 शिकायतों की जाँच प्रक्रिया

11.6 राज्य मानव अधिकार आयोग

- 11.6.1 आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति

11.7 मानव अधिकार न्यायालय और उसकी स्थापना

- 11.7.1 विशेष लोक अभियोजन

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

अपने विकास-क्रम में मनुष्य ने अपनी बेहतरी के लिए अथक प्रयास और प्रयोग किए, क्योंकि प्राणियों में मनुष्य ही अधिक बुद्धिवान था और अपनी बुद्धि के कारण ही वह अधिक सोचने वाला और उस सोच को क्रिया में बदलने वाला प्राणी था। मनुष्य को अपने विकास-क्रम में उसकी चिंतनशील प्रवृति के कारण जो भी उपलब्धियां मिली, उससे उसने अपने जीवन को बेहतर बनाने का कार्य किया और इसी बेहतरी के लिए उसने समाज बनाया और सामाजिक संरक्षण में वह सुरक्षा के साथ रहने लगा। समाज में मनुष्य को सर्वप्रथम जो बहुमुल्य अधिकार की आवश्यकता महसूस हुई होगी, वो सुरक्षा का अधिकार रहा होगा। बढते समाज में बढती आवश्यकताओं के अनुरूप उसे सुरक्षा के साथ-साथ अन्य अधिकारों की भी आवश्यकता महसूस हुई होगी।

अधिकार, मनुष्य के लिए समाज में सम्मान पूर्वक जीने की गारंटी हैं। अधिकारों के अभाव में मनुष्य अपने आप का विकास नहीं कर सकता और ना ही सामाजिक और पारिवारिक उत्तर दायित्वों का निर्वहन कर सकता है। विश्व के राष्ट्रों में बदलते शासन के रूपों और प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने मानव के अधिकारों को भी प्रभावित किया है, लेकिन मनुष्य ने एक बेहतर जीवन के लिए लगातार संघर्ष किया है। उसके संघर्ष का यह परिणाम निकला कि विश्व स्तर पर मानव के अधिकारों की बात होने लगी और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मावनाधिकारों को मान्यता मिली। मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए विश्व स्तर पर और विश्व के देशों द्वारा अपने-अपने संविधानों में उसकी व्याख्या की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि द्वितीय विश्व युद्ध में मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों की घोषणा का एक घोषणा-पत्र 10 दिसम्बर 1948 को लागू हुआ। यह घोषणा-पत्र विश्व के देशों से यह आग्रह करता है कि वह अपने-अपने संविधानों में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए प्रावधान करें।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन और उसके उद्देश्य को जान पायेंगे।

- आयोग का कार्य एवं शक्तियों के विषय में जान पायेंगे।
- राज्य मानव अधिकार आयोग के विषय में जान पायेंगे।

11.2 क्या हैं मानवाधिकार?

मानव अधिकार की भावना का उदय सभ्यता के साथ ही हो गया था। मनुष्य प्राणियों में श्रेष्ठ इसलिए माना जाता है कि उसमें बुद्धि है ओर बुद्धि के प्रयोग से वह स्वतः की तथा दुसरों की सुख-सुविधाओं के विषय में सोचता है। इस परोपकारी सोच के कारण ही मनुष्य प्राणियों में श्रेष्ठ है और सभ्य कहलाता हैं।

अधिकार क्या हैं? कभी रुसो ने कहा था, "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है लेकिन सर्वत्र जंजीरों(बंधनों) में जकड़ा हुआ है।" इसका स्पस्ट अर्थ है कि स्वतंत्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। रुसो से पहले जॉन लॉक ने स्वतंत्रता, सम्पत्ति और जीवन को मनुष्य के मौलिक अधिकार बताए। फ्रांस की राज्य क्रान्ति का नारा था "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व ।"

अधिकार का सामान्य अर्थ उन सुविधाओं और परिस्थितियों से है, जो सभ्य समाज के एक सदस्य के रूप में व्यक्ति के सर्वागीण विकास के लिए आवश्यक है। अधिकारों की धारणा का सम्बन्ध, एक ओर व्यक्तियों की स्वतंत्रताओं से तथा दूसरी ओर राज्य की गतिविधियों के क्षेत्र से है। इस सम्बन्ध में लास्की ने लिखा है, "प्रत्येक राज्य अपने द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों से आंका जाता है, बिना अधिकारों के स्वतंत्रता का आस्तित्व ही सम्भव नहीं है।" प्रत्येक मनुष्य में कुछ अन्तर्निहित शक्तियाँ होती हैं और इन शक्तियों के विकास से मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होता है, लेकिन उन शक्तियों के विकास के लिए मनुष्य को कुछ सुविधाओं की आवश्यकता होती है। सुविधाओं की प्राप्ति के लिए मनुष्य समाज के समक्ष कुछ मागें रखता है। ये मागें अनेक प्रकार की हो सकती हैं, कुछ पूर्णतः स्वार्थ जनित, कुछ जनहित में तथा कुछ तटस्थ। समाज में प्रायः उन मागों को मान लिया जाता है, जो सार्वजनिक हित में हो तथा तटस्थ प्रगृति की हो। समाज द्वारा स्वीकृत ऐसी मागों को, जिन्हें राजनीतिक सत्ता द्वारा भी अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है, अधिकार कहते हैं।

अधिकार समाज की सृष्टि है। समाज द्वारा स्वीकृत होने के बाद ही मागें अधिकार का रूप लेती हैं। प्रायः कुछ विद्वान अधिकारों को राज्य की सृष्टि मानते हैं, वस्तुतः ऐसा नहीं है। जैसा कि लॉस्की ने इस सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि "राज्य अधिकारों की सृष्टि नहीं करता, अपितु उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान करता है तथा किसी समय राज्य के स्वरूप को समाज द्वारा प्रदत्त अधिकारों की मान्यता के आधार पर ही समझा जा सकता है।"

समाज के बाहर अधिकारों की सृष्टि नहीं होती है। समाज द्वारा स्वीकृत न किये जाने पर किसी मांग को बलपूर्वक कार्य रूप में लाया जा सकता है। उस दशा में अधिकार, अधिकार नहीं अपितु शक्ति हो जाते हैं, यह हॉब्स की प्राकृतिक दशा का चित्रण को दर्शाता है, कार्य रूप में इसका परिणाम यह होगा कि समाज अस्त-व्यस्त हो जायेगा। अतः मांग के पीछे समाज की स्वीकृति आवश्यक है। अधिकार समाज में ही सम्भव हैं। शून्य में व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हो सकते। इसीलिए विद्वानों द्वारा बार-बार यह कहा जाता है कि राबिन्सन क्रूसो जैसे व्यक्ति के निर्जन टापू में कोई अधिकार नहीं थे।

अधिकारों का स्वरूप आवश्यक रूप से जनकल्याणकारी होता है। उनका आधार ही सामाजिक कल्याण है। मैकन ने तो अधिकारों को इसी दृष्टि से परिभाषित करते हुए कहा कि "अधिकार सामाजिक हित के लिए कुछ लाभदायक परिस्थितियाँ हैं, जो कि वास्तविक विकास के लिए अनिवार्य है।" अधिकारों के माध्यम से व्यक्ति और समाज के हितों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि उन्हीं मॉगों को स्वीकृति प्रदान की जाये जो इस ध्येय की प्राप्ति में सहायक हों। यही कारण है कि व्यक्ति को कभी भी ऐसे कार्यों को करने की स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जाती है, जो उसने व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में बाधक हो, जैसे- जुआ खेलना, शराब पीना, आत्महत्या करना आदि। इन कार्यों से समाज के सामूहिक हित में भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

अधिकारों का सामूहिक हित से सम्बद्ध होना इस बात को तय करता है कि अधिकार और कर्त्तव्य परस्पर आबद्ध हैं। एक व्यक्ति का अधिकार दूसरे का कर्त्तव्य है। अतः अधिकारों का उपभोग उसी दशा में हो सकता है जब व्यक्ति दूसरे के अधिकारों को भी स्वीकार कर ले। कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए ही व्यक्तियों को समाज द्वारा अधिकार प्रदान किये जाते हैं। हॉब्स ने इस सम्बन्ध में लिखा, "अधिकार और कर्त्तव्य सामाजिक कल्याण की दशाएँ हैं। समाज के प्रत्येक सदस्य का इस कल्याण के प्रति द्वैध सम्बन्ध है। उसका उसमें एक भाग है, वह उसके अधिकार हैं। उसको इसमें एक भाग लेना है- वह उसके कर्त्तव्य हैं।"

अधिकार एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि उसकी प्रत्याभूति(गारंटी) राज्य द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। राज्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अधिकारों के पालन की उचित व्यवस्था बनाये। व्यक्तित्व के विकास की परिस्थितियों को समाज द्वारा स्वीकृति मिलने पर भी तब तक वे अधिकार नहीं कहला सकते हैं, जब तक कि राज्य उनके संरक्षण व पालन की जिम्मेदारी अपने ऊपर ना ले ले, अर्थात् उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दें। राज्य की स्वीकृति के अभाव में ऐसी मांगें परम्पराऐं व रीति-रिवाज हो सकती हैं, अधिकार नहीं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए बोसांके ने कहा कि अधिकार वह मांग है, जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।

सामान्यतया मानव अधिकारों को प्रकति की देन माना जाता है। मानव का अपने जीवन के प्रति सुरक्षा की भावना उसके अपने अधिकारों के प्रति चेतना की प्रथम जागृति है। यद्यपि मानवाधिकार क्या हैं? इसे किसी एक पदबनध में बॉंध पाना सम्भव नहीं है। हैरल्ड लास्की ने मानवाधिकारों को परिभाषित करते हुए लिखा कि "Rights are those essential condition without a man can not do his best" बिना अधिकारों के मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अधिकार ही व्यक्ति को पूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। मानव तथा अन्य प्राणियों में जो मुख्य अंतर है, वह है- विवेक, मनन व चिंतन करने की क्षमता। इसी क्षमता के कारण मानव सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। "यः मनन कारोति सः मानवः" अतः मनुष्य को अधिकार केवल इसलिए प्राप्त हैं कि वह अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक चिंतनशील, तर्कसम्पन्न तथा मुल्य युक्त है। अधिकारों के अभाव में मानव के मानवीय गुणों का विकास तथा उसके आध्यात्मिक एंव भौतिक आकांक्षाओं की संतुष्टि सम्भव नहीं होगी।

सामान्य अर्थों में मानवाधिकार से आशय है, मानव चाहे वह किसी भी लिंग, धर्म, वर्ग व जाति का हो, किसी भी देश, प्रदेश का हो, अमीर हो या गरीब, सभी को अपने पूर्ण विकास, सुरक्षा व सम्मान पूर्वक जीवन जीने का अधिकार जन्म के साथ ही प्राप्त होना चाहिए। अर्थात मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को मानव जाति का सदस्य होने के नाते तथा सम्मान पूर्वक जीवन जीने के लिए व मानव जाति की श्रेष्ठता के लिए प्राप्त होते हैं। अधिकार मनुष्य को उसके सम्पूर्ण वयक्तित्व के विकास के लिए, उसकी प्रतिष्ठा के लिए तथा उसके शान्ति पूर्ण जीवन जीने के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रश्न यह भी है कि मानव अधिकारों की बात कहाँ पर आती है? अगर बात करें, प्रजातंत्रीय शासन-व्यवस्था की तो इस व्यवस्था में मौजुद संविधान तथा नियम-कानूनों को जनता के हितों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। एक लोक-कल्याणकारी राज्य का सपना इसी शासन-व्यवस्था में पूर्ण होता है। सामान्य जन की सुरक्षा, उसकी स्वतंत्रता उसके अधिकार, इन सभी को ध्यान में रखकर प्रजातंत्रीय शासन-व्यवस्था का जन्म हुआ है। जन-सामान्य के हितों का पूर्ति के लिए जनता द्वारा एक चुनी हुई सरकार होती है, उन्हें न्याय मिल सके इसके लिए एक निष्पक्ष न्यायपालिका होती है, जन-सामान्य सुरक्षित रह सके इसके लिए पुलिस प्रशासन होता है। ये सब होने के उपरान्त भी जन-सामान्य में असुरक्षा की भावना घर कर गयी है, लोग अपनी सामान्य आवश्यकताओं के लिए संघर्ष कर रहे हैं, न्याय मिल सके, निष्पक्ष न्याय मिल सके इसके लिए संघर्ष कर रहे हैं, तो एसी स्थिति में जब कि सब कुछ मौजुद है और प्राप्त नहीं हो रहा है तब अधिकारों, मानाधिकारों की बात आती है।

11.3 भारत में मानवाधिकारों की विकास-यात्रा

भारत में मानव अधिकारों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल से ही भारत में मानव अधिकारों का उल्लेख मिलता है। भारत में जितना पुराना मानव अधिकारों का इतिहास है उतना ही पुराना इसकी प्राप्ति के संघर्ष का भी इतिहास है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीयों ने लगातार अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। यही संघर्ष विश्व समुदाय के लोगों ने भी किया। आधुनिक समय में भारत में मानव अधिकारों के लिए संघर्ष तो औपनिवेशिक काल में ही प्रारम्भ हो चूका था और इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जिस संस्था की आवश्यकता थी, उसकी शुरुआत तो 1930 के लगभग जवाहर लाल नेहरु और उनके सहयोगियों ने "नागरिक स्वतंत्रता संघ" की स्थापना के साथ ही हो कर दी थी। यह संघ जनता के बीच संदेश पहुँचाने में सफल रहा था। सन् 1974 में गठित नागरिक स्वतंत्रता संगठन ने भी यही कार्य किया। 1975 में जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में नागरिक स्वतंत्रता तथा प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए संघ का गठन किया गया, जिसका ध्येय राज्य सत्ता के अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करना था। इसके साथ ही भारत के कई राज्यों में भी मानव अधिकार संगठनों का उदय हुआ। दिल्ली तथा मुम्बई में प्रजातांत्रिक अधिकारों की सुरक्षार्थ समिति बनी, वहीं बिहार में 'मुक्त विधिक सहायता समिति' का गठन किया गया।

परन्तु राजनीतिक दृष्टि से इस दिशा में पहला कदम जनता पार्टी द्वारा अपने चुनाव घोषणा-पत्र में इसका उल्लेख किया गया। जनता पार्टी 'नागरिक अधिकार आयोग' गठित करना चाहती थी, तथा इस आयोग में सदस्यों के रुप में न्यायाधीशों को प्राथमिकता देना था। 1983 के पूर्ववर्ती वर्षों में अल्प संख्यक आयोग ने सरकार से एक राष्ट्रीय एकाकारी मानवाधिकारी आयोग गठन करने की सिफारिश की तथा अल्प संख्यक आयोग ने सरकार से इस आयोग को संवैधानिक अधिकार दिये जाने की भी मांग की।

1991 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी ने अपने 'चुनाव घोषणा-पत्र' में एक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग गठित करने की घोषणा की। पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री नरसिम्हाराव ने स्पष्ट रुप में घोषणा की कि किसी भी तरह से मानव अधिकारों के हनन् को सहन नहीं किया जा सकता है। 24 अप्रेल 1992 को कांग्रेस प्रवक्ता विठ्ठल नरहरि गाडगिल ने यह घोषणा की कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन, भूमिका और प्रकृति के विषय में एक राष्ट्रीय चर्चा होनी चाहिए, क्योंकि वर्तमान में यह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा है तथा वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया जाए। 14 सितम्बर 1992 के राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन को लेकर एक प्रस्ताव रखा, लेकिन मिजोरम के तत्कालीन

मुख्यमंत्री श्री लनथनवाला ने आयोग के गठन से सम्बन्धित प्रस्ताव की यह कह कर आलोचना की कि भारतीय संविधान पहले से ही नागरिकों के अधिकारों के सुरक्षा की गारंटी देता है और भारत में एक स्वतंत्र प्रेस के होते हुए इस तरह के आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री जनार्दन रेड्डी ने सचेत किया कि आयोग के कार्यों और अधिकारों की टकराहट पहले से स्थापित संस्थाओं के विधिक कार्यों से नहीं होनी चाहिए। सम्मेलन में उपस्थित हिमांचल प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्रियों ने सलाह दी कि एक ही राष्ट्रीय आयोग, अल्पसंख्यक, पिछड़े, अनुसूचित जाति, जनजाति आयोगों के कार्यों के साथ तालमेल कर सकता है। राजनीतिक दलों के अधिकांश राजनेता इस पक्ष में थे कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन होना चाहिए, जिसके चलते केन्द्रीय सरकार इस दशा में कदम उठाने के लिए मानसिक रुप से तैयार हुई। इन भीतरी परिस्थितियों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मानव अधिकारों को लेकर गतिविधियाँ तेज हो रही थीं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तीसरी दुनियां के देशों पर मानव अधिकारों के हनन् को रोकने का एक बहुत बड़ा दबाव था, क्योंकि तीसरी दुनियां के देशों के सामने गहरी आर्थिक व राजनीतिक चुनौती थी, इसलिए इन देशों में मानव अधिकारों का हनन् भी हो रहा था, जिस कारण ये देश राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग बनाने के लिए प्रयासरत थे।

भारत सरकार ने आयोग के गठन की दिशा में एक दिन में सभी कदम नहीं उठाए वरन् इसके पिछे भारत के भीतर बढती मानव अधिकारों के हनन की घटनाएँ तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा उनकी आलोचनाओं ने भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन का मार्ग को प्रशस्त किया। इन कारणों के चलते भारत सरकार ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग संबंधी विधेयक 14 मई 1992 को संसद में रखा। विधेयक स्थायी समिति को सौंप दिया गया। 28 सितम्बर 1993 को राष्ट्रपति द्वारा मानव अधिकार संबंधी अध्यादेश जारी किया गया। थोड़े-बहुत सुझावों एंव संशोधनों के उपरान्त विधेयक को दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया। इसके उपरान्त यह "मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993" के रुप में सामने आया। इसी अधिनियम के तहत् 12 अक्टुबर 1993 को 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग' का गठन हुआ।

11.4 राष्ट्रीय मानव अधिकारआयोग

भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग और मानव अधिकारन्यायालयों की स्थापना तथा मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए संसद द्वारा ''मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993'' पारित किया गया, जो पूरे देश में 28 सितम्बर 1993 को प्रभावी हुआ। इसी अधिनियम के आधार पर भारत में

'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग' का गठन किया गया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को विस्तार से समझने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

11.4.1 आयोग का उद्देश्य

मानव अधिकारों का बेहतर संरक्षण तथा संवर्धन(प्रोत्साहन), करना आयोग का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

11.4.2 आयोग का गठन

भारत सरकार ने 'मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993' के द्वारा प्राप्त शक्तियों और सौंपे गये कार्यों को सम्पादित करने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग गठित किया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के लिए-

1. केन्द्रीय सरकार, एक निकाय का, जो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के नाम से ज्ञात होगा, इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए, गठन करेगी।
2. आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात-
   - एक अध्यक्ष, जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है;
   - एक सदस्य, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है;
   - एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है या रहा है;
   - दो सदस्य, जो ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाऐंगे, जिन्हें मानव अधिकारों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है।
3. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष आयोग के सदस्य समझे जाऐंगे।
4. एक महासचिव होगा, जो आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और वह आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो यथास्थिति, आयोग या अध्यक्ष उसे प्रत्यायोजित करें।
5. आयोग का मुख्यालय दिल्ली में होगा और आयोग, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, भारत में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित कर सकेगा।

11.4.3 आयोग अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति

राष्ट्रीय मानवअधिकार आयोग के सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक 'नियुक्ति समिति' है, जिसकी सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की जाती है।

1. राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा अध्यक्ष और (अन्य सदस्यों) को नियुक्त करेगा, परन्तु इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात की जाऐंगी, जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात-
    - प्रधानमंत्री- अध्यक्ष
    - लोकसभा का अध्यक्ष- सदस्य
    - भारत सरकार के गृह मंत्रालय का भारसाधन मंत्री- सदस्य
    - लोकसभा के विपक्ष का नेता- सदस्य
    - राज्यसभा में विपक्ष का नेता- सदस्य
    - राज्यसभा का उपसभापति- सदस्य
2. अध्यक्ष या किसी सदस्य की कोई नियुक्ति केवल समिति में कोई रिक्त होने के कारण अमान्य नहीं होगी।

11.4.4 अध्यक्ष और सदस्यों का त्यागपत्र और हटाया जाना

आयोग के सदस्यों को पद से हटाने के लिए अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान हैं-

अध्यक्ष या कोई सदस्य, राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित सूचना द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।

आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य को उसके पद से राष्ट्रपति के आदेश द्वारा, उनके उच्चतम न्यायालय को निर्देश दिये जाने पर उच्चतम न्यायालय के द्वारा उस संबंध में विहित प्रक्रिया के अनुसार की गयी जाँच पर यह रिपोर्ट देने के बाद कि अध्यक्ष या अन्य सदस्य किसी ऐसे कदाचार(र्दुव्यवहार) या अक्षमता के आधार पर हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति आयोग के सदस्यों को-

- न्याय वर्णित दिवालिया घोषित कर दिया गया है,
- अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी वैतनिक रोजगार में अपने कार्यकाल में लिप्त रहने पर,

- मानसिक या शरीर की दुर्बलता के कारण पद पर बने रहने के अयोग्य होने पर,
- विकृत चित्त का होने पर,
- किसी अपराध के लिए राष्ट्रपति की दृष्टि में नैतिक पतन वाला है, सिद्ध होने पर या सजा होने पर।

उपरोक्त परिस्थितियों में राष्ट्रपति आयोग के सदस्यों को अपने पद से हटा सकता है।

कोई भी सदस्य 70 वर्ष की आयु पूर्ण करने के बाद पद ग्रहण नहीं कर सकता है।

11.4.5 अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि

अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान हैं-

1. अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या 70 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करेगा।
2. सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक अपना पद धारण करेगा तथा पांच वर्ष की और अवधि के लिए पुनः नियुक्ति का पात्र होगा। परन्तु कोई भी सदस्य सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात अपना पद धारण नहीं करेगा।
3. अध्यक्ष या कोई सदस्य, अपने पद पर न रह जाने पर, भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी भी ओर नियोजन का पात्र नहीं होगा।

कुछ परिस्थितियों में सदस्य का अध्यक्ष के रूप में कार्य करना या उसके कार्यों का निर्वहन करना-

1. अध्यक्ष की मृत्यु, पदत्याग या अन्य कारण से उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में राष्ट्रपति अधिसूचना द्वारा सदस्यों में से किसी एक सदस्य को अध्यक्ष के रूप में तब तक कार्य करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा, जब तक ऐसी रिक्ति को भरने के लिए नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हो जाती।
2. जब अध्यक्ष छुट्टी पर, अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है, तब सदस्यों में से एक ऐसा सदस्य जिसे राष्ट्रपति अधिसूचना द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत करे, उस तारीख तक अध्यक्ष के कृत्यों का निर्वहन करेगा, जिस तारीख को अध्यक्ष अपने कर्तव्यों को फिर से संभालता है।

11.4.6 आयोग के अधिकारी और कर्मचारी

केन्द्रीय सरकार, आयोग को भारत सरकार के सचिव स्तर का एक अधिकारी, जो आयोग का महासचिव होगा, आयोग को उपलब्ध करायेगी। ऐसे अधिकारी के अधीन, जो पुलिस महानिदेशक के स्तर से नीचे का न हो, ऐसे पुलिस और अन्वेषण कर्मचारी तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी, जो आयोग के कार्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हो, केन्द्र सरकार आयोग को उपलब्ध कराएगी।

ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाऐं, आयोग ऐसे अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारियों को नियुक्त कर सकेगा, जो वह आवश्यक समझे। नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारी के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं।

11.5 आयोग के कार्य एंव शक्तियाँ

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अनेक कार्य हैं। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य मानवाधिकारों का संरक्षण है और अन्य कार्य इसी से जुड़े हैं। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा- 12 में आयोग के कार्यों/कृत्यों का उल्लेख किया गया है। जिसमें आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा-

1. किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा या उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर या स्वप्रेरणा से जाँच करना-
    - मानव अधिकारों का किसी लोक सेवक द्वारा अतिक्रमण या दुरुपयोग किए जाने की जाँच करेगी, तथा
    - ऐसे अतिक्रमण के निवारण में किसी लोक सेवक द्वारा की गई उपेक्षा की, शिकायत के बारे में जाँच करेगी।
2. किसी न्यायालय के समक्ष लंबित किसी कार्यवाही में, जिसमें मानव अधिकारों के उल्लंघन का कोई मामला है, उस मामले में हस्तक्षेप करना,
3. राज्य सरकार को सूचित करते हुए, राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, जहाँ व्यक्ति उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरूद्ध किया जाता है या रखा जाता है, उनके जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए, निरीक्षण करना और उन पर सरकार को सिफारिश करना,

4. संविधान या मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित रक्षा उपायों का पुनर्विलोकन करना और उनके प्रभावपूर्ण कार्यन्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना,
5. ऐसी बातों का, जिनके अन्तर्गत आतंकवाद के कार्य हैं और जो मानव अधिकारों के उपभोग में विघ्न डालती हैं, पुनर्विलोकन करना और समुचित उपचार के उपायों की सिफारिश करना,
6. मानव अधिकारों से सम्बन्धित संधियों और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और उनके प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सिफारिशें करना,
7. मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसको प्रोत्साहित करना,
8. समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकारों सम्बन्धी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, संचार विचार माध्यमों, गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षा उपायों के प्रति जागरूकता का संवर्धन करना,
9. मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को उत्साहित करना,
10. ऐसे अन्य कार्यों को करना, जो मानव अधिकारों के प्रोन्नति के लिए आवश्यक समझे जाए।

इस प्रकार आयोग की परिधि में वे सभी कार्य आते हैं जो किसी न किसी रुप में मानव अधिकारों से जुड़े होते हैं। वस्तुतः आयोग का कार्य मात्र मानव अधिकारों का संरक्षण करना ही नहीं है, अपितु मानव अधिकारों के प्रति जन- सामान्य में जागरुकता फैलाना और इस क्षेत्र में कार्य कर रहे संस्थाओं को प्रोत्साहित भी करना है।

11.5.1 आयोग की जाँच से सम्बन्धित शक्तियाँ

1. आयोग को, इस अधिनियम के अधीन शिकायतों के बारे में जाँच करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में वे सभी शक्तियाँ होगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को है; अर्थात्-
    - साक्षियों को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उनकी परीक्षा करना,
    - किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना,
    - शपथ पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना,

- किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि अपेक्षित करना,
- साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना,
- कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए।

2. आयोग को किसी व्यक्ति से, ऐसे किसी विशेषाधिकार के अधीन रहते हुए, जिसका उस व्यक्ति द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन दावा किया जाए, ऐसी बातों या विषयों पर सूचना देने की अपेक्षा करने की शक्ति होगी, जो आयोग की राय में जाँच की विषयवस्तु के लिए उपयोगी हो या उससे सुसंगत हो और जिस व्यक्ति से, ऐसी अपेक्षा की जाए वह भारतीय दंड संहिता की धारा 176 और धारा 177 के अर्थ में ऐसी सूचना देने के लिए वैध रूप से आबद्ध समझा जाएगा।

3. आयोग या आयोग द्वारा इस निमित्त विशेषतया प्राधिकृत कोई ऐसा अन्य अधिकारी, जो राजपत्रित अधिकारी की पक्ति से नीचे का न हो, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 100 के उपबंधों के, जहाँ तक वे लागू हों, अधीन रहते हुए किसी ऐसे भवन या स्थान में, जिसकी बाबत आयोग के पास यह विश्वास करने का कारण है कि जाँच की विषय-वस्तु से सम्बन्धित कोई दस्तावेज वहाँ पाया जा सकता है, प्रवेश कर सकेगा और किसी ऐसे दस्तावेज को अभिगृहित कर सकेगा अथवा उससे उद्धरण या उसकी प्रतिलिपियाँ ले सकेगा।

4. आयोग को सिविल न्यायालय समझा जाएगा और जब कोई ऐसा अपराध, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 175, धारा 178, धारा 179, धारा 180 या धारा 228 में वर्णित है, आयोग की दृष्टिगोचरता में या उपस्थिति में किया जाता है तब आयोग, अपराध गठित करने वाले तथ्यों तथा अभियुक्त के कथन को अभिलिखित करने के पश्चात, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में उपबंधित है, उस मामले को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेज सकेगा जिसे उसका विचारण करने की अधिकारिता है और वह मजिस्ट्रेट जिसे कोई ऐसा मामला भेजा जाता है, अभियुक्त के विरूद्ध शिकायत सुनने के लिए इस प्रकार अग्रसर होगा, मानो वह मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 346 के अधीन उसको भेजा गया हो।

5. आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में तथा धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा और आयोग को दंड प्रक्रिया

संहिता, 1973 की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा।

6. जहाँ आयोग ऐसा करना आवश्यक और समीचीन समझता है, वहाँ वह आदेश द्वारा, उसके समक्ष फाइल की गई या लम्बित किसी शिकायत को उस राज्य के राज्य आयोग को, जिससे इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार निपटारे के लिए शिकायत उद्भूत होती है, अन्तरित कर सकेगा; परन्तु ऐसी कोई शिकायत तब तक अन्तरित नहीं की जाएगी जब तक कि वह शिकायत ऐसी न हो जिसके सम्बन्ध में राज्य आयोग को उसे ग्रहण करने की अधिकारिता न हो।
7. अधीन अन्तरित की गई प्रत्येक शिकायत पर राज्य आयोग द्वारा ऐसे कार्यवाही की जाएगी और उसका निपटारा किया जाएगा, मानो वह शिकायत आरम्भ में उसके समक्ष फाइल की गई हो।

11.5.2 आयोग की अन्वेषण संबंधी शक्तियाँ

1. आयोग, जाँच से सम्बन्धित कोई अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार की सहमति से केन्द्रीय सरकार या उस राज्य सरकार के किसी अधिकारी या अन्वेषण अभिकरण की सेवाओं का उपयोग कर सकेगा।
2. जाँच से सम्बन्धित किसी विषय का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए कोई ऐसा अधिकारी या अभिकरण, जिसकी सेवाओं उपयोग किया जाता है, आयोग के निदेशन और नियंत्रण के अधीन रहते हुए-
    - किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और हाजिर करा सकेगा तथा उसकी परीक्षा कर सकेगा,
    - किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश किए जाने की अपेक्षा कर सकेगा, और
    - किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा कर सकेगा।
3. किसी ऐसे अधिकारी या अभिकरण के समक्ष जिसकी सेवाओं का उपयोग किया जाता है, किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के सम्बन्ध में वैसे ही लागू होंगे, जैसे वे आयोग के समक्ष साक्ष्य देने के अनुक्रम में किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के सम्बन्ध में लागू होते है।

4. जिस अधिकारी या अभिकरण की सेवाओं का उपयोग किया जाता है, वह जाँच से सम्बन्धित किसी विषय का अन्वेषण करेगा और उस पर आयोग को ऐसी अवधि के भीतर, जो आयोग द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट की जाए, रिपोर्ट देगा।
5. आयोग को दी गई रिपोर्ट में कथित तथ्यों के और निकाले गए निष्कर्षों के यदि कोई हो, सही होने के बारे में अपना समाधान करेगा और इस प्रयोजन के लिए आयोग ऐसी जाँच, जिसके अन्तर्गत उस व्यक्ति की या उन व्यक्तियों की परीक्षा है, जिसने या जिन्होंने अन्वेषण किया हो या उसमें सहायता की हो, कर सकेगा, जो वह ठीक समझे।

11.5.3 जाँच संबंधी शक्तियाँ

आयोग, मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायतों की जाँच निम्नलिखित प्रक्रियाओं के माध्यम से करता है-

पहला- केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा उसके अधीनस्थ किसी अन्य प्राधिकारी या संगठन से ऐसे समय के भीतर, जो आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, जानकारी या रिपोर्ट मांग सकेगा। लेकिन यदि आयोग को नियत समय के भीतर जानकारी या रिपोर्ट प्राप्त नहीं होती है तो वह शिकायत कें बारे में स्वयं जाँच कर सकेगा। यदि जानकारी या रिपोर्ट की प्राप्ति पर, आयोग का यह समाधान हो जाता है कि कोई और जाँच अपेक्षित नहीं है अथवा अपेक्षित कार्यवाही सम्बन्धित सरकार या प्राधिकारी द्वारा आरम्भ कर दी गई है या की जा चुकी है तो वह शिकायत के बारे में कार्यवाही नहीं कर सकेगा और शिकायतकर्ता को तद्नुसार सूचित कर सकेगा,

दूसरा- पहले क्रम में अंतर्विष्ट किसी बात पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यदि आयोग, शिकायत की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझता है तो जाँच आरम्भ कर सकेगा।

आयोग इस अधिनियम के अधीन की गई किसी जाँच के दौरान और उसके पूरा होने पर निम्नलिखित कार्यवाही कर सकेगा, अर्थात्-

1. जहाँ जाँच से किसी लोक सेवक द्वारा मानव अधिकारों का अतिक्रमण या मानव अधिकारों के अतिक्रमण के निवारण में उपेक्षा या मानव अधिकारों के अतिक्रमण का उत्प्रेरण प्रकट होता है, तो वहाँ वह सम्बन्धित सरकार या प्राधिकारी को-

- शिकायतकर्ता या पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के सदस्यों को ऐसा प्रतिकर या नुकसान का संदाय(भुगतान) करने की सिफारिश कर सकेगा, जो आयोग आवश्यक समझे,
- सम्बन्धित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरूद्ध अभियोजन के लिए कार्यवाहियाँ आरम्भ करने या कोई अन्य समुचित कार्यवाही करने के लिए सिफारिश कर सकेगा, जो आयोग ठीक समझे,
- ऐसी अन्य कार्यवाही करने की सिफारिश कर सकेगा, जिसे वह ठीक समझे।

2. उच्चतम न्यायालय या सम्बन्धित उच्च न्यायालय को ऐसे निर्देश, आदेश या रिट के लिए जो, वह न्यायालय आवश्यक समझे, अनुरोध करना,
3. जाँच के किसी प्रक्रम पर सम्बद्ध सरकार या प्राधिकारी को पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के सदस्यों को ऐसी तत्काल अन्तरिम सहायता मंजूर करने की, जो आयोग आवश्यक समझे, सिफारिश करना,
4. आयोग अपनी जाँच रिपोर्ट की एक प्रति अपनी सिफारिशों सहित, सम्बन्धित सरकार या प्राधिकारी को भेजेगा और सम्बन्धित सरकार या प्राधिकारी, एक मास की अवधि के भीतर या ऐसे और समय के भीतर जो आयोग अनुज्ञात करे, रिपोर्ट पर अपनी टीका-टिप्पणी आयोग को भेजेगा, जिसके अन्तर्गत उस पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्यवाही है,
5. आयोग, सम्बन्धित सरकार या प्राधिकारी की टीका-टिप्पणी सहित, यदि कोई हो, अपनी जाँच रिपोर्ट तथा आयोग की सिफारिशों पर सम्बन्धित सरकार या प्राधिकारी द्वारा की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्यवाही को प्रकाशित करेगा।

11.6 राज्य मानव अधिकार आयोग

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अधीन राज्यों में मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों के लिए प्रत्येक राज्य 'राज्य मानव अधिकार आयोग' का गठन करेगा।

1. कोई राज्य सरकार, इस अध्याय के अधीन राज्य आयोग को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए और सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए एक निकाय का गठन कर सकेगी जिसका नाम (राज्य का नाम) मानव अधिकार आयोग होगा।

2. राज्य आयोग ऐसी तारीख से, जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात्-

   - एक अध्यक्ष, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है,
   - एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, या राज्य में जिला न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है और जिसे जिला न्यायाधीश के रूप में कम से कम सात वर्ष का अनुभव है,
   - एक सदस्य, जो ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किया जाएगा, जिन्हें मानव अधिकारों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है।

3. एक सचिव होगा, जो राज्य आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और वह राज्य आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा, जो राज्य आयोग उसे प्रत्यायोजित करें।
4. राज्य आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट हो।
5. कोई राज्य आयोग केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 और 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से सम्बन्धित विषयों की बाबत मानव अधिकारों के अतिक्रमण किए जाने की जाँच कर सकेगा।

   परन्तु यदि किसी ऐसे विषय के बारे में आयोग द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी अन्य आयोग द्वारा पहले से ही जाँच की जा रही है, तो राज्य आयोग उक्त विषय के बारें में जाँच नहीं करेगा।

   परन्तु यह और कि जम्मू-कश्मीर मानव अधिकार आयोग के सम्बन्ध में, यह उपधारा ऐसे प्रभावी होगी मानो "केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 और 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से सम्बन्धित विषयों की बाबत" शब्द और अंकों के स्थान पर" जम्मू-कश्मीर राज्य को यथा लागू संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से सम्बन्धित विषयों की बाबत और उन विषयों की बाबत जिनके सम्बन्ध में उस राज्य के विधान-मंडल को विधियां बनाने की शक्ति है" शब्द और अंक रख दिए गए हों।

6. दो या दो से अधिक राज्य सरकारें, राज्य आयोग के अध्यक्ष या सदस्य की सहमति से, यथास्थिति, ऐसे अध्यक्ष या सदस्य को साथ-साथ अन्य राज्य आयोग का सदस्य नियुक्त कर सकेगी यदि ऐसा अध्यक्ष या सदस्य ऐसी नियुक्ति के लिए सहमति देता है।

परन्तु उस राज्य की बाबत जिसके लिए, यथास्थिति, सामान्य अध्यक्ष या सदस्य दोनों नियुक्त किए जाने हैं इस धारा के अधीन की गई प्रत्येक नियुक्ति धारा 22 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट समिति की सिफारिशें अभिप्राप्त करने के पश्चात् की जाएगी।

11.6.1 आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति

राज्यपाल अपन हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा अध्यक्ष और सदस्यों को नियुक्त करेगा। परन्तु प्रत्येक नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात की जाएगी, जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात-

- मुख्यमंत्री- अध्यक्ष
- विधानसभा का अध्यक्ष- सदस्य
- उस राज्य के गृह विभाग का भारसाधक मंत्री- सदस्य
- विधानसभा में विपक्ष का नेता- सदस्य

परन्तु जहाँ राज्य में विधान परिषद है, वहाँ उस परिषद का सभापति और उस परिषद में विपक्ष का नेता भी समिति के सदस्य होंगे। तथा उच्च न्यायालय का कोई आसीन न्यायाधीश या कोई आसीन जिला न्यायाधीश, सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात ही नियुक्त किया जाएगा, अन्यथा नहीं। राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य की कोई नियुक्ति, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि उप निर्दिष्ट समिति में कोई रिक्ति है।

11.7 मानव अधिकार न्यायालय और उसकी स्थापना

न्याय प्रणाली को गति प्रदान करने का कार्य न्यायालय का होता है। न्यायालयों के माध्यम से ही पीड़ित एंव व्यथित व्यक्तियों को न्याय प्राप्त होता है। अधिकारों में संशोधन भी न्यायालयों द्वारा ही होता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए भी न्यायालय स्थापित हो।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम-1993, की धारा 30 में मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना में विषय में कहा गया है कि "मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों के त्वरित विचारण हेतु राज्य सरकार अधिसूचना जारी

करके प्रत्येक जिले के लिए एक सेशन न्यायालय को मानवाधिकार न्यायालय के रुप में विनिर्दिष्ट कर सकती है।" ऐसा करने से पहले राज्य सरकार को उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श कर सहमति प्राप्त करनी होगी, साथ ही इन न्यायालयों का कार्य मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों/अपराधों का निपटारा करना होगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, कोई सेंशन न्यायालय पहले से ही मानवाधिकारों से संबंधित मामलों के लिए विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट है अथवा मानवाधिकारों से संबंधित मामलों के लिए पहले से ही कोई विशेष न्यायालय गठित है तो इस धारा के उपबन्ध लागू नहीं होंगे, अर्थात् राज्य सरकार के लिए अधिसूचना जारी कर ऐसे न्यायालय को विनिर्दिष्ट करने की आवश्यकता नहीं होगी।

मानवाधिकार संरक्षण की की धारा 30 के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक जिले में एक मानवाधिकार न्यायालय होना चाहिए। ऐसा न्यायालय पृथक से विशेष न्यायालय हो सकता है या सेशन न्यायालय को ही मानवाधिकार न्यायालय के रुप में विनिर्दिष्ट किया जा सकता है।

जैसा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता- 1973 की धारा 09 में प्रविधिक है कि प्रत्येक जिले में एक सेशन न्यायालय होगा। सेशन न्यायालयों की अधिकारिता के विषय में प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 26 में किया गया है। इस धारा के अनुसार सेशन न्यायालय को भारतीय दण्ड संहिता की परिधि में आने वाले मामलों की सुनवाई की अधिकारिता तो होती ही है, परन्तु इसी धारा के खण्ड (ख) के अर्न्तगत ऐसे मामलों का विचारण भी हो सकता है, जो किसी अन्य विधि के अधीन विनिर्दिष्ट हैं। मानवाधिकार संबंधी मामले भी इसी खण्ड के अर्न्तगत आते हैं। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 30 में मानवाधिकार मामलों के विचारण के लिए सेशन न्यायालय को अधिकार प्रदान किये गये हैं, इसलिए सेशन न्यायालय द्वारा ऐसे मामलों का विचारण किया जा सकता है।

11.7.1 विशेष लोक अभियोजन

मानवाधिकार न्यायालयों में राज्य की ओर से मामलों की पैरवी करने के लिए मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 31 में विशेष लोक अभियोजनों को नियुक्त करने के विषय में प्रावधान है। जिसके अर्न्तगत राज्य सरकार अधिसूचना जारी करके प्रत्येक मानवाधिकार न्यायालय के लिए किसी को लोक अभियोजन के रुप में विनिर्दिष्ट कर सकती है, अथवा किसी को विशेष लोक अभियोजन के रुप में नियुक्त कर सकती है। इस लोक अभियोजन अथवा विशेष लोक अभियोजन के लिए ऐसे अधिवक्ता पात्र होंगे, जिन्हें कम से कम सात वर्षों के वकालत का अनुभव रहा हो। लोक अभियोजन को नियुक्त करने के संबंध में प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता-1973 की धारा 24

में किया गया है। इसकी उप-धारा (7) में लोक अभियोजन के लिए न्यूनतम सात वर्षों का अधिवक्ता के रुप में अनुभव का होना निर्धारित किया गया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'नागरिक स्वतंत्रता संघ' की स्थापना कब हुई?

2. किस भारतीय राजनीतिक दल द्वारा 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग' के गठन की घोषणा अपने चुनावी घोषणा-पत्र में की गयी?

3. मानव अधिकार संबंधी विधेयक संसद में कब रखा गया?

4. 12 अक्टुबर 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया। सत्य/असत्य

5. यह कथन किसका है कि "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है, लेकिन सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।"

6. फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति का नारा था "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व।" सत्य/असत्य

7. मानव अधिकारों का बेहतर संरक्षण और संवंर्धन राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का उद्देश्य है। सत्य/असत्य

8. उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का अध्यक्ष होता है। सत्य/असत्य

9. आयोग के अध्यक्ष का कार्यकाल 05 वर्ष तक या 65 वर्ष तक की आयु प्राप्त करने तक होता है। सत्य/असत्य

11.8 सारांश

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एक स्वायत्त, निष्पक्ष एंव न्यायप्रिय संस्था है। बुनियादी प्रश्न यह है कि आयोग द्वारा दिये गये सुझावों और सिफारिशों पर भारत सरकार या कोई राज्य सरकार कितनी अमल करती है? दुनिया के प्रत्येक मानव अधिकार से संबंधित संस्था की अलग-अलग स्थिति है। भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एक विधि आधारित संस्था है।

11.9 शब्दावली

अन्वेशण- जाँच, संवर्धन- प्रोत्साहन, त्वरित- जल्दी या शीघ्र, समीचीन- उचित या ठीक होना

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1930 में, **2.** कांग्रेस, **3.** 19 मई 1992, **4.** सत्य, **5.** रूसो, **6.** सत्य, **7.** सत्य, **8.** सत्य, **9.** असत्य

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरुण राय, भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग- गठन, कार्य और भावी परिदृष्य।
2. भारत में मानव अधिकार आयोग की भूमिका, न्यायमूर्ति डॉ ए0 एस0 आनंद।
3. डा0 गुरुबक्श सिंह, मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993,
4. डा0 बन्सीलाल बावेल, मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993,
5. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993, संशोधित रुप में (राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा प्रकाशित)

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।
2. भारत में लोक प्रशासन- डॉ0 बी0एल0 फड़िया ।

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन की चर्चा कीजिए।
2. मानवाधिकार क्या हैं ? अपने शब्दों में विस्तार से बतलाईये।

इकाई- 12 राष्ट्रीय महिला आयोग

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 राष्ट्रीय महिला आयोग

12.2.1 आयोग के उद्देश्य

12.2.2 आयोग का गठन

12.3 आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ

12.4 आयोग से संबंधित विभाग

12.4.1 शिकायत विभाग

12.4.2 विधि विभाग

12.4.3 अनुसंधान विभाग

12.4.4 निगरानी विभाग

12.4.5 जन-सम्पर्क, पुस्तकालय और प्रशासन विभाग

12.5 आयोग का अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रतिनिधित्व

12.6 संविधान और संविधान प्रदत विधियों में महिला अधिकार

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

महिलाऐं किसी भी समाज का एक अटूट अंग हैं। किसी भी तरह के कार्यों के सम्पादन में महिलाओं की भूमिका की अनदेखी करके उस कार्य के पूर्ण होने की कल्पना नहीं की जा सकती। महिलाओं की शक्ति और उनके ज्ञान, समाज और राष्ट्र निमार्ण में उनकी भागीदारी को स्वीकार करने के उपरान्त भी आज महिलाऐं अपनी सुरक्षा और सम्मान के लिए संर्घष कर रही है। प्रत्येक सभ्य समाज का यह दायित्व है कि महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान को सुनिश्चित करें। मानव ने अपने विकास क्रम में समाज में महिलाओं की भूमिका में अनेक बदलाव किये और करता आया। पुरूष प्रधान समाज हर मोड़ पर उसके लिए एक नई चुनौती खड़ा करता गया। किन्तु राजनीतिक सोच और इच्छा शक्ति ने महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान के लिए अनेक नियम-कानूनों का निर्माण किया, परन्तु स्थिति में कोई संतोषजनक सुधार नहीं हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक प्रयास किये गये। विश्व के देश ने भी अपने संविधानों में महिलाओं की सुरक्षा, सम्मान और बराबरी का स्थान दिलाने के लिए प्रावधान किये हैं। इसी कड़ी में भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण तथा सुरक्षा के लिए वर्ष 1992 में एक शीर्ष संवैधानिक निकाय के रूप में किया गया। भारतीय संसद द्वारा 1990 में पारित अधिनियम के तहत, जनवरी 1992 में, एक संवैधानिक निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन किया गया। राष्ट्रीय महिला आयोग एक ऐसी इकाई है, जो शिकायत या स्वतः संज्ञान के आधार पर महिलाओं के संवैधानिक हितों और उनके लिए कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू कराती है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राष्ट्रीय महिला आयोग के उद्देश्य और गठन के विषय में जान पायेंगे।
- आयोग की कार्य एवं शक्तियों से अवगत हो पायेंगे।
- आयोग से संबंधित विभागों के विषय में अवगत हो पायेंगे।
- संविधान द्वारा प्रदत महिला अधिकारों के संबंध में जान पायेंगे।

12.2 राष्ट्रीय महिला आयोग

आयोग की स्थापना जनवरी 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 संख्या 20 के तहत एक संवैधानिक निकाय के रूप में की गई। राष्ट्रीय महिला आयोग के अन्तर्गत राज्य महिला आयोग भी स्थापित किए गए हैं, जो अब अधिकांश राज्यों में काम कर रहे हैं।

12.2.1 आयोग के उद्देश्य

महिलाओं के लिए संवैधानिक तथा कानूनी उपायों का पुनरीक्षण करने, उपचार के रूप में विधायी उपायों की संस्तुति करने, शिकायतों के निवारण को सुविधाजनक बनाने तथा महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत मामलों में सरकार को सलाह देना, आयोग के मुख्य उद्देश्य हैं।

12.2.2 आयोग का गठन

केन्द्र सरकार एक निकाय का गठन करेगी जो राष्ट्रीय महिला आयोग के नाम से जाना जायेगा, जो इस अधिनियम के अधीन दी गयी शक्तियों का प्रयोग करेगी और दिये गये कार्यों का सम्पादन करेगी। आयोग निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा गठित होगा-

1. केन्द्र सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट एक अध्यक्ष, जो महिलाओं के प्रति समर्पित हो।
2. योग्य और निष्ठावान व्यक्तियों में से केन्द्र सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट पांच सदस्य जो विधि अथवा विधापन, व्यवसाय संघ, उद्योग अथवा संस्था जो नियोजन में महिलाओं की वृद्धि हेतु समर्पित हों के प्रबन्धन, महिलाओं के स्वैच्छिक संगठनों (महिला कार्यकर्ताओं को शामिल करते हुए) के प्रशासन, आर्थिक विकास, शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में अनुभव रखते हो।
3. परन्तु उपर्युक्त में से कम से कम एक-एक सदस्य, क्रमश: अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति में से होगा।
4. केन्द्र सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट एक सदस्य सचिव, जो प्रबन्ध, सामाजिक आन्दोलन के संगठनात्मक क्षेत्र का विशेषज्ञ हो अथवा एक अधिकारी हो, जो संघ की सिविल सेवा अथवा अखिल भारतीय सेवा का सदस्य हो अथवा संघ के अधीन सिविल पद को समुचित अनुभव के साथ धारण करता हो।

12.2.3 आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ

आयोग निम्नलिखित कार्यों में सभी को अथवा किसी को भी सम्पन्न कर सकेगा-

1. संविधान और अन्य विधियों के अधीन महिलाओं के लिए रक्षोपायों से सम्बन्धित सभी मामलों का अन्वेषण और परीक्षण करना।
2. केन्द्र सरकार को उन रक्षोपायों के क्रियान्वयन के बारे में वार्षिक रूप से और ऐसे अन्य समय पर जब आयोग उचित समझे, रिपोर्ट प्रस्तुत करना।
3. ऐसी रिपोर्टों में संघ अथवा किसी राज्य द्वारा महिलाओं की दशा सुधारने के लिए उन रक्षापायों को प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सुझाव देना।
4. संविधान और महिलाओं को प्रभावित करने वाली अन्य विधियों के वर्तमान उपबन्धों का समय-समय पर पुनरीक्षण और उसमें ऐसे संशोधनों के लिए सुझाव देना जिसमें ऐसे विधानों के लोप, अपर्याप्तता अथवा दोषों को दूर करने के लिए उपचारात्मक विधान के बारे में सुझाव हो।
5. संविधान अथवा महिलाओं से सम्बन्धित किसी अन्य विधियों के उपबन्धों के उल्लघंन के मामलों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करना।
6. परिवादों को देखना और निम्नलिखित मामलों के सम्बन्ध में स्वप्रेरणा से ध्यान देना तथा ऐसे मामलों से उत्पन्न विवादों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना।
7. महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने और समानता एवं विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निर्मित विधियों का लागू न किया जाना, महिलाओं की कठिनाईयों को दूर करने और कल्याण को सुनिश्चित करने एवं अनुतोष(संतुष्टि) प्रदान करने के सम्बन्ध में लिए गये नीतिगत निर्णयों, दिशा-निर्देशों अथवा अनुदेशों का अनुपालन।
8. महिलाओं के विरूद्ध विभेद और अत्याचार से उत्पन्न विशेष समस्याओं अथवा परिस्थितियों के बारे में विशेष अध्ययन अथवा अन्वेषण करना तथा कारणों की पहचान करना जिससे उनके निवारण हेतु उपाय सुझाया जा सके।
9. शैक्षिक और विकास परक शोध करना जिससे कि सभी क्षेत्रों में महिलाओं के सम्यक(समान) प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने हेतु उपाय सुझाया जा सके और उनके विकास में अवरोध पैदा करने के लिए उत्तर दायी तत्वों यथा- निवास और मूलभूत सुविधाओं का आभाव, कठोर श्रम और व्यावसायिक स्वास्थ्य दशाओं को कम करने के लिए एवं उनकी उत्पादकता में वृद्धि करने हेतु सेवाओं एवं तकनीकी की अपर्याप्तता, की पहचान करना।

10. महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक विकास हेतु योजनाओं में सहभागिता तथा सुझाव।

11. केन्द्र और किसी राज्य के अधीन महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना।

12. जेल, रिमाण्ड, गृह, महिला संस्थान अथवा अभिरक्षा के अन्य स्थान, जहाँ महिलाओं को कैदियों के रूप में अथवा अन्य रूप में रखा जाता है, का निरीक्षण करना और यदि आवश्यक हो तो संतोषजनक कार्यवाही हेतु सम्बन्धित प्राधिकारियों के समक्ष आवेदन करना।

13. महिलाओं के विस्तृत समुदाय को प्रभावित करने वाले विवादों को निर्दिष्ट(उल्लेखित) करने वाले मामलों के लिए धन उपलब्ध कराना।

14. महिलाओं से सम्बन्धित किसी मामले तथा विशेष रूप से उन कठिनाईयों के बारे में जिनमें महिलायें कार्य करती हैं, पर सरकार को सामाजिक रिपोर्ट देना।

12.3 आयोग से संबंधित विभाग

समस्याओं के निवारण और महिलाओं के संवैधानिक रक्षा उपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए आयोग सरकार को सिफारिश करने, महिलाओं को प्रभावित करने वाले कानूनों के पूर्व प्रावधानों की समीक्षा कर, कमियों और त्रुटियों को दूर करने के लिए सरकार को सिफारिश करने, शिकायतों की जाँच के अलावा स्वप्रेरणा से भी महिला अधिकार वंचन पर ध्यान दे। कानूनी सुरक्षा के उपायों का उल्लंघन करने संबंधी मामलों को संबंधित अधिकारियों के समक्ष उठाने, महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेने और प्रगति का मूल्यांकन करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य आयोग के जिस्मे हैं। इसके अलावा महिला सुधार-गृहों, कारागारों तथा अन्य स्थानों जहाँ स्त्रियों को बंदी रूप में रखा जाता है, का निरीक्षण करना तथा उनके पुनर्वास के उपायों की सिफारिश करना भी महिला आयोग का एक प्रमुख कार्य है। आयोग अपने कार्यों का सम्पादन निम्न विभागों के माध्यम से करता है-

12.3.1 शिकायत विभाग

शिकायत विभाग आयोग के सबसे महत्त्वपूर्ण विभागों में से एक है, जिसके माध्यम से देश की महिलाएँ आयोग से जुड़ी हुई हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत यह विभाग विभिन्न प्रकार की लिखित और मौखिक शिकायतों पर कार्यवाही करता है। शिकायतों को दूर करने के लिए विभाग पारिवारिक विवादों को दोनों पक्षों के बीच सलाह व समझौते द्वारा सुलझाने, यौन उत्पीड़न मामलों में सम्बन्धित संगठनों व

संस्थानों को शीघ्र कार्यवाही के लिए प्रेरित करने, उन्हें आगाह करने तथा उनके निकारण पर निगरानी रखने आदि उपायों द्वारा निबटाया जाता हैं। गंभीर मामलों में आयोग स्वयं अपनी जाँच समिति गठित करता है, जो स्वयं घटना स्थल पर जाती है। कुछ मामलों में यह जाँच दल स्वप्रेरणा से भी काम करता है और उचित कार्यवाही के लिए संबंधित अधिकारियों से संपर्क करता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों में कमी लाने के लिए मौजुद सरकारी तौर-तरीकों की कमियों को समझकर समय-समय पर सुधारात्मक उपाय सुझाने के लिए शिकायतों का विश्लेषण किया जाता है। शिकायतों का पुलिस, न्यायपालिका अभियोजकों, वकीलों, वैज्ञानिकों व अन्य प्रशासनिक कार्यकर्ताओं के लिए अध्ययनों के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इन कार्यों में राज्य महिला आयोगों, गैर-सरकारी संगठनों और विशेषज्ञों की भागीदारी भी सुनिश्चित की जाती है।

12.3.2 विधि विभाग

महिलाओं को प्रभावित करने वाले विभिन्न कानूनों और नीतियों की समीक्षा करने संबंधी आयोग का प्रमुख कार्य विधि विभाग में निष्पादित होता है। सभी न्यायिक मामलों, कानूनी संशोधनों, नए विधेयकों की सिफारिशों, पारिवारिक महिला लोक अदालतों, सशक्तीकरण कार्यक्रमों, कार्यशालाओं और सेमिनारों का आयोजन भी करता है, जिसमें विशेषज्ञों का सहयोग लिया जाता है। विधि विभाग हिरासत में रह रही महिलाओं और मानसिक चिकित्सालयों में रहने वाली महिलाओं की स्थितियों का अध्ययन कर सरकारों को उचित सलाह देता है।

12.3.3 अनुसंधान विभाग

अनुसंधान विभाग का कार्य देश में महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक मामलों का अध्ययन करना, लिंग-भेद से उत्पन्न विशेष स्थितियों व समस्याओं का विश्लेषण कर तदानुसार जाँच का प्रस्ताव करना, महिलाओं संबंधी विकास कार्यों की प्रगति का मूल्यांकन करना तथा सभी क्षेत्रों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित कराना, इस विभाग का कार्य है। साथ ही राज्य महिला आयोगों व सरकारों के सहयोग से सेमिनार व कार्यशालाएँ आयोजित कर, उपचारात्मक सुझाव प्रस्तुत करना आदि कार्य भी यह विभाग करता है। इसके लिए आयोग ने दो विशेषज्ञ समितियाँ गठित की हैं , पहला- कानूनी विशेषज्ञों की समिति और दुसरा- महिला सशक्तीकरण समिति।

12.3.4 निगरानी विभाग

आयोग द्वारा की गई प्रत्येक जाँच की सिफारिशों पर, की जाने वाली कार्यवाही पर निगरानी रखना, इस विभाग का विशेष काम है।

12.3.5 जन-संपर्क, पुस्तकालय व प्रकाशन विभाग

आयोग का जन-सम्पर्क विभाग, पुस्तकालय व प्रकाशन विभाग भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा हैं। जन-संपर्क विभाग सूचनाओं के आदान-प्रदान के साथ ही विभिन्न संगठनों, सरकारी विभागों व राज्य महिला आयोगों के कार्यों में तालमेल बैठाकर, नेटवर्किंग का काम भी करता है, जिसके लिए राज्य के दौरे भी आयोजित किए जाते हैं। प्रकाशन विभाग द्वारा विभिन्न रिपोर्टों और जरूरी सूचनाओं वाली पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। रिपोर्टों से अध्येता और अनुसंधानकर्ता लाभ उठाते हैं, तो छोटी-छोटी सूचनाप्रद पुस्तिकाएँ आम महिलाओं के लिए, मामलों से संबंधित जरूरी जानकारियाँ जुटाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

इस प्रकार, महिला आयोग के सारे क्रियाकलाप आज की भारतीय नारी को जागरूक, स्वस्थ, शिक्षित, आत्मनिर्भर तथा सांस्कृतिक रूप से भी सशक्त बनाने के लिए संकल्पित हैं। विशेष रूप से इस दिशा में स्त्री घर में व घर के बाहर सुरक्षित हो, उसे एक नागरिक के सभी अधिकार सहज प्राप्त हों और वह जीवन के सभी क्षेत्रों में अपना योगदान देने में सक्षम हो।

12.4 आयोग का अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रतिनिधित्व

संयुक्त राष्ट्र संघ की 'महिला अधिकार आयोग' के परिषद में राष्ट्रीय महिला आयोग की सदस्याऐं हैं और उनकी स्थिति सलाहकार के रूप में है। विश्व के सभी प्रमुख महिला-मंडलों से भी परिषद संपर्कित है। भारत में होने वाले परिषद के सभी वार्षिक सम्मेलनों में विभिन्न देशों की प्रतिनिधि भाग लेती है। विश्व में होने वाली महिला कॉनफ्रेंसों, महिला संगठनों के महत्त्वपूर्ण अधिवेशनों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित विशेष मीटिंगों, गोष्ठियों व सेमिनारों में परिषद, भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

12.5 संविधान और संविधान प्रदत्त विधियों में महिला अधिकार

"सभ्य समाज की कसी भी परिकल्पना में मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय एवं समता के आदर्श पंथिक आस्थाओं, परम्पराजन्य विश्वासों तथा अहमवादी उद्-घोषों से निश्चय ही वरीय(Preferable) है। महिला अधिकारों का प्रश्न उक्त आदर्शों का पारदर्शी मापदण्ड है।" भारत का संविधान न केवल महिलाओं को समानता का मूल अधिकार प्रदान करता है वरन् उनके लिए सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अलाभकारी स्थितियों को उन्मूलन करने का उपाय करने के लिए राज्यों को निर्देशित भी करता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और

उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता।" आदि मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। प्रस्तावना की सबसे महत्वपूर्ण बात देश के समस्त नागरिकों के लिए न्याय एवं समानता सुनिश्चित किए जाने का आश्वासन है, क्योंकि एक सच्चे लोकतंत्र के लिए समानता ही नहीं वरन् न्याय की सुनिश्चिता भी आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुए न केवल धर्म, लिंग, जाति इत्यादि के आधार पर राज्य द्वारा भेदभाव का निषेध करते हुए प्रतिष्ठा और अवसर की समता का उपबन्ध किया गया, बल्कि इसके साथ-साथ पिछड़ों और कमजोर वर्ग के लोगों का उत्थान करने के लिए विशेष प्रावधान करने का उपबन्ध भी किया गया। सामाजिक न्याय में- धन और अवसर, नस्ल, धर्म, लिंग, जाति या अन्य किसी भी असमानता सहित सभी प्रकार की असमानताओं का उन्मूलन अपेक्षित है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए कार्य की मानवीय स्थितियों, मातृत्व सुविधा, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता, श्रम एवं उद्योगों में बालश्रम का निवारण, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, पिछड़ी जातियों का शैक्षिक और आर्थिक उत्थान, बन्धुआ मजदूरी पर प्रतिबन्ध सहित सामाजिक न्याय से सम्बन्धित कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रवृत्त करने का निर्देश संविधान में अन्तर्निहित है। आर्थिक न्याय के विचार में समान कार्य के लिए समान वेतन का भाव निहित है। राजनीतिक न्याय से भेदभाव रहित राजनीतिक कार्यक्षेत्र अभिप्रेत है। वयस्क मताधिकार, साम्प्रदायिक आरक्षण के उन्मूलन और नस्ल, जाति, लिंग, निवास, जन्म स्थान, धर्म के भेदभाव के बिना राज्यों के अधीन नियोजन प्राप्त करने के अधिकार को अंगीकार कर इसे संविधान में सुनिश्चित किया गया है। ज्ञातव्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भी कतिपय विधान महिलाओं की प्रस्थिति के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण थे, यथा- बंगाल सती अधिनियम,1829; हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम,1959 (1859 का 15); भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45); धर्म परिवर्तित विवाह समापन अधिनियम,1869; तलाक अधिनियम,1869; विवाहित महिला का सम्पत्ति अधिनियम,1874; मुख्तारनामा का अधिकार अधिनियम, 1882; नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908; कानूनी वकालत संशोधन अधिनियम,1923; भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925; बाल विवाह प्रतिबन्ध अधिनियम, 1929; बोम्बे हिन्दू द्वि-विवाह अपराध निवारण अधिनियम,1946। प्रस्तावना के साथ-साथ संविधान के भाग तीन, जो मूल अधिकारों से सम्बन्धित है, के अनुच्छेद 14, 15, 16 और राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों में भी महिलाओं को विशेष स्थिति प्रदान की गई है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किस वर्ष किया गया?

2. क्या राष्ट्रीय महिला आयोग एक संवैधानिक निकाय है?
3. महिलाओं को कानूनी और संवैधानिक संरक्षण देना क्या राष्ट्रीय महिला आयोग का उद्देश्य है?
4. राष्ट्रीय महिला आयोग के अन्तर्गत विधि विभाग कार्य करता है?
5. राष्ट्रीय महिला आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट के माध्यम से अपने कार्यों की जानकारी देता है। सत्य/असत्य

12.6 सारांश

राष्ट्रीय महिला आयोग एक वैधानिक निकाय है। जम्मू-काश्मीर राज्य को छोड़कर यह आयोग सम्पूर्ण भारत में कार्य करता है। महिला आयोग का उद्देश्य महिलाओं के संरक्षण के लिए वैधानिक तथा कानूनी उपाय करने, महिला शिकायतों के समाधान को सुलभ बनाने, तथा महिलाओं को प्रभावित करने वाले नीतिगत मामलों पर सरकार को सलाह देना है। आयोग आपने कार्यों को विभिन्न विभागों के माध्यम से करता है।

12.7 शब्दावली

संवैधानिक निकाय- संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्था, अपर्याप्तता- पर्याप्त न होना, स्वैच्छिक संगठन- स्वयं से कार्य करने वाला संगठन(समूह), अन्वेशण- जाँच, अनुसंधान- खोज या शोध, वरीय- अधिमान्य, पंथिक आस्थाऐं- धार्मिक मान्यताऐं

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1992 में, **2.** हाँ, **3.** हाँ, **4.** हॉं, **5.** सत्य

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत और मानवाधिकार- सम्पादक, एस. गोपालन।
2. महिला और मानवाधिकार , रमा मिश्रा और एम0 के0 मिश्रा , 2012, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत और मानवाधिकार- सम्पादक, एस0 गोपालन।

2. महिला और मानवाधिकार , रमा मिश्रा और एम0के0 मिश्रा , 2012 , अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय महिला आयोग के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए इसके कार्यों की व्याख्या कीजिए।
2. राष्ट्रीय महिला आयोग से संबंधित विभागों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

ईकाई- 13 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग

ईकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग

13.2.1 आयोग का गठन

13.2.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व

13.2.3 आयोग के परामर्शी अधिकार

13.2.4 विशिष्ट शिकायतों की जाँच एवं पद्धति

13.2.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका

13.2.6 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट

13.3 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

13.3.1 आयोग का गठन

13.3.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व

13.3.3 आयोग के कानून तथा विधान

13.3.4 विशिष्ट शिकायतों की जाँच एवं पद्धति

13.3.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका

13.3.6 आयोग के परामर्शी अधिकार

13.3.7 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट

13.4 सारांश

13.5 शब्दावली

13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.8 सहायक उपयोगी/पाठ्य सामग्री

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

भारतीय संविधान के भाग- 16 'कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबन्ध' के अन्तर्गत (अनुच्छेद 338 तथा 341 व 342 में) अनसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक उत्थान के लिए खास प्रावधान किये गये हैं। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए संविधान में दिए गये सुरक्षणों की व्यवस्था करने तथा अन्य विभिन्न प्रकार के सुरक्षात्मक कानूनों के कार्यान्वयन के लिए संविधान में अनुच्छेद- 338 के अन्तर्गत एक विशेष आयोग व अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। संविधान में उल्लिखित इस अधिकारी को 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त' के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसे अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से सम्बन्धित कानूनों एवं सुरक्षात्मक उपायों का अन्वेषण करने तथा इसके कार्यान्वयन आदि से सम्बन्धित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा गया। इसके साथ ही आयुक्त को सौपें गये सभी कार्यों को भलीभांति सम्पन्न करने हेतु देश के भिन्न-भिन्न भागों में आयुक्त के 17 क्षेत्रीय कार्यालयों की भी व्यवस्था की गयी।

किन्तु, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से सम्बन्धित संवैधानिक, सुरक्षात्मक उपायों एवं अन्य प्रावधानों के कार्यान्वयन एवं उचित देख-रेख करने में यह पूरी तरह सक्षम नहीं सिद्ध हो रहा था। अतः इस एक सदस्यीय व्यवस्था को सर्वप्रथम बहु-सदस्यीय करने की मांग की गयी। आम लोगों, जनप्रतिनिधियों एवं सामाजिक संगठनों की तेजी से बढ़ती हुई मांग को देखते हुए सरकार(गृह मंत्रालय) ने 1978 में पारित एक संकल्प द्वारा एक प्रशासनिक निर्णय लेते हुए एक बहुसदस्यीय आयोग के गठन का निर्णय लिया। फलतः अगस्त, 1978 में श्री भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में चार सदस्यों सहित, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए एक बहुसदस्यीय आयोग का गठन किया गया। पूर्व में गठित आयुक्त के क्षेत्रीय कार्यालयों को इसके नियन्त्रण में लाया गया। यद्यपि इस आयोग के कार्य भी पूर्व में, नियुक्त किये गये आयुक्त के समान ही थे। हालांकि बाद में 1987 में कल्याण मन्त्रालय के द्वारा पारित एक संकल्प द्वारा आयोग के कार्यों में संशोधन किया गया और इसे राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के रुप में पुनर्नामित किया गया। इस आयोग का गठन मूलतः एक सलाहकारी निकाय के रुप में किया गया, जिसका कार्य सरकार को नीतिगत मुद्दों एवं अन्य विकास से सम्बन्धित उपायों आदि पर सलाह देना था। बाद में इसे एक आयोग के रुप में संविधान (65वां संशोधन)

विधेयक,1990 पारित होने के फलस्वरुप स्थापित किया गया। इस प्रकार कल्याण मन्त्रालय के संकल्प द्वारा 1987 में गठित आयोग के स्थान पर संविधान के अनुच्छेद- 338 के अनुरूप पहले आयोग का गठन मार्च, 1992 को किया गया।

संविधान में किये गये 89वें संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग को पृथक-पृथक क्रमशः पहला, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, दूसरा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के रुप में प्रतिस्थापित किया गया। इस पृथक राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के नियम सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मन्त्रालय द्वारा दिनांक 20 फरवरी, 2004 की पूर्णतया अधिसूचित किया गया। इस प्रकार 2004 से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए अलग-अलग आयोग अस्तित्व में आया।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग की आवश्यकता एवं महत्ता को समझ सकेंगे।
- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग के कार्य एवं दायित्वों से भलीभांति अवगत हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग द्वारा विशिष्ट शिकायतों की जाँच तथा अपनायी गयी पद्धति को समझ सकेंगे।

13.2 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एक ऐसा संवैधानिक निकाय है, जिसके माध्यम से देश में अनुसूचित जाति समाज के विकास और उन्हें समाज में सम्मान-पूर्वक स्थान दिलाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। आईये विस्तार से इसका अध्ययन करते हैं।

13.2.1 आयोग का गठन

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन संविधान के अनुच्छेद- 338 के अधीन पृथक रुप से (89वें संविधान संशोधन) अधिनियम-2003 के द्वारा किया गया। इस आयोग को बकायदा 20 फरवरी, 2004 को अधिसूचित किया गया। इस प्रथम आयोग का गठन करते हुए इसका अध्यक्ष श्री सूरज भान, उपाध्यक्ष श्री फकीर भाई बघेला को तथा श्री फूलचन्द वर्मा, श्री देवेन्द्र जी और श्रीमती सुरेखा लाम्बुतरे को सदस्य नामित किया गया। इसके पश्चात मई, 2007 को दूसरे अनुसूचित जाति आयोग का गठन किया गया। इसका अध्यक्ष डॉ0 बूटा सिंह,

उपाध्यक्ष प्रो0 नरेन्द्र एम0 काम्बले तथा श्रीमती सत्याबहन, श्री महेन्द्र बौद्ध को सदस्यों के रुप में नामित किया गया। राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्यों को नियुक्त करता है। इनकी सेवा की शर्ते एवं पदावधि भी राष्ट्रपति द्वारा अवधारित की जाती है। किन्तु आयोग के पास अनुसूचित जाति से सम्बन्धित प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होती है।

13.2.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व

संविधान में अनुसूचित जाति आयोग के कार्यो एवं दायित्वों का स्पष्ट रुप से निर्धारण किया गया है, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत भलीभांति समझा जा सकता है-

1. अनुसूचित जातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से सम्बन्धित विषयों का अन्वेषण करना और उन पर निगरानी रखना तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूलयांकन का कार्य करना।
2. अनुसूचित जातियों को उनके अधिकारों और सुरक्षणों(संरक्षण) से वंचित करने की बावत निर्दिष्ट शिकायतों की जाँच का कार्य करना।
3. अनुसूचित जातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया विषय में भाग लेना और सलाह देना तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास में प्रगति का मूल्यांकन करना।
4. उन रक्षोपायों के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का कार्य करना।
5. ऐसे प्रतिवेदनों में उन रक्षापायों के बारे में जो उन रक्षापायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किये जाने चाहिए तथा अनुसूचित जातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश का कार्य करना।
6. अनुसूचित जातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास तथा उन्नयन के सम्बन्ध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे, जो राष्ट्रपति संसद द्वारा बनायी गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट हो।

आयोग संविधान द्वारा निर्धारित उपर्युक्त महत्वपूर्ण कार्यों के सन्दर्भ में ही दायित्वों का विभाजन एवं कार्यों का आबंटन करता है, जिसमें अध्यक्ष आयोग का प्रधान होता है और आयोग में उत्पन्न सभी विषयों पर निर्णय लेने की अवशिष्ट शक्ति उसी में निहित होती है। अध्यक्ष ही अन्य सदस्यों को कार्यों का आबंटन करता है। कार्यों के

आबंटन से सम्बन्धित आदेश को आयोग के सचिवालय द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुँचाया जाता है। आयोग के बैठकों की अध्यक्षता, अध्यक्ष करता है। इसके अनुमोदन के पश्चात ही कोई निर्णय लिया जाता है। अध्यक्ष किसी भी विषय पर जिसे वह आवश्यक समझता हो स्वंय ही निर्णय ले सकता है। उपाध्यक्ष उन सभी कार्यों को करता है जो अध्यक्ष द्वारा उसको सौंपा जाता है। इसी प्रकार आयोग के सदस्यों का सामूहिक दायित्व होता है। सदस्यों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अनुसूचित जातियों के कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं आदि के सम्बन्ध में सम्बन्धित राज्य सरकारों को परामर्श देना है। इसी प्रकार आयोग का सचिव जो आयोग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है वह अपने विभिन्न अधिकारियों की सहायता से आयोग के कार्यों के सुचारु संचालन में अध्यक्ष एवं सदस्यों को सहयोग प्रदान करता है। इस प्रकार से अनुसूचित जाति आयोग अपने कार्यों एवं दायित्वों का भलीभांति निर्वहन करता है।

13.2.3 आयोग के परामर्शी अधिकार

आयोग के परामर्शी अधिकार एवं भूमिका का अवलोकन हम मुख्यतः दो स्तरों पर कर सकते हैं- राज्य सरकारों के साथ और योजना आयोग के साथ।

आयोग, राज्य सरकारों के साथ अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन अपने सदस्यों, सचिवालय एवं राज्य कार्यालयों के माध्यम से करता है। किसी राज्य या संघ-राज्य क्षेत्र का प्रभारी सदस्य बैठकों या व्यक्तिगत मुलाकातों, पत्रों आदि के द्वारा राज्य सरकार से पारस्परिक सम्बन्ध रखता है। इस सम्बन्ध में सूचना सम्बन्धित विभाग को पहले भेजी जानी चाहिए। राज्य कार्यालयों को भी सूचना भेजी जानी चाहिए। आयोग इसके लिए विस्तृत मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाता है। इसमें आयोग का सचिवालय सम्बन्धित सदस्यों को सूचना आदि प्रदान कर सहयोग करता है। आयोग के सदस्य द्वारा निभायी जा रही इस परामर्शी भूमिका का ठीक तरह से निर्वहन करने हेतु सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा परिवहन, आवास एवं सुरक्षा आदि की सुविधाऐं उन्हें उपलब्ध करायी जाती हैं।

अनुसूचित जाति आयोग 'योजना आयोग' के साथ अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, उसके द्वारा गठित विभिन्न समितियों, कार्यकारी दलों में अपने प्रतिनिधित्व के माध्यम से करता है। समय-समय पर आयोग, योजना आयोग को इस प्रकार के कार्यदल बनाने का परामर्श भी देता रहता है। इसके साथ ही योजना आयोग द्वारा अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित योजनाओं तथा विकास प्रक्रिया सम्बन्धी दस्तावेजों के मूल्यांकन सम्बन्धी कार्यवाही को आगे बढ़ाने का भी परामर्श देता है। आयोग, पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु भी योजना आयोग को विभिन्न प्रकार के परामर्श समय-समय पर उपलब्ध कराता रहता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में

स्थित अपने राज्य कार्यालयों के माध्यम से राज्य सरकारों से भी आयोग एक मजबूत कड़ी स्थापित करता है, जिससे अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित विकास योजनाऐं उसके कुशल मार्गदर्शन में चलती रहती हैं।

13.2.4 विशिष्ट शिकायतों की जाँच एवं पद्धति

अनुसूचित जाति आयोग अपने अधिकार के अन्तर्गत आने वाले विषयों की जाँच करने के लिए अनेक विधियां अपनाता है। जैसे आयोग सीधे ही जाँच कर सकता है, या मुख्यालय में गठित जाँच दल द्वारा, या राज्य कार्यालयों के माध्यम से या फिर राज्य एजेंसियों के माध्यम से अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त या कोई अन्य संस्था और इसके विधिक निकाय द्वारा अपना जाँच कार्य सम्पन्न कराती है। आयोग अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित विशिष्ट शिकायतों की जो उसके सुरक्षा, कल्याण और विकास से सम्बन्धित हैं, उसकी जाँच आयोग सीधे ही कर सकता है। इसके लिए कोई भी कार्यवाही शुरु करते समय सम्बन्धित पार्टियों एवं अनुसूचित जाति के सदस्यों को सूचना का प्रेषण सुनिश्चित किया जाता है। आयोग राज्य के सभी सचिवों, पुलिस महानिदेशकों की वर्ष में एक बार बैठक आयोजित कर अनुसूचित जाति के सुरक्षा सम्बन्धी मुद्दों पर विचार कर कार्यान्वयन की पहल करता है। आयोग के पास विशिष्ट शिकायतों की जाँच करते समय दीवानी अदालत की वे सभी शक्तियाँ होंगी, जो समाधान हेतु जरुरी हैं।

जाँच करते समय आयोग यदि किसी व्यक्ति की उपस्थिति आवश्यक समझता है तो वह अध्यक्ष के अनुमोदन से उसे 'समन' भेज सकता है। आयोग जाँच के अन्तर्गत किसी मामले में साक्ष्य होने के लिए संविधान के अनुच्छेद- 338 के खण्ड 8(ङ) के अन्तर्गत पत्र जारी कर सकता है और इस उद्देश्य के लिए लिखित आदेश द्वारा किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। जाँच करने वाला सदस्य एक रिपोर्ट तैयार करेगा और वह रिपोर्ट नियम- 34 के अन्तर्गत नियुक्त जाँच अधिकारियों को भेजी जायेगी। अन्ततः यह रिपोर्ट तीन दिनों के भीतर अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत की जायेगी। इसके पश्चात अध्यक्ष के अनुमोदन से ही उस पर कार्यवाही प्रारम्भ की जायेगी। अध्यक्ष यह भी निर्णय ले सकता है कि प्रस्तुत रिपोर्ट का अन्वेषण व जाँच आयोग के मुख्यालय में गठित एक अन्वेषण दल द्वारा किया गया। परन्तु यदि मामला गम्भीर और तुरन्त कार्यवाही का है तो उस पर तुरन्त निर्णय आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिया जायेगा।

विशिष्ट शिकायतों की एक स्पष्ट एवं सुव्यवस्थित जाँच पद्धति होती है। अतः आयोग उसकी परिधि में ही अपनी कार्यवाही करता है, इसीलिए उन मामलों पर कोई कार्यवाही नहीं करता है जो न्यायाधीन हैं। उन मामलों को भी आयोग नये सिरे से नहीं उठाता है जो न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय की स्थिति प्राप्त कर चुके हैं। आयोग

स्थानान्तरण, तैनाती, आरक्षण तथा विभिन्न आदेशों आदि से सम्बन्धित प्रकरण को तब तक जाँच हेतु स्वीकार नहीं करता है जब तक कि अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति के उत्पीड़न का आधार न हो। अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति के विरुद्ध किये गये अत्याचार के मामलों में आयोग तत्काल कार्यवाही करते हुए जिला प्रशासन द्वारा की गयी कार्यवाही का ब्योरा मांगता है तथा आरोपी के खिलाफ कार्यवाही ना होने की स्थिति में प्राथमिकी दर्ज करने की सिफारिश करता है। यह भी छानबीन करता है कि अत्याचार की सूचना प्राप्त होने पर जिले के कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक द्वारा तुरन्त दौरा किया गया है या नहीं? आयोग स्वयं स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए घटना स्थल का दौरा भी करता है। इस प्रकार सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हुए आयोग पीड़ित को न्याय दिलाता है।

13.2.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 338 क (5) के उपखण्ड (क) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण या उपखण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी शिकायत की जाँच करते समय आयोग को दीवानी अदालत की वे शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो उसे किसी मुकदमें को चलाने के लिए प्राप्त होती है। आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका का अवलोकन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं-

1. भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को 'समन' करना, आयोग के समक्ष उपस्थिति के लिए बाध्य करना, तथा शपथ पर उसका परीक्षण करना।
2. किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण के लिए आदेश देना।
3. शपथ-पत्र पर साक्ष्य ग्रहण करना।
4. किसी न्यायालय या कार्यालय से लोक अभिलेख या उसकी प्रति को मांगना।
5. गवाहों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना।
6. कोई अन्य विषय जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा विनिर्धारित(उल्लेखित) करे।

इस प्रकार अनुसूचित जाति आयोग उपर्युक्त आधारों पर कार्य करते हुए अनुसूचित जातियों को न्याय दिलाने हेतु एक दीवानी अदालत की भूमिका का निर्वहन करता है।

13.2.6 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट

अनुसूचित जातियों के संरक्षण एवं उसके उपायों तथा अन्य विकासात्मक गतिविधियों के बारे में जैसा कि संविधान के अनुच्छेद- 338 के खण्ड 5(घ) में व्यवस्था है, कि अनुसूचित जाति आयोग प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य

समयों पर जो आयोग ठीक समझे राष्ट्रपति को प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट प्रस्तुत करें। आयोग अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित उन संरक्षणात्मक उपायों के राज्यों द्वारा कार्यान्वयन से सम्बन्धित सिफारिश भी अपने रिपोर्ट में राष्ट्रपति से करें।

अनुसूचित जाति आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह संवैधानिक सुरक्षणों के कार्यकरण तथा अनुसूचित जातियों के संरक्षण और कल्याण के लिए संघ और राज्यों द्वारा किये गये उपायों पर प्रति वर्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस श्रृखला में देखा जाय तो 1992 से 2004 तक ही अवधि में आयोग द्वारा सात वार्षिक रिपोर्ट तथा चार विशेष रिपोर्ट और अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की गयी। ऐसी ही अपेक्षा आयोग से आगे भी की जा रही है। राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद- 338 के खण्ड (6) के अनुसार सभी प्रतिवेदनों को तथा संघ से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी या प्रस्तावित कार्यवाही को, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है।

इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद- 338 के खण्ड 7 में व्यवस्था है कि, जहाँ कोई प्रतिवेदन या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से सम्बन्धित है जिसका किसी राज्य सरकार से सम्बन्ध है तो ऐसे प्रतिवेदन की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को भेजी जायेगी जो उसे राज्य से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही को राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

अभ्यास प्रश्न-1

1. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन किस संविधान संशोधन के तहत हुआ?
2. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन भारतीय संविधान के अनुच्छेद-338 के तहत हुआ। सत्य/असत्य
3. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के पहले अध्यक्ष कौन थे?
4. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, योजना आयोग के साथ अपने परामर्शी अधिकार का प्रयोग करता है। सत्य/ असत्य
5. क्या राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग अपने विशिष्ट शिकायतों की जाँच न्यायालय द्वारा करवाता है? सत्य/ असत्य

13.3 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

भारत वर्ष में फैले लगभग 450 जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 342 के तहत अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है। वर्तमान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगभग 6 करोड़ 70 लाख है, जो भारत की पूरी आबादी का 8.08 प्रतिशत है। यानि प्रत्येक 100 भारतीय नागरिकों में से 08, जनजाति समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुसूचित जनजातियॉ देश के विभिन्न भागों में वितरित हैं और इनकी प्रमुख विशेषता है इनकी विविधता। राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग पर विस्तार से अध्ययन करते हैं-

13.3.1 आयोग का गठन

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन, संविधान के अनुच्छेद- 338 के अधीन संविधान तथा अन्य कानूनों के अधीन जनजाति को दिये गये सभी संरक्षणों की समीक्षा करने के उद्देश्य से किया गया। यद्यपि 1987 में पारित एक संकल्प द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन एक साथ समन्वित रूप से किया गया, परन्तु जब सरकार इस वस्तुस्थिति से अवगत हुई कि भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अनुसूचित जनजातियां, अनुसूचित जातियों से भिन्न है और उसकी समस्याऐं भी भिन्न है, तब संविधान में किये गये (89वें संशोधन) अधिनियम 2003 द्वारा पृथक रूप में पहला अनुसूचित जनजाति आयोग गठित हुआ। अन्त: संविधान में संशोधन करते हुए एक नया अनुच्छेद- 338 (क) जोड़ते हुए दिनांक 19 फरवरी, 2004 को एक नये आयोग की स्थापना की गयी। अनुसूचित जातियों के कल्याण और विकास को और तीव्र करने के लिए ऐसा अपरिहार्य हो गया। इससे अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक और चहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

संविधान के 89 संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा पहला अनुसूचित जनजाति आयोग श्री कुवंर सिंह की अध्यक्षता में 20 फरवरी 2004 को गठित किया गया। इसके सदस्यों में श्री लामा लोबजंग, श्रीमती प्रेमाबाई मांडवी और बुदरु श्री निवासुलु थे। उपाध्यक्ष का पद श्री तापिर गाव को दिया गया था, जो बाद में उनके इस्तीफे कारण रिक्त हो गया।

13.3.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व

संविधान में अनुसूचित जनजाति आयोग के कर्त्तव्य, कार्य तथा शक्तियाँ (89वें संशोधन) अधिनियम 2003 द्वारा यथा संशोधित संविधान के अनुच्छेद- 338 (क) के खण्ड (5), (8) तथा (9) में निर्धारित किए गए हैं। आयोग के इन कार्यों एवं दायित्वों का अवलोकन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत भलीभांति किए जा सकते हैं-

1. अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से सम्बन्धित विषयों का अन्वेषण करना और उन पर निगरानी रखना तथा ऐसे रक्षोपायों(सुरक्षा) के कार्यकरण का मूल्यांकन का कार्य करना।
2. अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और सुरक्षणों से वंचित करने की बावत निर्दिष्ट शिकायतों की जाँच का कार्य करना।
3. अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया विषय में भाग लेना और सलाह देना तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास में प्रगति का मूल्यांकन करना।
4. उन रक्षोपायों के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का कार्य करना।
5. ऐसे प्रतिवेदनों में उन रक्षापायों के बारे में जो उन रक्षापायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किये जाने चाहिए तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश का कार्य करना।
6. अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास तथा उन्नयन के सम्बन्ध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करना, जो राष्ट्रपति संसद द्वारा बनायी गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन हो।

आयोग संविधान द्वारा निर्धारित उपर्युक्त महत्वपूर्ण कार्यों के सन्दर्भ में ही दायित्वों का विभाजन एवं कार्यों का आबंटन करता है, जिसमें अध्यक्ष आयोग का प्रधान होता है और आयोग में उत्पन्न सभी विषयों पर निर्णय लेने की अवशिष्ट शक्ति उसी में निहित होती है। अध्यक्ष ही अन्य सदस्यों को कार्यों का आबंटन करता है। कार्यों के आबंटन से सम्बन्धित आदेश आयोग के सचिवालय द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुँचाया जाता है। आयोग के बैठकों की अध्यक्षता, अध्यक्ष करता है। इसके अनुमोदन के पश्चात ही कोई निर्णय लिया जाता है। अध्यक्ष किसी भी विषय पर जिसे वह आवश्यक समझता हो स्वंय ही निर्णय ले सकता है। उपाध्यक्ष उन सभी कार्यों को करता है, जो अध्यक्ष द्वारा उसको सौंपा जाता है। इसी प्रकार आयोग के सदस्यों का सामूहिक दायित्व होता है। सदस्यों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं आदि के सम्बन्ध में सम्बन्धित राज्य सरकारों को परामर्श देना है। इसी प्रकार आयोग का सचिव जो आयोग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है, वह अपने विभिन्न अधिकारियों की सहायता से आयोग के कार्यों के सुचारु संचालन में अध्यक्ष एवं सदस्यों को

सहयोग प्रदान करता है। इस प्रकार से अनुसूचित जनजाति आयोग अपने कार्यों एवं दायित्वों का भलींभांति निर्वहन करता है।

13.3.3 आयोग के कानून तथा विधान

अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण एवं विकास से सम्बन्धित अनेक कानून तथा विधान संघ और राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये हैं। इनमें से कुछ संवैधानिक प्रावधानों से उत्पन्न हुए हैं। जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम- 1948, बंधित श्रम पद्धति (उन्मूलन) अधिनियम- 1976, बाल श्रम (प्रतिषेध तथा विनियमन) अधिनियम- 1986 और भूमि के हस्तांतरण को प्रतिषिद्ध करने सम्बन्धी अधिनियम आदि।

उपर्युक्त कानून तथा विधान के माध्यम से अनुसूचित जनजाति आयोग, अनुसूचित जनजातियों की न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का कार्य करता है, बंधुआ मजदूर बनने से रोक लगाता है और बालश्रम को प्रतिबंधित करता है तथा आदिवासियों की भूमि को संरक्षित करने का कार्य करता है।

13.3.4 विशिष्ट शिकायतों की जाँच एवं पद्धति

अनुसूचित जनजाति आयोग, अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों के उल्लंघन या उन पर होने वाले अत्याचारों का त्वरित जाँच कर कार्यवाही सुनिश्चित करता है। आयोग द्वारा शिकायतों की जाँच को कारगर तरीके से करने के लिए अनुसूचित जनजाति के लोगों को यह स्पष्ट संदेश देता है कि वे अपनी शिकायतें प्रमाणित दस्तावेजों के साथ तथा संगत उपबन्धों के साथ करते हैं तो उनकी तुरन्त सहायता की जायेगी। अतः आयोग के साथ शिकायतें प्रस्तुत करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए-

- शिकायतकर्ता को अपनी पूरी पहचान, पूरा पता हस्ताक्षर सहित अवश्य अंकित करना चाहिए।
- शिकायत, सीधे अध्यक्ष/उपाध्यक्ष/सचिव/आयोग अथवा राज्य कार्यालयों के प्रधान को संबोधित होना चाहिए।
- शिकायतें स्पष्ट रुप से लिखित अथवा टंकित होनी चाहिए, साथ ही प्रमाणित दस्तावेजों के साथ भेजी जानी चाहिए।
- न्यायाधीन मामलों को आयोग को नहीं भेजना चाहिए तथा जिन पर निर्णय हो गया हो उन मामले पुनः नये सिरे से आयोग के समक्ष नहीं प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

अनुसूचित जनजाति आयोग अपने अधिकार के अन्तर्गत आने वाले विषयों की जाँच करने के लिए अनेक विधियां अपनाता है। जैसे आयोग सीधे ही जाँच कर सकता है, या मुख्यालय में गठित जाँचदल द्वारा, या राज्य कार्यालयों के माध्यम से या फिर राज्य एजेंसियों के माध्यम से अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त या कोई अन्य संस्था और इसके विधिक निकाय द्वारा अपना जाँच कार्य सम्पन्न कराती है। आयोग अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित विशिष्ट शिकायतों की जो उसके सुरक्षा, कल्याण और विकास से सम्बन्धित हैं, उसकी जाँच आयोग सीधे ही कर सकता है। इसके लिए कोई भी कार्यवाही शुरु करते समय सम्बन्धित पार्टियों एवं अनुसूचित जाति के सदस्यों को सूचना का प्रेषण सुनिश्चित किया जाता है। आयोग राज्य के सभी सचिवों, पुलिस महानिदेशकों की वर्ष में एक बार मीटिंग आयोजित कर अनुसूचित जनजाति के सुरक्षा सम्बन्धी मुद्दों पर विचार कर कार्यान्वयन की पहल करता है। आयोग के पास विशिष्ट शिकायतों की जाँच करते समय दीवानी अदालत की वे सभी शक्तियाँ होंगी, जो समाधान हेतु जरुरी हैं।

जाँच करते समय आयोग यदि किसी व्यक्ति की उपस्थिति आवश्यक समझता है तो वह अध्यक्ष के अनुमोदन से उसे 'समन' भेज सकता है। आयोग जाँच के अन्तर्गत किसी मामले में साक्ष्य होने के लिए संविधान के अनुच्छेद-338 के खण्ड 8(ङ) के अन्तर्गत पत्र जारी कर सकता है और इस उद्देश्य के लिए लिखित आदेश द्वारा किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। जाँच करने वाला सदस्य एक रिपोर्ट तैयार करेगा और वह रिपोर्ट नियम 34 के अन्तर्गत नियुक्त जाँच अधिकारियों को भेजी जायेगी। अन्ततः यह रिपोर्ट तीन दिनों के भीतर अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत की जायेगी। इसके पश्चात अध्यक्ष के अनुमोदन से ही उस पर कार्यवाही प्रारम्भ की जायेगी। अध्यक्ष यह भी निर्णय ले सकता है कि प्रस्तुत रिपोर्ट का अन्वेषण व जाँच आयोग के मुख्यालय में गठित एक अन्वेषण दल द्वारा किया गया। परन्तु यदि मामला गम्भीर और तुरन्त कार्रवाई का है तो उस पर तुरन्त निर्णय आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिया जायेगा।

विशिष्ट शिकायतों की एक स्पष्ट एवं सुव्यवस्थित जाँच पद्धति होती है। अतः आयोग उसकी परिधि में ही अपनी कार्यवाही करता है। इसीलिए उन मामलों पर कोई कार्यवाही नहीं करता है जो न्यायाधीन हैं। उन मामलों को भी आयोग नये सिरे से नहीं उठाता है जो न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय की स्थिति प्राप्त कर चुके हैं। आयोग स्थानान्तरण, तैनाती, आरक्षण तथा विभिन्न आदेशों आदि से सम्बन्धित प्रकरण को तब तक जाँच हेतु स्वीकार नहीं करता है, जब तक कि अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति के उत्पीड़न का आधार न हो। अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति के विरुद्ध किये गये अत्याचार के मामलों में आयोग तत्काल कार्यवाही करते हुए जिला प्रशासन

द्वारा की गयी कार्यवाही का ब्योरा मांगता है तथा आरोपी के खिलाफ कार्यवाही ना होने की स्थिति में प्राथमिकी दर्ज करने की सिफारिश करता है। यह भी अनुवीक्षण करता है कि अत्याचार की सूचना प्राप्त होने पर जिले के कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक द्वारा तुरन्त दौरा किया गया है? आयोग स्वयं स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए घटना स्थल का दौरा भी करता है। इस प्रकार सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हुए आयोग पीड़ित व्यक्ति को न्याय दिलाता है।

13.3.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका

अनुसूचित जनजाति आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद-338 क (5) के उपखण्ड (क) में है, कि किसी शिकायत की जाँच करते समय आयोग को दीवानी अदालत की वे शक्तियाँ प्राप्त होंगी, जो उसे किसी मुकदमें को चलाने के लिए प्राप्त होती हैं। आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका का अवलोकन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं-

- भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को 'समन' करना, आयोग के समक्ष उपस्थिति के लिए बाध्य करना, तथा उसका परीक्षण करना।
- किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण के लिए आदेश देना।
- शपथ-पत्र पर साक्ष्य ग्रहण करना।
- किसी न्यायालय या कार्यालय से लोक अभिलेख या उसकी प्रति को मांगना।
- गवाहों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना।
- कोई अन्य विषय जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा विनिर्धारित करें।

इस प्रकार अनुसूचित जनजाति आयोग, जनजातियों को उनकी शिकायतों के आधार पर न्याय दिलाने हेतु समन जारी कर सम्बन्धित व्यक्ति को दस्तावेजों को उपलब्ध कराने का आदेश देता है, साक्ष्य ग्रहण करता है और लोक अभिलेख को मंगाता है तथा कमीशन जारी कर दस्तावेजों का परीक्षण करता है। इस प्रकार आयोग दीवानी अदालत की भूमिका का भलीभांति निर्वहन करता है।

13.3.6 आयोग के परामर्शी अधिकार

अनुसूचित जनजाति आयोग अपनी इस परामर्शी भूमिका का निर्वहन अपने सदस्यों, सचिवालय एवं राज्य कार्यालयों के माध्यम से करता है। वह राज्य सरकारों से पारस्परिक संबंध रखते हुए अपनी इस भूमिका का निर्वहन

करता है। आयोग की इस भूमिका का अवलोकन दो स्तरों, पहला राज्य सरकारों के साथ तथा दूसरा योजना आयोग के साथ के स्तर पर समझा जा सकता है। आयोग, राज्य सरकारों के साथ अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, अपने सदस्यों, सचिवालय एवं राज्य कार्यालयों के माध्यम से करता है। किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र का प्रभारी सदस्य बैठकों या व्यक्तिगत मुलाकातों, पत्रों आदि के द्वारा राज्य सरकार से पारस्परिक संबंध रखता है। इस सम्बन्ध में सूचना सम्बन्धित विभाग को पहले भेजी जानी चाहिए। राज्य कार्यालयों को भी सूचना भेजी जानी चाहिए। आयोग इसके लिए विस्तृत मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाता है। इसमें आयोग का सचिवालय सम्बन्धित सदस्यों को सूचना आदि प्रदान कर सहयोग करता है। आयोग के सदस्य द्वारा निभायी जा रही इस परामर्शी भूमिका का भलीभांति निर्वहन करने हेतु सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा परिवहन, आवास एवं सुरक्षा आदि की सुविधाऐं उन्हें उपलब्ध करायी जाती हैं।

योजना आयोग के साथ अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, अनुसूचित जनजाति आयोग उसके द्वारा गठित विभिन्न समितियों, कार्यकारी दलों में अपने प्रतिनिधित्व के माध्यम से करता है। समय-समय पर आयोग, योजना आयोग को इस प्रकार के कार्यदल बनाने का परामर्श भी देता रहता है। इसके साथ ही योजना आयोग द्वारा अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित योजनाओं तथा विकास प्रक्रिया सम्बन्धी दस्तावेजों के मूल्यांकन की कार्यवाही को आगे बढ़ाने का भी परामर्श देता है। आयोग, पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु भी योजना आयोग को विभिन्न प्रकार के परामर्श को समय-समय पर उपलब्ध कराता रहता है।

13.3.7 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, जनजातियों के संरक्षणात्मक उपायों एवं विकासात्मक गतिविधियों के बारे में संविधान के अनुच्छेद- 338 खण्ड 5(घ) के अनुसार राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष या फिर ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग उचित समझता है, रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। आयोग, अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित उन संरक्षणात्मक उपायों के राज्यों द्वारा कार्यान्वयन से सम्बन्धित सिफारिश भी अपने रिपोर्ट में राष्ट्रपति से करें।

अनुसूचित जनजाति आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह संवैधानिक सुरक्षणों के कार्यकरण तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण और कल्याण के लिए संघ और राज्यों द्वारा किये गये उपायों पर प्रतिवर्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस श्रृखला में देखा जाय तो 1992 से 2004 तक ही अवधि में आयोग द्वारा सात वार्षिक रिपोर्ट तथा चार विशेष रिपोर्ट और अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की गयी। ऐसी ही अपेक्षा आयोग से आगे भी की जा रही है। राष्ट्रपति

संविधान के अनुच्छेद- 338 के खण्ड (6) के अनुसार सभी प्रतिवेदनों को तथा संघ से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी या प्रस्तावित कार्यवाही को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है।

इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद- 338 के खण्ड 7 में व्यवस्था है कि, 'जहाँ कोई प्रतिवेदन या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से सम्बन्धित है, जिसका किसी राज्य सरकार से सम्बन्ध है तो ऐसे प्रविवेदन की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को भेजी जायेगी जो उसे राज्य से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही को राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।''

अभ्यास प्रश्न- 2

1. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग से सम्बन्धित प्रावधान संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है?
2. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का कार्य निम्नलिखित में से कौन नहीं है?
3. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का पृथक-पृथक गठन किस संविधान संशोधन द्वारा किया गया?
4. अनुसूचित जनजाति आयोग के पहले अध्यक्ष थे?

13.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप लोगों ने अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग की गठन प्रक्रिया, उसके कार्यों एवं दायित्वों और परामर्शी भूमिका, विधान तथा विशिष्ट शिकायतों की जाँच पद्धति का विस्तारपूर्वक एक विश्लेषणपरक अध्ययन किया। आयोग द्वारा संविधान के अनुच्छेद- 338 के अन्तर्गत दिये गये दीवानी अदालत की भूमिका का जिसके अन्तर्गत वह समन जारी कर किसी भी व्यक्ति को प्रमाणित दस्तावेजों के साथ उपस्थित होने का आदेश जारी करता है, का भी अवलोकन किया गया, क्योंकि आयोग अत्याचार से सम्बन्धित शिकायतों के त्वरित निपटारे हेतु स्वंय सक्रिय भूमिका निभाता है। वह जिला प्रशासन द्वारा गम्भीर घटनाओं के सम्बन्ध में की गयी कार्यवाही का भी अनुवीक्षण करता है।

वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण के इस आर्थिक दौर में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग पृथक-पृथक अपनी भूमिका का संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार निवर्हन करते हुए उनके सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक उत्थान हेतु हर संभव कदम उठा रहा है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित

जनजातियों से सम्बन्धित सुरक्षात्मक उपायों एवं विकासात्मक गतिविधियों में और तीव्रता लाने हेतु आयोग प्रतिवर्ष तथा समय-समय पर अपना प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता रहता है। राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन को संसद में रखवाकर कानून निर्माण तथा क्रिवान्वयन द्वारा उसका पालन सुनिश्चित कराता है। इतना ही नहीं विशिष्ट शिकायतों की जाँच से सम्बन्धित पद्धति को निर्धारित करने की शक्ति संविधान द्वारा स्वयं आयोग को प्रदान की गयी है, जिससे आयोग अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के हितों को पूरी तरह संरक्षित एवं संवर्धित करता है। आयोग एक सकारात्मक एवं प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता आ रहा है।

2003 के बाद अनुसूचित जाति आयोग तथा अनुसूचित जनजाति आयोग अलग-अलग कार्य करने लगे।

13.5 शब्दावली

उपबन्ध- कानून/ प्रावधान, कार्यान्वयन- लागू करना, पारमर्शी भूमिका- सलाह देने का कार्य, प्रतिवेदन- रिपोर्ट जो आयोग प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को सौंपता है, जाँच पद्धति- जाँच हेतु अपनाया गया तरीका या विधि, सुरक्षणों- संविधान में जनजातियों की सुरक्षा के लिए किए गये प्रावधान/संरक्षण, प्रथक-प्रथक- अलग-अलग, रक्षोपायों- रक्षा के उपाय या रक्षा कवच, अन्वेषण- जाँच-पड़ताल, उपबन्ध- कानून या प्रावधान, कार्यान्वयन- लागू करना, पारमर्शी भूमिका- सलाह देने का कार्य,प्रतिवेदन- रिपोर्ट जो आयोग प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को सौंपता है, जाँच पद्धति- जाँच हेतु अपनाया गया तरीका या विधि।

13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 **1.** 89वें संविधान संशोधन अधिनियम, **2.** सत्य, **3.** श्री सूरज भान, **4.** सत्य, **5.** असत्य

अभ्यास प्रश्न-2 **1.** अनुच्छेद-338, **2.** दण्ड देने का कार्य, **3.** 89वें संविधान संशोधन अधिनियम, **4.** श्री कुंवर सिंह

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, ब्रज किशोर (2007) ''भारत का संविधान'' पैरेटिस हाल आफ इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. भारत का संविधान (2000), भारत सरकार विधि न्याय एवं कंपनी कार्य मंत्रालय।
3. त्रिवेदी, आर0एन0 एवं राय, एम0 पी0 ''भारतीय सरकार एवं राजनीति'' कालेज बुक डिपो प्रकाशन जयपुर।

4. 'हैण्ड बुक' (अनुसूचित जनजाति आयोग) 2009, हिन्दी।

13.8 सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री

1. पायली, एम0 वी0, इण्डियन कांस्टीट्यूशन।
2. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, पुस्तिका (हैण्डबुक) जून, 2005
3. फड़िया, बी0एल0, भारतीय लोक प्रशासन।

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के गठन, कार्य एवं दायित्वों का विश्लेषण कीजिए।
2. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की विशिष्ट शिकायतों की जाँच-पद्धति तथा दीवानी अदालत के रुप में उसकी भूमिका का परीक्षण कीजिए।
3. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन और उसके कार्य एवं दायित्वों का विश्लेषण कीजिए।
4. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की विशिष्ट शिकायतों की जाँच-पद्धति तथा दीवानी अदालत के रुप में उसकी भूमिका का परीक्षण कीजिए।

इकाई- 14 राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

14.2.1 आयोग का संगठनात्मक ढ़ाँचा

14.2.2 आयोग की कार्य-प्रणाली

14.2.3 आयोग के उद्देश्य एवं कार्य

14.2.4 आयोग की भूमिका

14.3 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

14.3.1 अल्पसंख्यक आयोग का गठन

14.3.2 अल्पसंख्यक आयोग के कार्य

14.3.3 अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिशें

14.3.4 अल्पसंख्यक आयोग की प्रभावशीलता

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.9 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

भारतीय समाज विविधताओं से भरा है। भारतीय लोकतंत्र में सभी वर्गों को सामाजिक समानता और सुरक्षा प्रदान हो सके इसके लिए संविधान में व्यवस्था की गयी है। समाज के वंचित समुदाय को विशेष सुविधाऐं, सुरक्षा और आर्थिक सुरक्षा के लिए रोजगार अवसर मिल सकें, इसकी व्यवस्था की गयी है। पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्गों

का चहुमुखी विकास और उनका जीवन स्तर सामान्य वर्गों के बराबर हो सके, इसके लिए संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत 'राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग' और 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग' का गठन किया गया है।

इस इकाई में हम राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के गठन/संगठनात्मक ढ़ाँचे , उनके कार्यों और उनकी भूमिका का अध्ययन करेंगे।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के संगठनात्मक ढ़ाँचे और कार्यप्रणाली से अवगत होंगे।
- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के उद्देश्य, कार्य एवं भूमिका के विषय में जान पायेंगे।
- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की आवश्यकता एवं महत्व को समझ सकेंगे।
- अल्पसंख्यक आयोग के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।

14.2 राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

भारत के संविधान में समाज के पिछड़े वर्गों के लिए विशेष सुविधाऐं एवं आरक्षण प्रदान किये गये हैं, ताकि इन जातियों एवं वर्गों का बहुमुखी विकास एवं जीवन स्तर अन्य वर्गों के समान हो सके। शैक्षिक और सामाजिक रूप से वंचित, पिछड़े वर्ग सम्बन्धी समस्याओं एवं विविध नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम,1993 के अधीन एक पांच सदस्यीय एक आयोग का गठन किया है। भारत सरकार द्वारा गठित वी0पी0 मण्डल आयोग की संस्तुतियों के सन्दर्भ में माननीय उच्चतम न्यायालय की नौ सदस्यीय विशेष संविधान पीठ ने 1992 में 'इंदिरा साहनी बनाम भारतीय संघ' केस में अपने ऐतिहासिक फैसले में परमादेश जारी किया कि अन्य पिछड़े वर्ग में जातियों को सम्मिलित/निष्कासित करने के सम्बध में प्रत्येक राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे न्यायाधिकरण या आयोग गठित किये जायेंगे, जो शासन को अपनी संस्तुति देंगे, जिन्हें सरकार सामान्यतया मानने के लिए बाध्य होगी।

मण्डल मामले के फैसले के बाद सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के अनुसार, भारत सरकार ने पिछड़ा वर्ग के लिए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना, पिछड़ा वर्ग अधिनियम, 1993 (1993 के अधिनियम की संख्या 27) के अंतर्गत की। अधिनियम, 02 अप्रैल 1993 को प्रभाव में आया तथा इसके प्रावधानों के अनुरूप 14 अगस्त 1993

को तीन वर्ष की अवधि के लिए प्रथम राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग क गठन हुआ। आयोग का पुनर्गठन 28 फरवरी 1997, 28 जुलाई 2000, 24 मार्च 2002, 14 अगस्त 2006 तथा 07 जून 2010 को किया गया है।

आयोग के गठन के पूर्व पिछड़ा वर्ग के मामलों से सम्बन्धित पिछड़ा वर्ग प्रकोष्ठ 1985 तक गृह मंत्रालय में स्थापित था। 1985 में गृह मंत्रालय से पिछड़ा वर्ग कल्याण प्रभाग को अलग कर कल्याण मंत्रालय को संगठित किया गया। अनंतर इस मंत्रालय का नाम मई 1998 में सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय में बदल दिया गया।

14.2.1 आयोग का संगठनात्मक ढ़ाँचा

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 की धारा- 3 के अनुसार आयोग पांच सदस्यीय होगा, जिसका अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय का एक वर्तमान या सेवानिवृत्त न्यायाधीश होगा। इसके अतिरिक्त आयोग में एक सामाजिक वैज्ञानिक, पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित मामलों के ज्ञाता दो व्यक्ति तथा केंद्र सरकार में सचिव स्तर का एक अधिकारी होते हैं। सचिव स्तर का यह अधिकारी आयोग के सदस्य-सचिव के रूप में कार्य करता है। इसका कार्यकाल तीन वर्ष का होता है। इसके साथ ही आयोग में उप-सचिव, अनुभाग अधिकारी, वित्त एवं लेखाधिकारी, शोध अधिकारी, अन्वेषण अधिकारी निजी सचिव और अन्य लिपिकीय स्टाफ के पद सृजित किये गये हैं। पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग का कार्यालय भीकाजी कामाप्लेस, नई दिल्ली में स्थित है।

14.2.2 आयोग की कार्य-प्रणाली

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को सौपें गये दायित्वों के निर्वहन हेतु आयोग द्वारा 'कार्य प्रक्रिया विनियमावली' निर्मित की गयी है, जिसके अनुसार देश के अन्य पिछड़े वर्गों के रक्षोपायों के संबंध में तथा उनकी विशिष्ट शिकायतों के निराकरण एवं शिकायतों की जाँच की जाती है। आयोग में इस कार्य हेतु शोध प्रकोष्ठ, जाति सम्मिलन निष्कासन, नियोजन मूल्यांकन, आरक्षण, उत्पीड़न आदि प्रकोष्ठ स्थापित किये गये हैं।

आयोग के शोध प्रकोष्ठ द्वारा पिछड़ी जाति की सूची में किसी जाति को सम्मिलित करने, पिछड़ी जाति की सूची से किसी जाति को निष्कासित करने, पिछड़ी जाति की सूची में शामिल करने तथा जातियों के नामों को संशोधित किये जाने के संबंध में प्राप्त प्रत्यावेदनों के निष्पादन हेतु शोध कार्य किया जाता है। मूल्यांकन एवं नियोजन प्रकोष्ठ द्वारा सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों एवं प्रदत्त अन्य सुविधाओं में पिछड़ा वर्ग के लिए प्रतिपादित आरक्षण की व्यवस्था ठीक तरह से लागू हो रही है कि नहीं, का अन्वेषण/परीक्षण किया जाता है।

शिकायत प्रकोष्ठ के अन्तर्गत अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों से उनके उत्पीड़न या अन्य सुसंगत शिकायतों के बारे में सुनवाई एवं निस्तारण के उपरान्त आयोग द्वारा सम्बन्धित विभाग को संस्तुति की जाती है।

14.2.3 आयोग के उद्देश्य एवं कार्य

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के प्रमुख उद्देश्य एवं कार्य निम्नलिखित हैं -

1. अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में अपेक्षित संयोजन/निष्कासन एवं तत्संबधी शिकायतों पर सम्यक रूप से विचार कर संस्तुति देना।
2. अन्य पिछड़े वर्गों के संबंध में राज्य सरकार द्वारा संदर्भित किसी अन्य बिन्दु पर सलाह देना।
3. पिछड़े वर्गों के विकास का मूल्यांकन करना ।

14.2.4 आयोग की भूमिका

अधिनियम की व्यवस्थानुसार केन्द्र सरकार इस अधिनियम के लागू होने से दस वर्ष की समाप्ति पर और उसके बाद दस साल की हर अवधि पर या किसी भी समय सूचियों के पुनर्रीक्षण का कार्य करवा सकती है।

समस्त सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्गों को 27 प्रतिशत आरक्षण अनुमन्य कराने हेतु राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग प्रयासरत है। आयोग की भूमिका निम्नवत है-

1. आयोग अनुसूची में किसी वर्ग के नागरिकों को पिछड़े वर्ग के सम्मिलित किये जाने के अनुरोधों का परीक्षण करेगा और अनुसूची में किसी पिछड़े वर्ग के गलत सम्मिलित किये जाने की शिकायतें सुनेगा और केन्द्र सरकार को उचित सलाह देगा।
2. तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन पिछड़े वर्ग के लिए उपबन्धित रक्षोपायों से सम्बन्धित सभी मामलों का अन्वेषण और अनुश्रवण करेगा और ऐसे रक्षोपायों की प्रणाली का मूल्यांकन करेगा।
3. पिछड़े वर्ग के अधिकारों से वंचित किये जाने के सम्बन्ध में विशिष्ट शिकायतों की जाँच करेगा।
4. पिछड़े वर्ग के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना और उस पर सलाह देना और उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना।
5. केंद्र सरकार को उन रक्षोपायों की कार्यप्रणाली पर वार्षिक व ऐसे अन्य समयों पर जैसा आयोग उचित समझे, प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।
6. पिछड़े वर्ग के संरक्षण, कल्याण, विकास और अभिवृद्धि के सम्बन्ध मे ऐसे अन्य कृत्यों का जो केंद्र सरकार द्वारा उसको निर्दिष्ट किये जायें, निर्वहन करना।

आयोग, पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को छात्रवृति, अध्ययन सामग्री और छात्रावास आदि की व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त और विकास निगम भी सक्रिय है, जो गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले पिछड़े वर्ग को विशेष आर्थिक सहायता और सस्ते ब्याज दर पर स्वरोजगार के लिए ऋण आदि की व्यवस्था करता है।

14.3 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

अल्पसंख्यक वर्गों को संरक्षित करने हेतु, स्वतंन्त्रता के पश्चात अधिनियमित संविधान के भाग 3, (अनुच्छेद 29 व 30) के अन्तर्गत विशेष प्रावधान किये गये। एक लोकतान्त्रिक सरकार का यह सबसे बड़ा दायित्व भी बनता है कि वह अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकारों को किस प्रकार संरक्षित करे। अनुकूल परिस्थितियों में समग्र विकास के अवसर उपलब्ध कराना और निरन्तर प्रयत्नशील रहना उसका सबसे बड़ा दायित्व है। अल्पसंख्यक वर्ग का तात्पर्य उस समूह से है जो जाति, भाषा, धर्म की दृष्टि से बहुमत से भिन्न है। इसी प्रकार 1957 में केरल एजूकेशन बिल के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय ने भी माना कि 'वह समूह जिसकी संख्या 50 प्रतिशत से कम हो वह अल्पसंख्यक वर्ग में आता है।'

संविधान भाषाई, धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को मान्यता प्रदान करता है। अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण (अनुच्छेद- 29) के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है कि ''भारत के राजक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।'' इसी प्रकार अनुच्छेद- 30 के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों का होगा। मूलाधिकार के रूप में संविधान में इन प्रावधानों का उल्लेख करने का मूल उद्देश्य संविधान निर्माताओं का यह विश्वास था कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक वर्ग राष्ट्रीय जीवन में एक-दूसरे के सहयोगी और पूरक बनकर ही देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सशक्त कर सकते हैं। इसीलिए राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का आगे चलकर गठन किया गया। निर्वाचन आयोग भी अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकारों को संरक्षित करने में एक सहयोगी एवं पूरक की भूमिका निभाता है।

14.3.1 अल्पसंख्यक आयोग का गठन

अल्पसंख्यक वर्गों को सामाजिक न्याय दिलाने हेतु एक क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए जनता पार्टी की सरकार (1978) द्वारा एक अल्पसंख्यक आयोग का गठन किया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात से ही यह वर्ग अपने प्रति होने वाले भेदभावों को लेकर शिकायत करता रहता था। इस तरह के सभी भेदभावों से बचाने के लिए जनता पार्टी की सरकार द्वारा यह अयोग गठित किया गया।

अल्पसंख्यक आयोग जिसका गठन 1978 में किया गया। उस समय उसमें एक अध्यक्ष सहित तीन सदस्य थे। एम0 आर0 मसानी इस अयोग के अध्यक्ष थे और आर0ए0 अंसारी तथा वी0 वी0 जॉन इसके सदस्य थे। बड़े-बड़े मुस्लिम नेताओं ने यह भी मांग की कि जब सबसे बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग मुसलमान है तो आयोग के अध्यक्ष पद पर भी किसी मुसलमान की नियुक्ति होनी चाहिए। इसके पश्चात सिखों ने भी अपना कोई प्रतिनिधि इस आयोग में ना होने पर अप्रसन्नता जाहिर की। यद्यपि सरकार ने इस मांग को प्रथम दृष्टया अतार्किक कहकर मानने से इन्कार कर दिया, परन्तु कुछ समय पश्चात मोरारजी देसाई जी ने आयोग के सदस्यों की संख्या 3 से बढ़ाकर 5 कर दी और अप्रत्यक्ष रुप से मांग स्वीकार कर ली। जब अध्यक्ष (एम0आर0 मसानी) ने 1978 में अपना त्यागपत्र सरकार को सौंपा, उसी समय आर0ए0 अंसारी को इसका अध्यक्ष बनाया गया। इसके साथ ही आयोग में सिखों, बौद्धों, ईसाईयों तथा पारसियों के प्रतिनिधियों को भी सदस्य बनाया गया। इससे आयोग के प्रति विश्वास में वृद्धि हुई। आज भी आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति में इसी परम्परा का अनुकरण किया जा रहा है।

14.3.2 अल्पसंख्यक आयोग के कार्य

अल्पसंख्यक आयोग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही है कि वह यह पता लगाये कि अल्पसंख्यकों को उनके अधिकारों तथा संविधान द्वारा प्रदत्त रक्षोपायों से वंचित तो नहीं किया जा रहा है, अथवा उनको वे सभी अधिकार उसी रूप में प्राप्त हो रहे हैं कि नहीं। बहुसंख्यक वर्गों के हितों को प्राथमिकता देने के चक्कर में अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की कुर्बानी तो नहीं दी जा रही है।

आयोग के कार्यों का अवलोकन इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. अल्पसंख्यक वर्गों से सम्बन्धित संवैधानिक रक्षोपायों के कानूनों का विश्लेषण करना।
2. ऐसे कानूनों के निर्माण की सिफारिश करना जो अल्पसंख्यक वर्गों के हितों को पूर्णतया संरक्षित करता हो।
3. संघीय तथा राज्य सरकारों से अल्पसंख्यक वर्गों के हितों को संरक्षित एवं संवर्द्धित करने से सम्बन्धित कानूनों

को जानने एवं लागू करने की सिफारिशें करना।

4. अल्पसंख्यकों के विरुद्ध होने वाले सामाजिक भेदभावों के विरुद्ध दूरदर्शी कदम उठाने हेतु सरकारों को प्रेरित

करना।

5. अल्पसंख्यक वर्गों से सम्बन्धित सूचनाओं को बनाने में एवं लागू करने में मदद करना।

6. समय-समय पर अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित रिपोर्ट को सरकार को सौंपना आदि।

आयोग, अपने कार्यों से सम्बन्धित क्रियाविधि स्वयं निर्धारित करता है। प्रत्येक मन्त्रालय तथा विभाग के लिए यह आवश्यक है कि वे आयोग के द्वारा मांगी गयी किसी भी प्रकार की सूचना एवं दस्तावेज उपलब्ध करायें। इसी प्रकार की अपेक्षा राज्य सरकारों से भी की जाती है कि वे आयोग को अल्पसंख्यक वर्गों के हितों से सम्बन्धित सूचनाऐं जो मांगी जाय, उपलब्ध करायें। अयोग अपनी क्रियाविध दिल्ली स्थित मुख्यालय से संचालित करता है।

14.3.3 अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिशें

अल्पसंख्यक आयोग अपने कार्यों की तथा उसके साथ अल्पसंख्यकों के हितों से सम्बन्धित सभी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है। यदि आयोग आवश्यक समझता है तो अपनी सिफारिशों से सम्बन्धित रिपोर्ट राष्ट्रपति को एक वर्ष में एक से अधिक बार भी सौंप सकता है। राष्ट्रपति इन रिर्पोटों को संसद के समक्ष रखवाता है। जब भी कोई रिपोर्ट संसद के समक्ष रखी जाती है तब सरकार को उस रिपोर्ट से सम्बन्धित जो भी कार्यवाही की गयी होती है, उसे संसद के पटल पर रखना होता है। सामान्यतया सरकार आयोग की सिफारिशों को नजरन्दाज नहीं कर पाती है। इससे सरकार की अल्पसंख्यकों के प्रति जबावदेही सुनिश्चित होती है।

14.3.4 अल्पसंख्यक आयोग की प्रभावशीलता

अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्टों एवं सिफारिशों का प्रभाव यह रहा है कि अल्पसख्यकों के अधिकारों को संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा संरक्षित किया गया है। किन्तु आयोग का अपना स्वयं का प्रभाव अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित कानूनों एवं नीतियों को लागू करवाने में नगण्य है। सरकारें इस तरफ अधिक संवेदनशील यद्यपि रही ही हैं, इसका सबसे बड़ा कारण यह भी रहा है कि विभिन्न राजनीतिक दलों में स्वयं को धर्मनिरपेक्ष दिखाने की प्रतिस्पर्धा रही है, जिससे चुनावों में उनको लाभ मिल सके। आयोग की संवैधानिक स्थिति को देखा जाय तो इसकी स्थापना कार्यपालिका के आदेश के द्वारा की गयी है। इसीलिए अल्पसंख्यक आयोग एक गैर-संवैधानिक

निकाय है। इसकी कोई कानूनी हैसियत नहीं है। इसीलिए इसकी प्रभावशीलता कम है या नगण्य ही कहा जा सकता है। संघ एवं राज्यों की सरकारें इसकी निरन्तर उपेक्षा करती रहती है।

राज्य सरकारों द्वारा आयोग को उसके द्वारा मांगी गयी सूचनाओं को देने से भी इंकार किया गया है। जम्मू-कश्मीर की सरकार द्वारा आयोग को जाँच-पड़ताल करने से साफ मना कर दिया गया, यह कहते हुए कि जम्मू-कश्मीर उसके क्षेत्राधिकार से बाहर है। इसके पश्चात प्रधानमंत्री के दबाव का भी राज्य के मुख्यमंत्री पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार अल्पसंख्यक अयोग की उपेक्षा, उत्तर प्रदेश एवं बिहार की सरकारों द्वारा भी किया जाता रहा है। इस स्तर पर आयोग पूर्णतया प्रभावहीन दिखाई पड़ता है।

वास्तव में देखा जाय तो अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा केवल राज्य सरकारों ने ही नहीं की, अपितु संघ सरकार द्वारा भी किया जाता रहा है। आयोग को गठित करने वाली जनता पार्टी सरकार द्वारा भी आयोग द्वारा प्रस्तुत चार रिपोर्टों में से एक भी रिपोर्ट सामने नहीं रखा गया और ना ही स्वीकार किया गया। आयोग ने एक महत्वपूर्ण सिफारिश करते हुए हैदराबाद, मुम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में क्षेत्रीय कार्यालय खोले जाने की बात कही गयी, किन्तु सरकार ने उसी समय इन्कार कर दिया था।

आयोग की प्रभावहीनता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इसके सदस्यों की नियुक्ति साम्प्रदायिकता के आधार पर की जाती है। विशेष रूप से अध्यक्ष एक मुसलमान सिर्फ इसलिए बनाया जाता है, क्योंकि अल्पसंख्यकों में सबसे बड़ा वर्ग मुसलमानों का है। जबकि एक गैर-मुसलमान अध्यक्ष भी अल्पसंख्यकों के हितों को संरक्षित करने की योग्यता रखता है। आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष आर0ए0 अंसारी की संदिग्ध भूमिका इस सन्दर्भ में जगजाहिर है। जमशेदपुर के साम्प्रदायिक दंगों में आर0एस0एस0 का हाथ है ऐसा बयान देना, भुट्टों को फांसी देने के पश्चात जलाये गये गिरजाघरों पर चुप्पी साध लेना और अलीगढ़ के कुछ छात्रों को गुण्डागर्दी करते हुए पकड़े जाने पर मुख्यमंत्री को तार देकर उन्हें छुड़ाने के लिए कहना आदि ऐसे कदम रहे, जिसके कारण आयोग की शाख गिरी। साथ ही आयोग के सदस्यों पर अध्यक्ष का अनुशासनिक नियन्त्रण नहीं रहता है, क्योंकि अध्यक्ष न तो सदस्य का तबादला कर सकता है और न ही उनकी गोपनीय रिपोर्ट लिख सकता है। आयोग में स्टाफ की कमी भी रही है। अल्पसंख्यकों को संविधान द्वारा जो अधिकार दिये गये हैं, उनकी रक्षा करने से सम्बन्धित कोई भी मशीनरी नहीं है। अतः आयोग की प्रभावशीलता इसीलिए आज भी क्षीण सी ही है, अर्थात अपने दायित्वों का निर्वहन वह आज भी भलीभांति नहीं कर पा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन, पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम- 1993 के अधीन किया गया। सत्य/असत्य
2. क्या राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग एक पॉच सदस्यीय आयोग है?
3. क्या राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग, पिछड़े वर्ग के विकास का मूल्यांकन करता है?
4. पिछड़े वर्ग को कितने प्रतिशत आरक्षण के लिए राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग प्रयासरत है?
5. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्गों से सम्बन्धित प्रावधान संविधान में मूल अधिकारों के अन्तर्गत किया गया है। सत्य/असत्य
6. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का गठन कब किया गया?
7. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करता है?
8. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग का कार्यालय कहाँ स्थित है?

14.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की गठन प्रक्रिया, उसकी शक्तियाँ एवं कार्यों के साथ ही साथ उसकी सिफारिशों और प्रभावशीलता के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक किये गये आलोचनात्मक विश्लेषण का अध्ययन किया गया। पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकारों को संरक्षित करने हेतु गठित आयोग की कार्यप्रणाली पर इस इकाई के अन्तर्गत मुख्य रुप से प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही संविधान में दिये गये प्रावधानों का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक वर्ग किसे कहा जा सकता है, इसे समझने के क्रम में उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने न्यायिक निर्णयों में दी गयी टिप्पणी को सबसे सरल रूप प्रस्तुत किया गया है। हमारा संविधान भाषाई, धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को ही मान्यता प्रदान करता है।

14.5 शब्दावली

अनंतर- उसके उपरान्त या बाद, ज्ञाता- जानकार या विशेषज्ञ, रक्षोपायों- रक्षा के उपाय, तत्सम्य प्रवृत्त- उसके समान, अल्पसंख्यक- जो वर्ग समूह जाति, भाषा, धर्म की दृष्टि से बहुमत से भिन्न है।, प्रासंगिकता- उपयोगिता, प्रावधान- कानूनी व्यवस्थाप्रतिवेदन- रिपोर्ट जो आयोग प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को सौंपता है।

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** हाँ, **3.** हाँ, **4.** 27 प्रतिशत, **5.** सत्य, **6.** 1978 में, **7.** राष्ट्रपति को, **8.** भीकाजी काम्पलेक्स, नई दिल्ली

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिवेदी, आर0एन0 एवं राय, एम0 पी0, भारतीय सरकार एवं राजनीति, कालेज बुक डिपो प्रकाशन, जयपुर।
2. पायली, एम0वी0, कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इण्डिया।
3. सिवाच, जे0आर0 (2002), भारत की राजनीतिक व्यवस्था, हरियाणा साहित्य अकादमी।

14.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिवाच, जे0आर0 (2002) भारत की राजनीतिक व्यवस्था, हरियाणा साहित्य अकादमी।
2. नारायण, इकबाल (1967) स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया।

14.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के संगठनात्मक ढ़ाँचे और भूमिका की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के गठन और उसके कार्य एवं दायित्वों का विश्लेषण कीजिए।